जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य
का विश्व कल्याणकारी ग्रन्थ

सौन्दर्य-लहरी

Saundrya Lahari

व्याख्याकारः
डा॰ रुद्रदेव त्रिपाठी

न्त्र, तन्त्र, यन्त्र और योगशास्त्र के रहस्यपूर्ण तथ्यों से परिपूर्ण
मनोकामना पूर्ति में सहायक, भाषा सरल एवं गूढ़ता से मुक्त

शङ्कराचार्य रचित

सौन्दर्य-लहरी

डा० रुद्रदेव त्रिपाठी

जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य
का विश्व कल्याणकारी ग्रन्थ

सौन्दर्य-लहरी

Saundrya Lahari

व्याख्याकार:
डा० रुद्रदेव त्रिपाठी

मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र और योगशास्त्र के रहस्यपूर्ण तथ्यों से परिपूर्ण
मनोकामना पूर्ति में सहायक, भाषा सरल एवं गूढ़ता से मुक्त

सौन्दर्यलहरी
(Saundrya Lahari)

मूल रचयिता
जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य

व्याख्याकारः
डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी
साहित्य-साङ्ख्ययोगदर्शनाचार्य, एम. ए. (संस्कृत एवं हिन्दी), पी-एच. डी.,
डी. लिट्., साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, तन्त्रागम भास्कर

रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
फोन : 23278835, 23282998

© सर्वाधिकार : सुरक्षित

संस्करण : 2011

मूल्य : 200/- रुपये

मुद्रक : गोयल एन्टरप्राइजिस, दरियागंज, दिल्ली-110002

परिचय

विगत दो हजार से अधिक वर्षों के अन्तराल में विश्व के विद्यानुरागी मनीषियों ने विश्वगुरु आदिशङ्कराचार्य द्वारा प्रणीत 'सौन्दर्यलहरी' के दर्शन, मनन, पठन और आस्वादन का आनन्द प्राप्त करते हुए अपार हर्ष को प्राप्त किया है। उपनिषद् की आज्ञा के अनुसार 'केवालाघो भवति केवलादी'—अकेला खानेवाला—अकेला आस्वाद लेनेवाला केवल पाप का भागी होता है। इसलिए 'एकहस्तं समाहर शतहस्तं समाकिर'—एक हाथ से संग्रह करो और सौ हाथों से विकिरण करो। इस वैदिक आदेश का पालन करते हुए अपनी-अपनी साधना एवं ज्ञान-विस्तार के अनुसार इस महती कृति के अनुशीलनादि से उपलब्ध अमृत को विभिन्न रूपों से, विभिन्न भाषाओं के माध्यम से भगवती के भक्तों के लिए वितरित किया है।

विश्वविख्यात 'सौन्दर्य-लहरी' के यशोवैभव को देखकर समुद्र पार के निवासी विद्वान भी इस ओर आकृष्ट हुए तथा गहन चिन्तन करके अपने विचारों को अपनी भाषा में लिखकर स्वदेश-विदेश के वासियों को भी उस अमृत का आस्वाद लेने के लिए प्रेरित किया।

हमारा शास्त्रीय साहित्य प्रायः संस्कृत भाषा में निबद्ध है। सर्वसाधारण आज संस्कृत भाषा के ज्ञान से दूर होता जा रहा है, अतः सभी ओर से यह माँग उठती रहती है कि "भारतीय भाषा 'हिन्दी' में सौन्दर्य-लहरी के सर्वाङ्गीण सौन्दर्य का परिचय कराया जाए।" जनसाधारण की इस मङ्गल-भावना का समादर करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशक महोदय ने हमें यह प्रेरणा दी, उसी के फल-स्वरूप यह दुरूह कार्य करने का हमने भी संकल्प किया। भगवती त्रिपुरसुन्दरी की कृपा से, गुरुजनों की कारुण्यपूर्ण दृष्टि वृष्टि से आज यह कार्य यथामति सम्पादित करके पाठकों के करकमलों में अर्पित करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है, इसका मुझे अत्यन्त हर्ष है।

इसमें मैंने विभिन्न टीकाकारों द्वारा उद्घाटित एवं पुरस्कृत रहस्यपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तथा अनेक दुर्लभ निबन्धों, व्याख्यानों और विवेचनाओं का परिशीलन करके संक्षेप में सार प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखा है। 'श्रीविद्या' का वाङ्मय समुद्र के समान अत्यन्त व्यापक है। विशाल भारत देश के

शाक्त साधकों ने अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार, आगम, आम्नाय तथा पद्धतियों के परिप्रेक्ष्य में इस लहरी पर अपने उद्‌गार अभिव्यक्त किए हैं।

पूर्वाचार्य लेखन के समय पाठक की कक्षा को ध्यान में रखकर प्रस्तावित विषय को परिभाषित करते रहे हैं। आज गुरु परम्परा, सम्प्रदाय परम्परा और स्वाध्याय का अभाव व्याप्त है, अतः अनेक साधनान्तर्गत विषयों का क्रमिक ज्ञान प्राप्त किए बिना ही उपासना-साहित्य को आत्मसात् करने का प्रयत्न करते हैं।

हमारे पास शताधिक ऐसे पत्र आते रहते हैं, जिनमें प्रश्नों की झड़ी लगाते हुए अनर्गल प्रश्न प्रस्तुत करते हैं। जिसने प्रारम्भिक विधियों का ज्ञान प्राप्त किया ही नहीं वह किसी महान् शास्त्रीय विधान को कैसे समझ सकता है। भारत के प्रकाशकों में शुद्ध छपाई का भी अभाव रहता है। मन्त्रों के शुद्ध स्वरूप नहीं छप पाते हैं। विधियों का क्रमिक स्वरूप नहीं लिखा जाता है और छिन्न-भिन्न स्वरूपों में अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मन्त्रों में अथवा विधि-विधानों में काँट-छाँट भी कर देते हैं। इसी का फल होता है कि साधना करने वाले इच्छित फल प्राप्त नहीं कर पाते। अतः स्वसम्प्रदाय, पूर्वापर क्रम, पूर्ण अङ्ग और गुरु परम्परा आदि का ज्ञान करके विधिवत् दीक्षा प्राप्त करके ही साधना में लगना चाहिए।

''हमने यह सदा ध्यान रखा है कि शास्त्राज्ञा की अवहेलना नहीं हो, सम्प्रदाय का, परम्परा का पालन हो और श्रद्धा-विश्वासपूर्वक क्रमानुसार सोपान-परम्परा से आगे बढ़ते हुए साधनों का मार्ग प्रकाशित हो, वैसा ही लेखन किया जाए।''

'सौन्दर्यलहरी' में पूरा मन्त्र समुदाय दीक्षा मार्ग से साधना करके प्रयोग करने का है। मन्त्र के पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग का ज्ञान होना चाहिए। मन्त्रों का लेखन क्रम, लेखन के उपकरण, आधार, प्राण-प्रतिष्ठा और पुरश्चरण आदि वास्तविक आवश्यक अंगों का निर्देश भी सावधानी से सम्पन्न किया जाए। तदर्थ यथासाध्य सूचन यहाँ किया गया है।

वर्षों से हम इस पुस्तक का लेखन करने की भावना बनाए हुए थे। तथा इसके लिए भारत के प्रधान स्थानों, पुस्तकालयों और विद्वानों के साथ सम्पर्क करके जो प्राप्त किया उसे निश्छल भाव से यहाँ लिखने का प्रयत्न किया है।

पाठकगण इसकी अच्छाइयों को श्रद्धापूर्वक आत्मसात करें तथा भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की कृपा का प्रसाद प्राप्त करें। यही मङ्गल-कामना है।

यह सम्भव है कि इसमें अज्ञानवश कुछ त्रुटियाँ रह गई हों अथवा कोई गुप्त-अज्ञात विषय लेखन से छूट गया हो, तो पाठक महानुभाव कृपा-पूर्वक मुझे सूचित करें और लोककल्याण की दृष्टि से अपेक्षित विधि आदि को प्रकाश में लाएँ।

विद्वद्‌वशंवद

—डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी

विषयानुक्रमणिका

परिचय विभाग 1-37

परिचय, मंगलाचरण, सौन्दर्य लहरी एक दृष्टि में, आचार्य शंकर : अभिजन वृत्त, सौन्दर्य लहरी : विवेचन, यन्त्रों का स्वरूप विचार, तन्त्रशास्त्रीय योग पद्धति, संक्षिप्त श्री विद्या उपासना विधि, चक्रवासना स्तोत्र, कुण्डलिनी साधना विधि, सौन्दर्य लहरी का प्रतिपाद्य।

प्रयोग विभाग 38-262

मूल पाठ, अवतरणिका, सरलार्थ, साधना संकेत, 103 श्लोक : व्याख्या, सरलार्थ, तन्त्र संकेत, श्री चक्र स्वरूप!

परिशेष विभाग 263-272

दिव्य शताक्षरी, साधना के आवश्यक निर्देश, विनियोग व न्यास, प्रति श्लोक का प्रयोग फल, प्रयोग की अवधि व विशिष्ट नैवेद्य, श्लोकानुक्रमणी।

प्रमुख विशेषताएँ

श्री विद्या का कल्पद्रुम!
साधना के अमोघ प्रयोग!
मनोरथ सिद्धि का सोपान!
असम्भव-सम्भव सम्पादन!
वर्णन चातुरी के नूतन वितान!
अमोघ फलदायक सुरभिलता!
नख-शिख वर्णन के उच्चतम प्रतिमान!
कवि कल्पना के सार्थक प्रतिबिम्ब!
भगवती के स्वरूप का प्रत्यक्ष वर्णन!
आदि शंकराचार्य की कालजयी रचना!
श्री विद्या का क्रमिक स्फोट!
कुण्डलिनी सिद्धि के सरल सोपान!
रागी-विरागी : समान उपयोगी!
प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग का खुलासा!
विविध यन्त्रों का सटीक प्रयोग!
श्री यन्त्र : प्रत्यक्ष सिद्धि साधना!
तान्त्रिक योग पद्धति का मनभावन चित्रण!
सटीक : प्रामाणिक : सिद्ध स्तोत्र!
अनूठे प्रयोगों का मानसरोवर!

एक दृष्टि में....

संस्कृत भाषा का स्तुति-साहित्य अपने विशाल परिवेश में प्रस्तुत होता रहा है, जिसमें लोक-कल्याण की मूल भावना से विभिन्न मनीषी आचार्यों ने सुललित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

आचार्य प्रवर, जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य स्तुतिकारों में चूडामणि हैं। आपके द्वारा रचित स्तुतियाँ अगणित हैं, जिनमें आत्मानुभूति, प्रबल भक्ति, शास्त्रनिष्ठा, उदात्त विचार एवं सुमधुर वचोविन्यास के साथ-साथ मानव-मात्र के लिए कल्याणकारी मार्ग का निर्देशन पद-पद पर निखरा है।

जगद्गुरुत्व की अनूठी दृष्टि से सर्जित ऐसी स्तुतियों में 'सौन्दर्य-लहरी' का निर्माण एक अद्भुत रचना के रूप में लोक-प्रसिद्ध है। शाक्त-सम्प्रदाय में बहुचर्चित श्रीविद्या-सम्प्रदाय के आगमिक तत्त्वों का समावेश करते हुए अनेकविध मार्मिक विषयों का साङ्गोपाङ्ग निर्देश व्यंग्य-गर्भित वाणी के द्वारा अत्यन्त ललित-वचनों में किया गया है। जगन्माता की स्तुति का यह रूप हृदय-समुद्र की गम्भीरता को लहरी के रूप में उजागर करता है।

इस लहरी के सुधावर्षण से सिक्त परवर्ती आचार्यों ने इस स्तुति के पारमार्थिक रहस्यों की खोज अति प्राचीन काल से आरम्भ कर दी थी जिसके परिणाम-स्वरूप विभिन्न साधनोपयोगी रत्नों को उन्होंने खोज निकाला।

इस सौन्दर्यलहरी का प्रत्येक श्लोक मन्त्र एक समुद्र के समान है जिसमें भावभक्ति के साथ ही मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, योग एवं अन्यान्य आगम-तन्त्र-प्रतिपादित विषयों का निरूपण हुआ है। प्रत्येक पद्य का सामान्य अर्थ समझ लेने के साथ ही ध्वन्यर्थ का अनुमान होने पर जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह अनिर्वचनीय है।

"भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के असीम सौन्दर्य का सागर" इस

गागर में समाया हुआ है।

तन्त्रशास्त्रीय रहस्यों का इसमें अपूर्व समावेश है।

साधना, भक्ति एवं शास्त्र का एकत्र सन्निवेश इस सौन्दर्य-लहरी-स्तुति की मौलिकता है।

अनेक (प्रायः 40 से अधिक) व्याख्याकारों की शास्त्रीय प्रतिभा से परिष्कृत तन्त्र-सिद्धान्तों का आलोडन-विलोडन करने से उपलब्ध विषयों का यथाशास्त्र विधि-विधान-सङ्गत विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास इस प्रकाशन का प्रमुख उद्देश्य है।

व्याख्याकार आचार्यों ने यत्र-तत्र प्रसङ्गवश जो उपासना सम्बन्धी सङ्केत दिए हैं, उनका अन्यान्य तन्त्र ग्रन्थों के आधार पर वास्तविक रूप में यहाँ सूचन किया गया है।

मन्त्रशास्त्र-वाङ्मय में निर्दिष्ट शिव-शक्तिरूप सम्प्रदायगत तत्त्वों का विशिष्ट रचना-पद्धति से शङ्कर भगवन्पाद ने सर्वमन्त्रस्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी का वर्णन सौन्दर्यलहरी में किया है।

काव्यार्थ के अतिरिक्त गूढ़ार्थ का बोध होने पर पाठकगण सौन्दर्य लहरी के परम तत्त्व का अपूर्व आनन्द भी प्राप्त कर सकें, इस भावना से हिन्दी भाषा में यहाँ विवेचन किया गया है। पूर्वापर समन्वय एवं साहित्यिक छटा का निदर्शन 'छन्दःसारा' 'शास्त्रसारा' नामों के अनुरूप यहाँ प्रकटित है।

श्रीललिता महात्रिपुर सुन्दरी देशकालापरिच्छिन्ना, सर्ववेदान्ततात्पर्यभूता हैं। अतः सौन्दर्य-लहरी में गर्भित वेदान्त-सिद्धान्तों का संसूचन भी यहाँ संकलित हुआ है।

आचार्यों ने भगवती की स्तुति में कहा है कि यह माता भक्तों की अतुल्य पूजा-उपासना से प्रसन्न होती है। अतः इस स्तुति का नित्यपाठ, जप एवं काम्यकर्मपूर्ति के विधानों का विधिवत् पालन करके लाभ प्राप्त करें।

आचार्य शङ्कर : अभिजनवृत्त

जन्मसमय

भगवत्पाद श्री शङ्कर का आविर्भाव केरल प्रदेश के कालडी या कालटी ग्राम के नम्बूदिरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था, ऐसा प्राय: सभी दिग्विजय ग्रन्थों में उल्लेख है। यद्यपि विभिन्न परम्पराएँ इनके जन्मस्थान को केरल में अन्यत्र भी मानती हैं। केवल प्रान्त सर्वत्र समान है। आपको शङ्करांशसमुद्रभूत माना जाता है तथा किसी विशिष्ट कार्य के सम्पादनार्थ ही धरा धाम पर भेजे गए थे, ऐसी पुष्कल धारणा है। वैदिक धर्म का प्रचार करके अद्वैत वेदान्त की ध्वजा को सर्वत्र फहराने में आपका अनुपम योगदान रहा है। आपका आविर्भाव कब हुआ, यह विषय निश्चयपूर्वक कहना बहुत कठिन है। विद्वानों ने विक्रम संवत् की नवीं सदी व विक्रमपूर्व की नवीं सदी के मध्य तक इनका समय बताया है। सब के अपने-अपने तर्क हैं तथा सभी ने अपने मत को सर्वोपयुक्त बताने का प्रयत्न किया है। उक्त 1800 वर्षों के लम्बे अन्तराल में, शङ्कर भगत्वपाद वास्तव में कब विद्यमान थे ? यह निर्णय दुरूह है।

(क) कामकोटि पीठ के अनुसार भगतपाद शङ्कराचार्य 2553 कलि वर्ष से 2625 कलि वर्ष तक विद्यमान थे। तद्नुसार आज से (कलि संवत् 5100) लगभग 2500 वर्ष पूर्व शङ्कराचार्य का जन्म हुआ था।

(ख) द्वारकापीठ की वंशसूची के अनुसार 2631 कलि वर्ष में वैशाख शुक्ल 5 को जन्म लिया था तथा 2663 कलि वर्ष में इनका तिरोधान कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था।

(ग) 'केरलोत्पत्ति' नामक ग्रन्थ के अनुसार आप विक्रम संवत् की पाँचवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। तद्नुसार आपका जीवनकाल 38 वर्ष था।

(घ) महाराष्ट्र में प्रसिद्ध महानुभाव पन्थ के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दर्शनप्रकाश' में उल्लिखित वचनानुसार आप शक 610 से शक 642 तक विद्यमान थे।

(ङ) अन्य मत से 845 विक्रमी (788 ई.) से 877 विक्रमी (820ई.) तक आपका जीवनकाल था। अस्तु, परम्परा आचार्य का जीवनकाल 32 वर्ष ही मानती है। इनके जन्मवर्ष की शताब्दी का निर्णय भी अभी तक नहीं हो पाया है। जन्मवर्ष की तो बात ही क्या है?

जीवनवृत्त

आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य पद्मपाद ने अपने ग्रन्थ 'विजयडिण्डिम' में आचार्य के जीवनवृत्त को उनके दिग्विजय के वृत्तान्त के साथ बताया था। उक्त ग्रन्थ आज हमें किसी भी अवस्था में प्राप्य नहीं है। अन्य शङ्करविजय नाम से प्रसिद्ध पुस्तकों में से कोई भी पुस्तक आचार्य के जीवनकाल में नहीं लिखी गई है। ये सभी ग्रन्थ बाद में लिखे गए हैं। आफ्रेक्ट सूची के अनुसार शङ्करविजय ग्रन्थों की सूची दी जा रही है—

क्रम	नाम	रचयिता	प्रकाशित/अप्रकाशित
1.	शङ्करदिग्विजय	माधवाचार्य	प्रकाशित
2.	शङ्करदिग्विजय	आनन्दगिरि	प्रकाशित
3.	शङ्करविजय	चिद्विलास	ग्रन्थलिपि में मुद्रित
4.	शङ्करविजय	व्यासगिरि	—
5.	शङ्करविजय	सदानन्द	प्रकाशित
6.	आचार्यचरित	—	अप्रकाशित
7.	शङ्कराभ्युदय	राजचूडामणि दीक्षित	प्रकाशित
8.	शङ्करविजयविलास	शङ्करदेशिकेन्दु	अप्रकाशित
9.	शङ्करविजयकथा	—	—
10.	शङ्कराचार्यचरित	—	—
11.	शङ्कराचार्यावतारकथा	आनन्दतीर्थ	—
12.	शङ्करविलास चम्पू	जगन्नाथ	—
13.	शङ्कराभ्युदय काव्य	रामकृष्ण	—
14.	शङ्करदिग्विजयसार	व्रजराज	—

15.	प्राचीन शङ्करविजय	मूकशङ्कर	—
16.	बृहत् शङ्करविजय	सर्वज्ञ चित्सुख	—
17.	शङ्कराचार्योत्पत्ति	—	—
18.	गुरुवंशकाव्य	लक्ष्मणाचार्य	प्रकाशित

उक्त सभी ग्रन्थों में माधवाचार्यकृत शङ्करदिग्विजय अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक समझा जाता है। यहाँ उसी के अनुसार आचार्यचरित दिया जा रहा है। इन्हीं माधवाचार्य की प्रेरणा से महाराज हरिहर व महाराज बुक्क ने 'विजयनगर साम्राज्य' की स्थापना की थी। आप धर्मशास्त्र व मीमांसा के अद्वितीय विद्वान् थे। आपसे आचार्य शङ्कर का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है।

जन्म का रहस्य

केरल में नम्बूदरी ब्राह्मण वंश में 'शिवगुरु' व उनकी पत्नी 'सती' (अन्यत्र 'विशिष्टा' नाम है) रहते थे। मध्यावस्था तक उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ था। तब उन्होंने तपस्या का मार्ग अपनाया। कालटी के पास वृष पर्वत पर केरल नरेश राजशेखर द्वारा निर्मित महादेव मन्दिर में भगवान् शिव की उपासना प्रारम्भ की। लम्बी परीक्षा के बाद स्वयं भगवान् शिव ब्राह्मण वेश में उपस्थित हुए तथा उनकी तपस्या का प्रयोजन पूछा। शिवगुरु ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा प्रकट की तो विप्रवेश शङ्कर बोले—'एक पुत्र तुम्हें होगा। तुम विचार करके मुझे बताओ कि दीर्घायु लेकिन साधारण बुद्धि वाला पुत्र चाहिए या अल्पायु लेकिन सर्वज्ञ।' शिवगुरु ने सर्वज्ञ पुत्र की कामना की। पश्चात् वैशाख शुक्ल पंचमी को शङ्कराचार्य का आविर्भाव हुआ। ऐसा सर्वत्र माना जाता है कि आपकी आयु केवल 32 वर्ष ही रही थी। बालक शङ्कर बचपन से ही असाधारण प्रतिभा के धनी थे। वैदिक विद्वान् माता-पिता की वरदानोद्भूत सन्तान और भला कैसी होगी?

जब सोने के आंवले बरसे

पाँचवें वर्ष में उपनयन संस्कार पूर्वक बालक शङ्कर को गुरु के समीप भेजा गया। बालक की प्रतिभा ऐसी कि गुरु स्वयं चमत्कृत व अभिभूत हो गए। एक बार भिक्षा हेतु बालक ब्रह्मचारी शङ्कर किसी ब्राह्मण के द्वार पर पहुँचे। वहाँ दरिद्र विधवा ब्राह्मणी रहती थी। महान् धर्मसङ्कट उपस्थित हो गया।

ब्रह्मचारी भिक्षा देने के लिए आवाज दे रहा था और घर में कुछ भी देने योग्य नहीं था। आखिरकार ब्राह्मणी ने एक सूखा ऑवला ढूँढकर विप्रबटु शङ्कर को प्रस्तुत किया तथा अपनी अभावोंभरी कहानी सुनाई। बालक शङ्कर का हृदय पसीज गया। भगवान् शङ्कर के वरदान से उत्पन्न, ऊपर से स्वच्छ हृदय ब्राह्मण बालक, बस आव देखा न ताव, लगे लक्ष्मीजी को उलाहना देने। कहते हैं कि बालक शङ्कर ने लक्ष्मीजी की दिव्य स्तुति भरे श्लोकों की निर्बाध झड़ी लगा दी, तो भगवती लक्ष्मी का भी आसन डोल गया। तुरन्त ब्राह्मणी के घर में सोने के आंवलों की बरसात होने लगी और ब्राह्मणी का दारिद्र्य दूर हो गया। बालक शङ्कर अबोध भाव लिए प्रस्थान कर गए। यही स्तोत्र **'कनकधारा स्तोत्र'** के नाम से प्रसिद्ध है तथा सिद्ध स्तोत्र माना जाता है। चरित्र रक्षा करते हुए जो व्यक्ति इसका आदरपूर्वक पाठ करता है, उसके घर में रोजाना की जरूरतों हेतु आवश्यक साधन अवश्य जुटते हैं।

आचार्य शङ्कर की अनोखी कुण्डली

वैशाख शुक्ल पंचमी को कर्क लग्न में बालक शङ्कर का जन्म हुआ था। इनकी कुण्डली को तत्कालीन ज्योतिषी **दधीचि** व **त्रितल** ने देखा था तथा इनकी अपूर्व मेधा का संकेत दिया था। साथ ही बालक को प्रबल मारक योग भी बताया था।

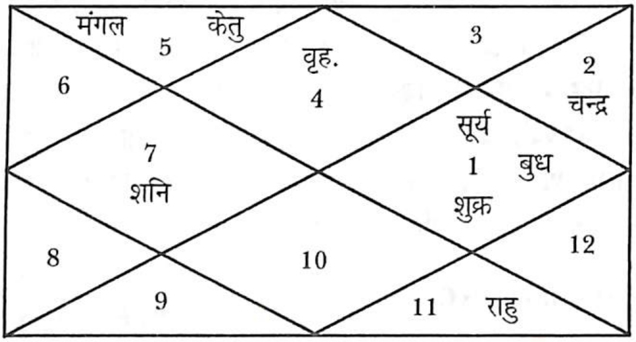

उक्त कुण्डली की प्रामाणिकता जन्मवर्ष सही-सही निश्चित हो जाने पर ही सिद्ध हो सकती है। यहाँ प्रसिद्ध कुण्डली दे दी गई है। इस कुण्डली में लगभग 686 ई. के मेष मास शुक्ल तृतीया की ग्रहस्थिति दी गई है, ऐसा लगता है।

नदी ने धारा बदली

शङ्कर की माता आलबाई नदी पर रोज स्नान के लिए जाती थी। एक दिन गर्मी के कारण वे वापसी में बेहोश हो गई। यह देखकर मातृभक्त बालक शङ्कर का हृदय दहल गया। उन्होंने सारी रात अपने कुलदेवता श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। प्रातःकाल लोगों ने आश्चर्य से देखा कि नदी कालटी गाँव के पास आकर बहने लगी है। इन्हीं अपनी माता के लिए, शङ्कराचार्य संन्यासी होकर भी दाह-संस्कार के समय स्वयं आए थे तथा अपने हाथों से माता का दाह-संस्कार किया था। यह बात संन्यासाचरण के विपरीत थी।

गुरु की खोज : घड़े में उफनती नदी

संन्यासी होकर बालक शङ्कर ने लम्बी यात्रा के पश्चात् नर्मदा के किनारे गोविन्दाचार्य से वेदान्त, उपनिषद व ब्रह्मसूत्रों को पढ़ा। बालक की विलक्षण प्रतिभा देखकर, गोविन्दाचार्य ने अपने गुरु गौडपादाचार्य से जो कुछ भी जाना था, सब उन्हें दे दिया।

गोविन्दाचार्य अपनी गुफा में समाधि में लीन थे। तभी नर्मदा में भयङ्कर बाढ़ आ गई। पानी गुफा के भीतर प्रवेश किया ही चाहता था। सब शिष्यों में भगदड़ मच गई। गुरु की समाधि भङ्ग करने का साहस कौन करे। शङ्कर ने गुफा के द्वार पर एक अभिमन्त्रित घड़ा रख दिया और नर्मदा का पानी गुफा में प्रवेश नहीं करके उसी घड़े में समाने लगा। गुरुजी ने जब इस विलक्षण घटना को सुना तो उन्हें व्यासजी का वह कथन याद हो आया जो उन्होंने हिमालय में किसी यज्ञ में स्वयं पधारे व्यासजी से कहा था कि जो एक घड़े में नदी भर सकता है, वही मेरे सूत्रों की सुन्दर व सटीक व्याख्या कर सकता है। तब गुरु की आज्ञा से शङ्कराचार्यजी काशी में भगवान् विश्वनाथ के दर्शन हेतु गए। वहीं भगवान् विश्वनाथ ने चाण्डाल रूप धारण करके उनसे प्रश्न पूछे तथा सन्तुष्ट होकर ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने की आज्ञा दी।

भगवान् बदरीनाथ की पुनः स्थापना

बदरिकाश्रम (बदरीनाथ क्षेत्र) में जाकर ही भाष्य लिखूँगा, क्योंकि व्यासजी का आश्रम वहीं है याँ था, ऐसा सोचकर जब शङ्कराचार्य जी वहाँ पहुँचे तो भगवान् की मूर्ति को वहाँ नहीं पाया। पता लगा कि चीनी डाकुओं के डर से पुजारियों ने मूर्ति

को नारदकुण्ड में छिपा दिया है। शङ्कराचार्य ने स्वयं मूर्ति निकालकर पुन:प्रतिष्ठित की तथा वेदज्ञानशून्य पर्वतीय ब्राह्मणों को देखकर नम्बूदरी ब्राह्मण को केरल से बुलाकर पूजा का भार सौंपा। तबसे आज तक वहाँ पर प्रधान पुजारी केरलीय नम्बूदरी ही होते हैं। इन्हें आजकल 'रावल' के नाम से जाना जाता है।

व्यासजी का आशीर्वाद

सोलहवें वर्ष में ब्रह्मसूत्र, गीता व उपनिषदों पर भाष्य लिखकर पूर्ण किया तो एक दिन विचित्र घटना घटी। एक वृद्ध ब्राह्मण आकर ब्रह्मसूत्र के एक सूत्र (3.3.1) पर शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने लगा। तुमुल शास्त्रार्थ 7 दिनों तक चला तथा शङ्कराचार्य ने ब्राह्मण की सभी शङ्काओं का यथोचित समाधान किया। सन्तुष्ट ब्राह्मण के विलक्षण वैचक्षण्य को देखकर शङ्कर शिष्य पद्मपाद के मन में सन्देह हुआ और शङ्कर की प्रार्थना पर वेदव्यासजी ने अपना वास्तविक रूप उन्हें दिखाया। तभी व्यासजी ने और 16 वर्षों की आयु का आशीर्वाद दिया तथा शङ्कराचार्य की शिष्यमण्डली को चिन्तामुक्त किया। कारण, 16वें वर्ष में आचार्य को प्रबल मृत्यु योग आ रहा था।

कुमारिल भट्ट से भेंट

अपने समय के प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट से आचार्य शङ्कर की भेंट ऐतिहासिक है। अपने लिखे भाष्य पर वार्तिक लिखे जाने की इच्छा से प्रेरित होकर आप उनसे मिलने हेतु प्रयाग (त्रिवेणी) की ओर चले थे। कुमारिल अपने समय के उद्‌भट विद्वान् थे, जिन पर लक्ष्मी व सरस्वती देवी दोनों की भरपूर कृपा थी। उन्हें वार्तिक लिखने में सिद्धहस्त माना जाता था।

दुर्भाग्य से यह मिलन केवल क्षणिक ही रहा और वह भी बहुत कारुणिक स्थिति में हुआ था। कुमारिल भट्ट के निकट पहुँचकर देखा तो आचार्य शङ्कर ने उन्हें स्वयं को भूसी की आग में जलते हुए पाया। उनका निचला हिस्सा जल चुका था, लेकिन मुख पर परम शान्ति थी। आचार्य शङ्कर के पूछने पर उन्होंने कहा कि मैंने दो भारी पाप किए हैं। एक तो अपने बौद्ध गुरु को तिरस्कृत किया है तथा दूसरे मैंने अपने ग्रन्थों में ईश्वर का खण्डन किया है। अत: प्रायश्चित स्वरूप मैं ऐसा कर रहा हूँ और मेरा निश्चय अटल है।

आचार्य शङ्कर ने उन्हें बहुत समझाया। अपनी मन्त्रशक्ति से उन्हें

स्वस्थ करने का आश्वासन दिया, लेकिन उन्होंने अपना निश्चय नहीं बदला। केवल अपने शिष्य मण्डन मिश्र को अपना सहयोगी बनाने की सलाह देकर देह त्याग दिया। यहीं पर गङ्ग-यमुना-सरस्वती के सङ्गम पर दो महान विभूतियों की यह अलौकिक भेंट थी।

तोतों द्वारा वेदपाठ

कर्ममीमांसा के उद्भट विद्वान्, अनेक कालजयी ग्रन्थों के रचयिता, कुमारिल भट्ट के प्रधान शिष्य मण्डन मिश्र से मिलने के लिए आचार्य शङ्कर महिष्मती नगरी (वर्तमान मान्धाता शहर निकट इन्दौर) पहुँचे। मण्डन मिश्र को ब्रह्माजी का अवतार मान लिया गया था तथा उनकी पत्नी शारदा या भारती भी परम विदुषी स्त्री थी। आचार्य ने अपने शिष्यों को नर्मदातीर पर स्थित एक शिवालय में विश्राम की अनुमति दी तथा स्वयं चल पड़े मण्डन मिश्र के गृह की ओर। अब इतने बड़े नगर में, भरी दोपहरी में, संन्यासी शङ्कराचार्य ने कुछ महिलाओं से मण्डन मिश्र के बारे में पूछा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ तथा कहा—बाहर से आए हो, नहीं तो यहाँ कौन है जो मण्डन मिश्र को नहीं जानता? अस्तु इस मार्ग से जाओ और जिस बड़े घर के दरवाजे पर तोता-मैना वेदमन्त्र बोल रहे हों और वैदिक प्रामाण्य पर शास्त्रार्थ कर रहे हों, उसे ही मण्डन मिश्र का घर समझना।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरांगना यत्र गिरोगिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा अवेहि तन्मण्डनमिश्रधामम्॥

शङ्कर जब वहाँ पहुँचे तो कोई उन्हें भीतर जाने ही न दे। द्वारपालों ने कहा कि हमारे स्वामी अपने पिता का श्राद्ध कर रहे हैं, अतः किसी को भी अनुमति नहीं है। मण्डन मिश्र जी ने साक्षात् वेदव्यास जी व मीमांसाप्रवर्तक जैमिनि मुनि को भी बुला रखा था। शङ्कराचार्यजी आकाशगामिनी विद्या का प्रयोग करके उनके आँगन में पहुँच गए। श्राद्धकाल में अनिमन्त्रित संन्यासी को आया देखकर मिश्रजी कुपित हुए। आचार्य ने शान्त भाव से अपना उद्देश्य सुना दिया तो वे बड़े प्रसन्न हुए। व्यास जी की अनुमति से मण्डन मिश्र की पत्नी निर्णायक बनी और तुमुल शास्त्रार्थ छिड़ गया। अनेक दिनों तक जब शास्त्रार्थ समाप्त होता नजर नहीं आया तो शारदा ने दोनों के गले में एक-एक माला पहना दी तथा कहा कि जिसकी माला पहले सूख जाएगी, वही परास्त मान लिया जाएगा, और मण्डन मिश्र की माला मुरझा गई। शङ्कराचार्य को विजयी घोषित किया गया।

पण्डित समाज में हड़कम्प मच गया और तब शुरू हुआ विचित्र घटनाचक्र ।

आचार्य का परकाया प्रवेश

मण्डन मिश्र की पत्नी ने पासा पलटा और कहा कि आपकी विजय तब तक पूर्ण नहीं मानी जाएगी, जब तक आप मुझे भी परास्त नहीं कर देंगे । आखिर मैं इनकी अर्धांगिनी हूँ । शङ्कर ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया । शास्त्रार्थ में शारदा या भारती ने कामशास्त्र का विषय छेड़ दिया । शङ्कर ठहरे निपट संन्यासी । कमजोर नस भारती के हाथ लग गई । तब आचार्य ने उनसे समय माँगा और एक गुफा में अपने स्थूल शरीर को सुरक्षित छोड़कर, तभी मृत हुए राजा अमरुक के शरीर में प्रवेश कर गए। राजा जीवित हो गया, लेकिन व्यवहार में था विलक्षण परिवर्तन । राजा के रूप में कामशास्त्र में निपुणता प्राप्त की तथा एक मास की अवधि बीत गई । तब शिष्यों के उद्बोधन से आचार्य शङ्कर ने पुन: आत्मरूप प्राप्त करके शारदा के प्रश्नों के उत्तर निपुणता से दिए। शङ्कर पूर्ण विजयी रहे तथा पहले दिए गए वचन के अनुसार मण्डन मिश्र भी संन्यासी होकर आचार्य के यशस्वी शिष्य 'सुरेश्वराचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हुए । सुरेश्वराचार्य ने ही शृङ्गेरी के सुरम्य वातावरण में ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य पर वार्तिक लिखे ।

अभिनव गुप्त का मारण प्रयोग

आसाम के एक प्रसिद्ध तान्त्रिक अभिनव गुप्त जब शास्त्रार्थ में आचार्य से पराजित हुए तो बदले की भावना से आचार्य पर उन्होंने मारण मन्त्र का प्रयोग कर दिया । आचार्य को विषम भगन्दर रोग की पीड़ा झेलनी पड़ी । सारी बातें अपनी योगशक्ति से जानकर आचार्यजी के शिष्य पद्मपाद ने विशेष प्रयोग किया और आचार्य स्वस्थ हुए। साथ ही अभिनव गुप्त स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुए। वास्तव में दुर्भावना से मन्त्र शक्ति का प्रयोग करना सदा ही आत्मघाती होता है ।

माता का दाह-संस्कार

समूचे भारत में अद्वैत वेदान्त की पताका फहराने के बाद शङ्कर अन्तःप्रेरणा से स्वयं ही केरल जन्मभूमि की ओर चल पड़े । वहाँ पर उनकी माता मृत्यु-शैया पर पड़ी थी । माता के आग्रह पर आचार्य ने सगुण रूप में माता को भगवान्

के स्वरूप का वर्णन सुनाया और माता की इहलीला समाप्त हो गई। शङ्कर अपने संन्यासी-पूर्व जीवन में दिए गए अपने वचन के कारण स्वयं माता का दाह-संस्कार करने को उद्यत हुए, लेकिन सभी ब्राह्मण समुदाय उनके इस अनोखे कृत्य को देखकर उनसे विमुख हो गए। तब स्वयं अकेले ही अपने घर के पास ही माता का दाह-संस्कार किया। भला अकेले वे अर्थी उठाते भी तो कैसे? शङ्कर केरल में अकेले ही आए थे। दाह के बाद उन्होंने अपने वंशजों को शाप दिया। तभी से इन ब्राह्मणों के घर के पास ही श्मशान भूमि हो गई।

सर्वश्रेष्ठ होने की परीक्षा

कश्मीर (शारदा प्रदेश) में शारदा देवी के मन्दिर से प्रमाणपत्र मिले बिना, उस युग में किसी को धुरन्धर विद्वान् नहीं माना जाता था। ऊपर से दाक्षिणात्य अच्छे विद्वान् नहीं होते, यह प्रथा भी थी। आचार्य ने दाक्षिणात्यों पर लगाए जानेवाले इस कलङ्क को धोने का दृढ़ निश्चय किया और चल पड़े कश्मीर की ओर। वहाँ पर मन्दिर में चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे। तीन दरवाजे खुले रहते थे और दक्षिणी दरवाजा सदा बन्द रहता था। कारण कि अब तक कोई दक्षिणी भारतीय वहाँ की कड़ी परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सका था। उन्होंने दक्षिणी दरवाजे को खोलकर जैसे ही प्रवेश करना चाहा, चारों ओर से विभिन्न शास्त्रों से सम्बद्ध प्रश्नों की मूसलाधार वर्षा होने लगी। पण्डितों के प्रश्नों का सटीक उत्तर दिया और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ विद्वानों व आचार्यों की श्रेणी में रखे जाने योग्य सिद्ध किया।

मन्दिर में भीतर एक सिंहासन, जिसे सर्वज्ञपीठ कहते थे, उस पर बिठाकर उत्तीर्ण विद्वान् का अभिनन्दन किया जाता था। जैसे ही आचार्य शङ्कर सर्वज्ञ पीठ पर बैठने लगे तब स्वयं माँ शारदा की वाणी फूट पड़ी। उन्होंने कहा कि इस पीठ पर बैठने के लिए शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान ही काफी नहीं है अपितु चरित्र व आचरण की पवित्रता भी एक अनिवार्य कसौटी है। तुमने संन्यासी होकर भी कामकला सीखी तब तुम पावन चरित कैसे हो सकते हो? आचार्य के सम्मुख स्वयं शारदा सरस्वती भी निरुत्तर हो गई। आचार्य ने कहा कि किसी भी विधि-विधान से मनुष्य अपने शरीर से किए गए पापों या कर्मों का शुभाशुभ फल भोगता है। आत्मा भोक्ता नहीं है। तब

दूसरे शरीर से किए गए पातक का फल मुझे कैसे व्याप्त हो सकता है ? देवी ने उनके सर्वज्ञ होने पर अपनी सहमति की मुहर लगा दी।

माँ त्रिपुर सुन्दरी ने दूध पिलाया

आचार्य शङ्कर के संन्यासपूर्व जीवन की एक अलौकिक घटना का उल्लेख करना यहाँ बहुत प्रासंगिक है। इसका संकेत आचार्य ने सौन्दर्यलहरी के 75वें श्लोक में स्पष्टतया किया है। शङ्कर के पिता ग्राम के निकटवर्ती एक मन्दिर में भगवती त्रिपुरेश्वरी की पूजा किया करते थे। वहाँ से पूजा का पंचामृत रोज घर लाकर बालक शङ्कर को भी देते थे। उसका स्वाद बालक को बहुत रुचता था। एक बार किसी कारणवश इनके पिता को गाँव से बाहर जाना पड़ा। उन्होंने खूब सोचकर बालक शङ्कर को कहा कि मेरी अनुपस्थिति में तुम देवी के सम्मुख वे सभी वस्तुएँ भोगरूप में प्रस्तुत कर दिया करना, जो मैं तुम्हारी माता को समझाकर जा रहा हूँ। बालक फूल, फल, अक्षत, पंचामृत सब लेकर मन्दिर में गए। जैसा बताया वैसा ही पूजन किया और पंचामृत मूर्ति के समक्ष प्रस्तुत किया। बालक श्लोक का भाव समझते थे। अतः पंचामृत सामने प्रस्तुत करके भगवती द्वारा उसे ग्रहण करने की प्रतीक्षा करने लगे। सारा दिन बीत गया, बालक शङ्कर देवी से पंचामृत को ग्रहण करने का आग्रह करने लगे और आखिर माता को पंचामृत ग्रहण करना पड़ा। लेकिन यह क्या ? सारा पंचामृत तो भगवती ने पी लिया। मेरे लिए कुछ भी नहीं बचा। यह देखकर बालक शङ्कर रोने लगे। उनकी अविरल अश्रुधारा देखकर माता भी पसीज उठी और उनके हठ के सामने कि मुझे पंचामृत पिलाओ, स्वयं अपने स्तन से बालक को अपना अमृत पिलाया। बालक प्रसन्न होकर घर लौट आया।

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः।
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव।। (सौ. लहरी. 75)

आचार्य शङ्कर के ग्रन्थ

आदि शङ्कराचार्य के ग्रन्थों के विषय में शृङ्गेरी के शङ्कराचार्य की देखरेख में श्रीरङ्गम् से वाणीविलास प्रेस से 20 जिल्दों में एक ग्रन्थावली प्रकाशित हुई है। इसे ही आज तक सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। वास्तव में शङ्कराचार्य जी के नाम से प्राप्त विपुल साहित्य में अन्य शङ्कराचार्य उपाधि

धारण करनेवाले मठाधीशों की रचनाएँ भी सम्मिलित हो गई हैं। जिससे इदमित्थंतया निर्णय करना बहुत कठिन है। पुनश्च प्रमुख भाष्यग्रन्थ निर्विवाद रूप से इन्हीं की कृति है तथा इनका स्तोत्र साहित्य भी बहुत विपुल है। हम यहाँ उनके प्रसिद्ध ग्रन्थों की सूची ही दे रहे हैं—

भाष्य ग्रन्थ :

1. ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य
2. भगवद्गीता भाष्य
3. केनपद भाष्य
4. केनवाक्य भाष्य
5. अन्य लगभग 8 उपनिषद् भाष्य
6. माण्डूक्यकारिका भाष्य
7. सनत्सुजातीय भाष्य
8. विष्णुसहस्रनाम भाष्य
9. हस्तामलक भाष्य
10. ललिता त्रिशतीभाष्य

अन्य प्रकरण ग्रन्थ—

12. अद्वैत पंचरत्न
13. अद्वैतानुभूति
14. अनात्मश्रीविगर्हणप्रकरण
15. अपरोक्षानुभूति
16. आत्मपंचक
17. आत्मबोध
18. आत्मषट्क
19. उपदेशपंचक
20. उपदेशसाहस्री
21. एकश्लोकी
22. कौपीन पंचक
23. चर्पटपंजरिका
24. जीवन्मुक्तानन्दलहरी
25. तत्त्वबोध
26. तत्त्वोपदेश
27. दशश्लोकी
28. द्वादश पंजरिका
29. धन्याण्टक
30. निर्गुणमानसपूजा
31. निर्वाणमंजरी
32. निर्वाणषट्क
33. पंचीकरण प्रकरण
34. परापूजा
35. प्रबोधसुधाकर

36. प्रश्नोत्तररत्नमालिका
37. प्रौठानुभूति
38. ब्रह्मज्ञानावली
39. ब्रह्मानुचिन्तन
40. मनीषापंचक
41. मायापंचक
42. मुमुक्षुपंचक
43. योगतारावली
44. लघुवाक्यवृत्ति
45. वाक्यवृत्ति
46. वाक्यसुधा
47. विज्ञाननौका
48. विवेक चूड़ामणि
49. वैराग्यपंचक
50. शतश्लोकी
51. षट्पदी
52. सदाचारानुसन्धान
53. सर्ववेदान्त सिद्धान्तसारसंग्रह
54. सर्वसिद्धान्तसारसंग्रह
55. स्वात्मनिरूपण
56. स्वात्मप्रकाशिका
57. साधनपंचक
58. प्रपंचसार

स्तोत्रसाहित्य—

59. सौन्दर्यलहरी (103 श्लोक)
60. देवीभुजंगस्तोत्र
61. त्रिपुरसुन्दरीमानसपुत्र (127 श्लोक)
62. त्रिपुर सुन्दरोष्टक
63. आनन्द लहरी
64. त्रिपुरसुन्दरीवेदपादस्तोत्र
65. देवी चतु:षष्ट्युपचार पूजा
66. ललितापंचरत्न
67. कल्याणवृष्टिस्तव
68. कनकधारास्तोत्र
69. अन्नपूर्णास्तव
70. मीनाक्षीपंचरत्न
71. मीनाक्षीस्तोत्र
72. भ्रमराम्बासृक
73. गौरीदशक
74. नवरत्नमालिका
75. मन्त्रमातृकापुष्पमाला स्तव
76. भवानी भुजंग
77. शारदाभुजंगप्रयाताष्टक

इनके अतिरिक्त 4 गणेश स्तोत्र, 18 शिव स्तोत्र, 10 विष्णु स्तोत्र, 4 युगल देवता स्तोत्र, 6 नदी तीर्थ स्तोत्र, 7 साधारण स्तोत्र भी लिखे गए माने जाते हैं।

इतने विपुल साहित्य की रचना 32 वर्ष की छोटी-सी आयु में कर पाना वास्तव में दैवीशक्ति से ही सम्भव है। शृङ्गेरी पीठ के अनुसार आपने कैलास में अपना शरीर त्यागा था। अन्य परम्परा से केरल में आचार्य का महाप्रयाण

हुआ था। विद्वान् लोग हिमालय में देह त्याग की बात को अपेक्षाकृत प्रामाणिक मानते हैं। वैशाख शुक्ल दशमी या पूर्णिमा को या कार्तिक शुक्ल एकादशी को इनकी प्रयाण-तिथि मानी जाती है। सामान्यत: माना जाता है कि काश्मीर में सर्वज्ञपदवी प्राप्त कर आचार्य बदरीनाथ गए थे। वहाँ कुछ दिन रहकर वे दत्तात्रेय जी के दर्शन करने उनकी गुफा में गए। पश्चात् हिमालय में ही आपने प्रयाण किया। केदारनाथ धाम के निकट आपकी समाधि अभी भी है। आचार्य के विषय में प्रसिद्ध है कि 8 वर्ष की अवस्था में चारों वेदों का अध्ययन, 12 वर्ष तक सर्वशास्त्रवेत्ता, 16वें वर्ष में भाष्य रचना व 32वें वर्ष में प्रयाण हुआ।

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।

आद्य शङ्कराचार्यरचित सौन्दर्यलहरी

पीठिका

सौन्दर्यलहरी एक अत्यन्त प्रभावी व लोकप्रिय स्तोत्र है। शक्ति सम्प्रदाय के इस अप्रतिम स्तोत्र में 100 श्लोक होने से इसे **'शतश्लोकी'** भी कहा जाता है।

इसके दो भाग हैं। पूर्व भाग में शक्ति उपासना का मूलभूत तत्त्व ज्ञान है जो 1 से 42 श्लोक तक द्रष्टव्य है। द्वितीयार्ध में 43 से 101 श्लोक पर्यन्त भगवती त्रिपुरसुन्दरी का आमूलचूड़ अर्थात् भगवती के किरीट से चरणारविन्द पर्यन्त सुरम्य वर्णन है।

कतिपय विद्वानों के मत से पूर्वभाग **'आनन्द लहरी'** व अपर भाग **'सौन्दर्यलहरी'** है। कुछ लोग दोनों भागों को संयुक्त नाम **'आनन्दलहरी'** से अभिहित करते हैं।

शाक्त सम्प्रदाय को कुछ लोग वेदविरोधी कहते हैं, जबकि वास्तव में दोनों अभिन्न हैं तथा एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। इस सन्दर्भ में निवेदन है—

धर्म का पूर्वांग वेद है व उत्तरांग आगम है। वैदिक नित्यनैमित्तिक कर्म निष्काम होते हैं, जिनसे चित्त शुद्ध होकर, मनुष्य साधना या उपासना का अधिकारी होता है। उपासना सकाम व निष्काम होती ही है। शाक्त मार्ग उपासना प्रधान है तथा इसका चरम ध्येय परम पुरुषार्थ साधन या मोक्षप्राप्ति है। वेदोक्त ज्ञानमार्ग में आगमोक्त तत्त्व पूर्णत: अनुस्यूत व व्याप्त हैं।

आगमों में जिन उपास्य देवों का वर्णन है उनका बीज वेदों में है। उषा, अदिति, उमा, सरस्वती आदि सभी का विवेचन देवी माहात्म्य में है। वेदजननी और वर्णाश्रम धर्मविधायिनी ये नाम ललितासहस्रनाम में आते हैं, जो इसी मन्तव्य के पोषक हैं। श्वेताश्वतर व मुण्डकोपनिषद में यह विद्या ब्रह्मविद्या के नाम से कही गई है।

वास्तव में शाक्त मार्ग नि:श्रेयस व अभ्युदय का दाता है। केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत आदि विचारधाराएँ वेदों के तत्त्व ही हैं। शाक्त मार्ग की उपासना अद्‌वैतनिष्ठ है। त्रैपुरसिद्धान्त पूर्णाद्वैत है। श्रीशङ्कराचार्य की भाष्यत्रयी का अद्वैत, वास्तव में पूर्णाद्वैत ही है, जो शाक्त मार्ग का प्राण है।

इस मार्ग में शिवशक्ति की अभेदोपासना है। शिवशक्ति अर्थात् सगुण ब्रह्म। आचार्य शङ्कर का कथन है कि उपास्य रूप सगुण ब्रह्म है तथा ज्ञेय रूप निर्गुण है। सगुण के माध्यम से निर्गुण में समाहित होना ही शाक्तमार्ग है। उपासना विधि द्वैत होते हुए भी उपासना की पूर्णता पूर्णाद्वैत सिद्धि में ही निहित है। उपासना अनेक होते हुए भी उपास्य एक ही है। उपनिषदों में अनेक उपासनाएँ वर्णित हैं—प्रणवोपासना, शाण्डिल्य विद्या, पंचाग्नि उपासना आदि। ऐसे ही उपासना भेद शाक्तमार्ग में भी हैं।

मूर्ति, मन्त्र, बाण, पुरश्चरण, न्यास, होमादि बाह्य रूप हैं। बीजाक्षर, मन्त्र आदि का जप, लय, कुण्डलिनी आदि का योग आन्तर् उपासना है। स्थूल उपासना बाह्य व सूक्ष्म रूप आन्तरोपासना है। अत: शाक्त मार्ग अर्थात् अद्वैत मार्ग का प्रापक योगमार्ग है। उपासनाभेद वास्तव में योगप्रासाद के दृश्य आधार-स्तम्भ ही हैं। अन्तिम चरण, समाधि, योगसाध्य है, यह शाक्त सम्प्रदाय की मान्यता है।

अपि च **'यत्रास्ति भोगो न तत्र मोक्ष:'** के अनुसार भगवती त्रिपुर सुन्दरी की उपासना ऐहिक व पारलौकिक सुख प्रदान करती है, अर्थात् अभ्युदय व नि:श्रेयस की सिद्धि का सोपान है। अत: त्रिपुरसुन्दरी की उपासना वैदिक मतानुकूल ही है।

भगवती के दृश्य रूप का आलंकारिक नखशिख वर्णन भी वैदिक देवस्वरूप निरूपण से ही अनुप्राणित है। वैदिक देवता आधिदैविक व आधिभौतिक सृष्टि में विविध कार्य सम्पन्न करते हैं। उनके दृश्यरूप का संकेत भी क्वचित् मिलता ही है। **'इन्द्रो मायाभि: पुरुरूप ईयते'** इस श्रुति में इन्द्र को मायाशक्ति से विविधरूप धारण करनेवाला बताया है। वेदों में देवों को वपोदर (स्थूलोदर) सुबाहु, नीलग्रीव, युवा, बृहच्छरीर आदि विशेषण यथावसर दिए हैं, जो मूर्ति रूप के बीज ही हैं। अग्नि को सप्तहस्ता, सप्तजिह्व कहना व ब्राह्मण ग्रन्थों में मूर्तिरूपों का वर्णन करना इसी बात को पुष्ट करता है।

होताभक्षत् पेयस्वतीः । तिस्रो देवीर्हिरण्मयीः । भारतीर्बृहतीर्महीः

(तै. ब्राह्मण)

बौधायन, लौगाक्षि, गौतम आदि के गृह्यसूत्रों में भी स्वरूपगत वर्णन है। वैदिक उपासना का योगमार्ग खोलने वाली सौन्दर्यलहरी के प्रत्येक श्लोक को मन्त्र कहा जाता है।

आचार्य श्री श्रीविद्या के परम उपासक थे। अखण्ड परम्परा का अवलोकन करके आचार्य के द्वारा स्थापित सभी मठों में श्रीविद्या की उपासना चल रही है। 'सौन्दर्यलहरी' श्रीविद्या का ही एक स्तोत्र है। इस स्तोत्र को एक 'स्वतन्त्र तन्त्र' का स्वरूप प्राप्त हुआ है। इसमें शिव-शक्ति स्वरूप विश्व के माता-पिता का एक महान् स्वरूप आचार्य की दृष्टि में 'श्रीचक्र' के रूप में प्रस्तुत हुआ है। जीव को शिवशक्तिस्वरूप अद्वैत तत्त्वपर्यन्त पहुँचने के लिए श्रीचक्रस्वरूप श्रीविद्या मन्दिर में नौ (सम्प्रदाय भेद से दस) आवरणों के माध्यम से क्रमशः आगे बढ़ना होता है। इस श्रीचक्र की चारों दिशाओं में चार द्वार हैं। ये द्वार सम्प्रदाय भेद से कहीं आवृत्त होते हैं जबकि कुछ सम्प्रदाय अनावृत्त ही रखते हैं। साधक जैसे ही श्रीविद्या के द्वार पर आता है कि उसे चतुष्कोणाकार प्रथम आवरण मिलता है। इसी को 'भूपुर चक्र' कहते हैं। यह तीन रेखाओं से बना है। ये रेखाएँ क्रमशः 10 अणिमादि सिद्धियों, 8 ब्राह्मी आदि मातृकाओं तथा 10 सर्वसंक्षोभिण्यादि मुद्राओं से अलंकृत हैं। दस दिशाओं में दस दिक्पाल विराजमान हैं।

साधकों को सिद्धियों के मोह में न पड़ते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, पाप और पुण्य इन सब पर विजय प्राप्त करने के लिए द्वितीय आवरण के लिए आगे प्रवेश करना चाहिए।

द्वितीय आवरण के सम्बन्ध में सामान्यतः मतभेद है। उसमें यह ज्ञातव्य है कि 'त्रिवृत्त-चक्र' को प्रायः स्वतन्त्र आवरण नहीं मानते हैं, और उसके तीनों वलयों को सत्त्व, रजस् और तामस गुणों का द्योतक माना है। जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति रूप तीन अवस्थाओं के ये तीनों वलय ज्ञापक हैं अथवा ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि एवं रुद्र-ग्रन्थि किंवा सोम, सूर्य तथा अग्नि के भी ये द्योतक हैं।

यन्त्रों का स्वरूप-विचार

'सौन्दर्य-लहरी' का शाक्त-सम्प्रदाय में पर्याप्त सम्मान है। अति प्राचीन काल

से साधक-गण इस लहरी का पाठ तथा इसमें निर्दिष्ट विचारों का चिन्तन करते आए हैं। न केवल भारत में ही, अपितु विदेशों में भी यह आकर्षण तथा मनन का आधार बनी है। भारतीय मनीषियों ने इस पर व्याख्याएँ लिखने का भी पूरा प्रयास किया है जबकि विदेशी विद्वानों ने अनुवाद एवं प्रस्तावनाओं के माध्यम से इसके वैशिष्ट्य को उजागर किया है।

इतने विस्तृत विचार-मन्थन से जो तथ्य आए हैं उनमें स्तुति, दार्शनिक विशिष्टता, मन्त्र, यन्त्र और योगशास्त्रीय महत्ता के दर्शन प्रमुख हैं। भारतीय भाषाओं में भी कतिपय अच्छे अनुवाद प्राप्त हैं। सभी ने अपनी-अपनी प्रतिभा का इसमें उपयोग किया है, जिसे हम प्रसंगानुसार प्रदर्शित करेंगे। यहाँ यन्त्र-विषयक विमर्श में यन्त्र-स्वरूपों पर विचार प्रस्तुत हैं।

सर्वप्रथम इन यन्त्रों की स्वरूपात्मक प्रस्तुति किसी प्राचीन किन्तु अज्ञातनामा टीकाकार ने की थी। उसके पश्चात् केरलीय भाषा और अंग्रेजी भाषा में अनूदित संस्करणों में इनका प्रकाशन हुआ। मैसूर से प्रकाशित देशिकप्रवर लक्ष्मीधर की 'लक्ष्मीधरा' टीका के प्रकाशन के साथ ही संस्कृत भाषा में इन यन्त्रों की प्रयोगविधि का अनुवाद करके ये 100 यन्त्र प्रकाशित हुए। उत्तरवर्ती प्रकाशित ग्रन्थों में उसी संस्करण को आधार मानकर यन्त्र-प्रकाशन हुए। धीरे-धीरे यन्त्र के पूर्वस्वरूपों को कर्मपरकता की दृष्टि से सामान्य परिवर्तित करके भी प्रस्तुत किया गया; किन्तु किसी भी आचार्य ने यह स्पष्ट नहीं किया कि वैसा करने का कारण क्या रहा?

श्रीयुत मोतीलालजी महाराज ने इस दिशा में नवीन अनुसन्धान करते हुए 'सार्थ सौन्दर्यलहरी' में यन्त्र, उनमें लेख्य बीजमन्त्र एवं साधना-विधि में नवीन दृष्टि को उपस्थापित किया है। खेद है कि उन्होंने भी इस नवीन स्थापना का कारण अथवा आधार चर्चित नहीं किया है।

लक्ष्मीधरी टीका के अतिरिक्त सौन्दर्य-लहरी के अन्य सुप्रसिद्ध टीकाकारों ने यन्त्र-विषय पर कहीं कोई उल्लेख अथवा संकेत भी नहीं दिया है, यह आश्चर्य का विषय अवश्य है।

यन्त्रों के स्वरूप मुख्यतः चतुष्कोण, त्रिकोण, अष्टदल, वृत्त, षट्कोण, चतुर्दल, अष्टकोण, श्रीचक्र एवं विचित्र रेखारूप में हैं। कोई भी रूप केवल रेखात्मक नहीं है, जबकि श्रीयन्त्र सुप्रसिद्ध रूप में ही है। अन्य सभी यन्त्रों में बीजाक्षर एक अथवा उससे अधिक संख्या में लिखित हैं। एक 20 कोष्ठात्मक

चतुष्कोण यन्त्र में शिवपञ्चाक्षरमन्त्र अंकित है, जबकि चार यन्त्रों में लहरी के क्रमागत पद्य ही लिखित हैं। एक नवकोष्ठात्मक यन्त्र नवग्रहों के आद्याक्षरों से मण्डित भी है।

योगिराज बाबाश्री मेहताजी ने सौन्दर्य-लहरी के 'शताक्षरी महामन्त्र' के जो 101 बीजाक्षर दिए हैं उनमें प्रत्येक का एक-एक यन्त्र भी दिया है। उनकी मान्यता है कि उन 101 यन्त्रों में श्रीयन्त्र का एक-एक भाग है। यथा—मध्य के 43 त्रिकोण, 8 और 16=24 पद्मदल, 15 त्रिवृत्त (धनुराकार यन्त्र), 19 त्रिभूपुर (चतुष्कोण यन्त्र) ये सब मिलकर 101 यन्त्र हैं। इनमें 43 त्रिकोणों के परिवार देवता और 24 पद्मदलों के देवता प्रसिद्ध हैं। त्रिवृत्त में 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय तथा 5 तन्मात्राओं का और भूपुरत्रय में 5 प्रेतासन देव, 10 दिक्पाल तथा 4 मन, बुद्धि, चित्त एवं अहङ्कार हैं। और 4 निर्वाण। ये क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण और गुणातीत हैं। यहाँ 'तनीयांसं पांसुं' इस पद से 'कामकलारूप' गुणांश का चयन करके ये त्रिदेव सगुण जगत् की सृष्टि आदि क्रियाएँ करते हैं। यह संकेत दिया है। कामकला का स्वरूप आगमों में 'ई' दिया गया है।

पं. देवदत्त शास्त्रीजी ने 'त्रिपुर सुन्दरी-साधना' पुस्तक में इस पद्य से संघर्ष, विपत्ति, दुर्गति, अप्रतिष्ठा-नाशक तथा श्री, कीर्ति, विजय देनेवाले **"ॐ श्रीं ऐं श्रीं श्रीं क्लीं श्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं दुर्गां दुर्गतारिणीं पद्ममालिनीं मातरं प्रपद्ये स्वाहा"** इस मन्त्र का उद्धार बतलाया है। इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए।

गुप्तावतार बाबा मोतीलालजी मेहता इस पद्य का बीजाक्षर 'त' जप-संख्या 10 हजार, जपस्थान मूलाधार, रक्तपुष्प का हवन, बिल्वफल व तिल, जौ से हवन 100 अथवा 10 आहुति, इसी प्रकार दशांश मार्जन, तर्पण, श्लोकपाठ 10, श्लोकपाठ की आहुति 10 का निर्देश देते हैं।

त बीज का ध्यान—

चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम्।
सदा षोडशवर्षीसां रक्ताम्बरधरां पराम्।।
नानालङ्करभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा तकारं तु मन्त्ररूपं सदा यजेत्।।

तकारं चञ्चलापाङ्गि सदा परमकुण्डलि।
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं तथा।।
त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम्।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम्।।

तन्त्रशास्त्रीय योग पद्धति

तन्त्रशास्त्र की योगपद्धति में एक विशेषता यह है कि यह परमात्मा और जीवात्मा की एकता को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार करती है। इसके अतिरिक्त यह जगत् पर विविध आकृतियों, नामों तथा स्वरूपों में प्रकट होनेवाली माता जगदम्बा के साथ भी साधक भक्तजनों की एकता का योग साधती है। माता की पूजा करने से पूर्व साधक को यह स्वीकृत करना है कि अपना जीवात्मा परमात्मा के साथ एकरूप हो गया है। तथा जो कुछ दृश्य-जगत् है वह उसके सामने से विलीन हो गया है। इस एकता की भावना प्राप्त करने के पश्चात् उसे जो दूसरा निश्चय करना है, वह यह है कि निर्गुण-निराकार शक्तिस्वरूप में से एक पूजा करनेवाले साधक के रूप में तथा वह जिसकी पूजा करना चाहता है, वह देवी जगदम्बा के स्वरूप में स्वयं का ही एक नया अवतार, नया स्वरूप प्रकट हुआ है। एक मिट्टी की जगदम्बा की मूर्ति में उसे प्राण भरने हैं और प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे अपने दिव्य आत्मभाव की उस प्रतिमा के साथ एकता करनी है। इस भावना के प्राप्त होने के पश्चात् ही प्रतिमा देवी की जीवित मूर्ति बनती है तथा उसकी ही साधना एवं स्मरण करना है।

वेदान्त के मार्ग में जो एकता का प्रतिपादन किया गया है, उसका ही स्पष्ट दर्शन इस प्रकार तन्त्र की क्रिया-पद्धति में है और इस प्रकार तन्त्रमार्ग आत्मज्ञान के लिए सहायक बनता है। मुक्ति के मार्ग में वेदान्त ने जो कठिन उपाय बताये हैं उनकी अपेक्षा तन्त्र की यह पूजा-पद्धति सरल है तथा बालक को समझाने के लिए स्वीकृत और नैसर्गिक विकास की पद्धति है, जो मुक्ति के मार्ग पर सरलता से ले जाती है। ज्ञानयोगी विवेक और शुष्क वैराग्य के मार्ग पर आगे बढ़ने के प्रयत्न करता है। तथा सहज सिद्ध करने के लिए साधकजन तन्त्र मार्ग की इस पद्धति को स्वीकृत करते हैं।

संक्षिप्त श्रीविद्योपासना-विधि

यह सर्वप्रसिद्ध है कि 'सौन्दर्य-लहरी' श्रीविद्या की उपासना के तत्त्वों को विभिन्न रूपों में व्यक्त करती है। इसके प्रत्येक पद्य में ऐसे रहस्यपूर्ण मन्त्रों का समावेश है, जिनकी साधना की इच्छा रखनेवाले साधक को सर्वप्रथम श्रीविद्या के क्रम में मन्त्र दीक्षा प्राप्त करनी ही चाहिए। आगमों में दीक्षा के लिए अत्यन्त आग्रहपूर्वक कथन हुआ है। प्रत्येक तन्त्र में पद-पद पर दीक्षा का आग्रह मन्त्र-साधना के अधिकार की प्राप्ति का सूचक है। यह उचित भी है कि हम जिस कार्य को करना चाहते हैं, पहले उसका विधिवत् अधिकार तो प्राप्त कर लें। यह अधिकार प्राप्त करने के लिए श्रीविद्या के अधिकार-प्राप्त आचार्य से सम्पर्क करके यथासमय भक्तिपूर्वक दीक्षा प्राप्त करें। आगमों का वचन है कि **गुरोरप्राप्यमार्गेऽस्मिन् सर्वथा नाधिकारिता**। गुरु से दीक्षा-मन्त्रादि प्राप्त किए बिना इस मार्ग में सर्वथा अधिकार नहीं है। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि—'विकुर्वन्ति मरीचयः'—अधिकार-प्राप्त किए बिना यदि कोई मनमानी करते हुए श्रीविद्या के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो उस में माँ भगवती की परिवार देवताएँ विकार उत्पन्न करती हैं। अर्थात् वे रुष्ट हो जाती हैं।

गुरु की पात्रता केवल मन्त्रज्ञ होने मात्र से ही सिद्ध नहीं होती, अपितु उसे पूर्णाभिषिक्त भी होना चाहिए। पूर्णाभिषेक प्राप्त होने पर मन्त्र देने का अधिकार मिलता है। अतः इस बात का भी ध्यान रखें।

श्रीविद्या की साधना-विधि शास्त्रीय-विधानों से मण्डित है। इसमें अनेक गूढ़ रहस्य विद्यमान हैं। धीरे-धीरे विद्वान् साधकों की कृपा से यह साधना-विषयक ज्ञान प्राप्त करें और श्रीचक्रराज का साङ्ग अर्चन करना भी सीखें।

श्रीचक्रवासना-स्तोत्रम्

श्रीविद्या के प्रमुख उपासकों ने श्रीविद्या और आराध्य श्रीचक्र की आराधना से सम्बद्ध अनेक तान्त्रिक स्तोत्रों की रचना की है। बहिर्यागादि सम्पन्न कर लेने के पश्चात् चित्त में इष्टदेवता की वासना बनी रहे, तदर्थ चिन्तन-स्मरण की वासना की स्थिरता के लिए श्रीचक्रगत चक्रों के भजन की भावना की दृढ़ता-हेतु प्राचीन आचार्य 'श्रीसच्चिदानन्दनाथ' द्वारा रचित ग्यारह पद्यों का

'श्रीचक्रवासना-स्तोत्र' हमें एक पाण्डुलिपि से प्राप्त हुआ है उसे साधकों की सुविधा के लिए यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

बिन्दौ बिन्दुशतप्रभोज्ज्वलरुचा कामेश्वरस्याङ्कभू—
पीठे स्वस्तिकशोभनासनमहादेव्या समुद्भासितम्।
बालादित्यनिभाङ्गराग - वासनालङ्कार - मालाढ्यया,
सर्वानन्दकरं सदाशिवमयं श्रीचक्रराजं भजे ॥1 ॥
कोणानां त्रितयेऽग्नि-सूर्य-शशिभृच्चक्रेषु कामेश्वरी—
वज्रेशी-भगमालिनी-विलसितं रेखासु नित्यावृत्तम्।
चक्रे चान्तरके षडङ्गयुवती-नाथायुधैर्भूषितं,
सिद्ध्यष्टादशक-प्रदायकमहं श्रीचक्रराजं भजे ॥2 ॥
अष्टारेऽक्षरवर्गबद्ध - वशिनी - मुख्याभिरावेष्टितं,
दुग्धाम्भोधि-तरङ्ग-तारकवितादानोत्सुकाभिः सदा,
कासश्वास-कपालशूल-कलना-कुष्ठाष्टकामज्वरा —
ऽपस्मारादि-समस्तरोगशमनं श्रीचक्रराजं भजे ॥3 ॥
याद्यैश्चाद्यदशारकेऽनलकला-संख्याक्षरैः शक्तिभिः,
सर्वज्ञादिभिरिष्टसाधनविधौ नानाऽनुरूपादिकैः
भीतं राक्षसतस्करजगरकारण्याग्नि-कृत्या भयैः—
पृथ्वीपालभयेऽपि रक्षणपरं श्रीचक्रराजं भजे ॥4 ॥
ताद्यर्णैरपरे दशारकदले सर्वाद्रिसिद्धिप्रदा-
देव्याद्याभिरनारतं परिवतं स्वाख्यार्थसिद्ध्यर्पणात्।
विख्याताभिरनेककौतुककलापाण्डित्यविद्यावयः —
स्तम्भाद्यर्णसमूहसाधनपरं श्रीचक्रराजं भजे ॥5 ॥
आद्यर्णे भुवनारके मनुमितैः सर्वादिसंक्षोभिणी—
शक्त्याद्याभिरलङ्कृतं गजघटासङ्घट्टलक्ष्म्यायुतम्।
भार्ग्यं मित्र-कलत्र-पुत्रसुभगं विख्यातकीर्त्याधनै—
रौदार्यैरपि दातुमायतमहो श्रीचक्रराजं भजे ॥6 ॥
वर्गैः कादिभिरष्टभिर्वसुदले पूर्वादिवह्न्यादिषु,
प्रादक्षिण्यवशादनङ्गकुसुमापूर्वाभिरावेष्टितम् ।
राज्ञो मान्यधनाढ्यवैश्यवनितासङ्गात-सिद्धाङ्गना—
यक्षिण्यादि-जगद्वशङ्करममुं श्रीचक्रराजं भजे ॥7 ॥

श्रीकण्ठाक्षरपूर्वकैः शशिकला-पत्रेषु वर्णैः क्रमात्,
कामाकर्षणरूपिणीमुखकलामुख्यासु संसेवितम् ।
दीनान्धातुर - मूक - पङ्गु - बधिरापुत्रात्मजात्युद्गतं,
सन्तानेप्सितपूरणे परिणतं श्रीचक्रराजं भजे ।।8 ।।
आवृत्त्याखिलमध्यचक्रनिवहं चक्रे त्रिवृत्तात्मके,
सत्रा श्रीत्रिपुरेशिनी विलसति श्रीकालरात्र्यादिभिः ।
तासामाश्वनुकम्पयेप्सितफलप्राप्त्यै नुतं सर्वदा,
वर्गाणां तृतयस्य साधनकरं श्रीचक्रराजं भजे ।।9 ।।
भूबिम्बत्रितयेऽणिमादिदशभिर्ब्राह्यादिभिश्चाष्टभि—
र्मुद्राभिर्दशसङ्ख्यकाभिरुदितो देव्यग्रभागक्रमात् ।
युक्तं दिक्षु विदिक्षु देवधरणीपालाहि-कन्यासमं,
त्रैलोक्यं परिमोहितुं परिणतं श्रीचक्रराजं भजे ।।10 ।।
एवं श्रीचक्रराजं नवनिधिफलदं सिद्धिमुद्रासमेतं,
कामेशीभूषितान्तं यजति यदि नरः साभिषेकाप्तदीक्षः
तस्यात्रोक्ताः समस्ताः सुविमलमनसः सिद्धयः सन्ति हस्ते,
गुर्वाज्ञापालकस्य त्रिभुवनजननी सन्निधाने नरस्य ।।11 ।।

तन्त्रशास्त्रानुसार कुण्डलिनी-साधनाविधि

प्राचीन तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ मनीषियों ने 'सौन्दर्य-लहरी' का मूल प्रतिपाद्य श्रीविद्या चक्रविद्या श्रीललितात्रिपुरसुन्दरी की साधना माना है और श्रीविद्या का प्रतिपाद्य 'कुण्डलिनी' साधना को निर्धारित किया है ।

कुण्डलिनी की साधना की विधियाँ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों ने अपने-अपने ढंग से वर्णित की हैं । वैसे यह साधना योग-विद्या से सम्बन्ध रखती है । अतः इस मार्ग में सभी का प्रवेश कठिन होता है । योगमार्ग में प्रवेश करने की इच्छा रहते हुए भी उसकी जटिल कियाएँ देख-पढ़कर असामर्थ्य और भय का सञ्चार सहज ही हो जाता है । हमारे पूर्वमहर्षि इस स्थिति से अनभिज्ञ नहीं थे । सम्भवतः उन्होंने तन्त्रशास्त्र के माध्यम से मन्त्रयोग और क्रियायोग का समन्वय करते हुए जप-स्मरण को उसमें सहायक बतलाया और मन्त्रजप के द्वारा शरीरस्थ सूक्ष्म नाड़ीतन्त्र को प्रबुद्ध करने का मार्ग स्पष्ट कर दिया है ।

समस्त नाड़ीतन्त्र को सुचारुरूप से प्रबुद्ध रखने में मूल चैतन्यशक्तिरूपा

कुण्डलिनी का प्रबुद्ध रहना अत्यन्त आवश्यक है। मूलाधार में कुण्डली मारकर रहने से तथा सर्पाकार होने से इसे कुण्डलिनी कहा जाता है।

शाक्त आचार—

शाक्त उपासकों के दो प्रकार प्रसिद्ध हैं—1. समयाचार और 2. कौलाचार। समयाचार दक्षिण-मार्ग भी कहलाता है। इसमें भगवती के अन्तर्ध्यान में उपासना करने का मार्ग प्रशस्त माना गया है। अन्तर्याग भी इसी का अपर नाम है। 'अम्बास्तव' में कहा गया है कि—

आविर्भवत्फलकसंहतिभिः शरैश्च
निष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्गद पदाभिरुपासते ये,
पादौ तवाम्ब भुवनेषु ते एव धन्याः।।

सौन्दर्य-लहरी का प्रतिपाद्यः—'श्रीचक्रविद्या'

सौन्दर्य-लहरी सौन्दर्यों की विशाल लहरियों से व्याप्त है। इसकी रचना के मूल में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के विश्वमोहक सौन्दर्य के वर्णन द्वारा जगन्माता को प्रसन्न करना है। स्तुति द्वारा की जानेवाली प्रशंसाओं को श्रीमाता का शारीरिक-सौन्दर्य तो यहाँ वर्णित ही है; साथ ही उस अलौकिक लावण्य की गरिमा के अनुरूप स्तोता के अन्तरङ्ग को आध्यात्मिक एवं आगमिक उपासना-प्रक्रिया के विभिन्न आयामों से परिचित कराते हुए शाक्तागम में दर्शित 'श्रीचक्र-विद्या' के रहस्यमय तत्त्वों को भी त्रिपुरसुन्दरी की परमोपयोगी साधना को परिष्कृत करने में कोई कमी नहीं रखी है।

विद्वानों में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि—'टीका गुरूणां गुरुः'—टीका गुरुओं की भी गुरु है। इसके अनुसार 'सौन्दर्य-लहरी' की बहुत-से आचार्यों ने टीकाएँ बनाईं। उन्हीं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत लहरी में मुख्यरूप से श्रीचक्राधिष्ठात्री भगवती त्रिपुरसुन्दरी श्रीललिताम्बा के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करते हुए शाक्त-साधना में सर्वाधिक सम्मान्य तथा वेद-विद्या के द्वारा प्रतिपादित 'श्रीचक्रविद्या' का उन्मीलन भी किया है। प्रत्येक पद्य में यहाँ 'मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, योग एवं अन्यान्य दार्शनिक तत्त्वों का मौलिक गुम्फन सहज ही हुआ है।

लोक-कल्याण की पूर्ण निष्ठा से हमारे महर्षियों ने भारतीय जनता को सम्बोधित करते हुए उद्बोधन किया था—

उत्तिष्ठत मा स्वप्त। अग्निमिच्छध्वं भारताः।
राज्ञः सोमस्य तृप्तासः। सूर्येण सयुजोषसः।।

'अरुणोपनिषद्' में कहा गया यह मन्त्र है। पृश्नि नामक मुनियों ने चक्रविद्या के अनुष्ठान में संलग्न होते हुए यह आह्वान परस्पर अपने समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा है—

हे भारतवासियो! ज्योतिरूप चक्रविद्या की उपासना में रत अथवा सरस्वती रूप श्रीविद्या के उपासको! उठो, उपासना करो, प्रमाद मत करो! स्वाधिष्ठानगत अग्नि को प्रज्वलित करो। चन्द्रमण्डल के अन्तर्गत बैन्दवस्थान में स्थित भगवतीरूप सोम-चन्द्र के निःस्यन्द से तृप्त होकर तथा अनाहत और विशुद्धि चक्र के मध्यवर्ती सूर्य से युक्त उषा के साथ प्रातःकाल में ध्यानरत बनो।'

और 'वहीं अरुणकेतु ऋषि के द्वारा दृष्ट इन मन्त्रों का दर्शन किया गया।' इसका वर्णन महोपाध्याय श्रीलक्ष्मीधर ने अपनी 'लक्ष्मीधरी' टीका में सभी मन्त्रांशों के द्वारा चक्रविद्या की आराधना करने का प्रसङ्ग इस प्रकार व्यक्त किया है—जिसमें 'रुद्रयामल' के निम्नलिखित पद्यों से पहले प्रसङ्ग-सङ्गति प्रस्तुत की गई है—

पृश्नयो नाम मुनयः सर्वे चक्रसमाश्रयाः।
सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्वपूजिताम्।।
अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्।
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम्।।
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्।
त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणं च मिश्रकम्।।
चक्रं चन्द्रमयं चैव दशारद्वितयं तथा।
चतुर्दशारं वह्नेस्तु चतुश्चक्रं च भानुमत्।।
एतत्प्रसादादिन्द्राद्या वसवोऽष्टौ मरुद्गणाः।
ये ये समृद्धा लोकेऽस्मिन् त्रिपुराचक्रसेवकाः।
पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।।
महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः।।इति।

और इन्हीं पद्यों के तात्पर्य को 'तैत्तिरीयक अरुणोपनिषद्' में 'इमा नु कं

भुवना सीषधेम' इत्यादि मन्त्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। वह सारा विषय विद्वान् पाठकों के परिज्ञान के लिए यहाँ हम अर्थसहित प्रस्तुत करना आवश्यक समझकर लिख रहे हैं। यथा—

इमा नु कं भुवना सीषधेम ॥

पृश्नि नामक मुनियों ने परस्पर संलाप किया कि—हम इस चक्रविद्या को कैसे जानें? (क्योंकि इस चक्रविद्या की उपासना करके ही समस्त भुवन अधिष्ठित हैं)।

इन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥

तथा इन्द्र और अन्य सभी देव भी चक्रविद्या की उपासना से ही सुस्थिर हैं।

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजा च।
आदित्यैरिन्द्रस्सह सीषधातु ॥

पृश्नि-मुनि कह रहे हैं कि—अग्निष्टोम आदि यज्ञ ही हमारी पत्नी, सन्तति और सर्वविध सम्पत्ति हैं। मरुद्गणों के साथ इन्द्र ने चक्रविद्या की उपासना से परम ऐश्वर्य को प्राप्त किया है। वह इन्द्र हम (पृश्नियों को) चक्रविद्या का उपदेश करे।

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिः। अस्माकं भूत्ववितां तनूनाम् ॥

आदित्य एवं मरुद्गणों के साथ वह इन्द्र हमारे पुत्र, मित्र कलत्र आदि के साथ हमारा रक्षक बने। आ्थात् इन्द्र ही हमारे योग-अप्राप्त की प्राप्ति का और क्षेम-प्राप्त की चिरकाल तक रक्षा करनेवाला है।

आप्लवस्व प्रप्लवस्व ॥

पृश्नि मुनि चक्रविद्या को (प्राप्त करके) प्रस्तुत करते हुए कहते हैं। पैरों से लेकर मस्तक तक अमृत के झरने से सेचन करो। विशेष रूप से—बहत्तर हजार नाड़ियों के मार्गों में आसेचन करो।

आण्डी भव ज मा मुहुः ॥

पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड रूप से अपने बाह्यस्वरूप से आपके स्वरूप को समान बना दे। बार-बार मुझे पहचान।

सुखादींदुःखनिधनाम् ॥

(उपर्युक्त कथन को ही अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि) यह आद्या विद्या सुन्दर इन्द्रियों तथा मन से वेद्य है, दुष्ट इन्द्रियों से अगोचर है।

प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम् ॥

अपने भगवत्सम्बन्धी देह में स्थिर बनो।

मरीचयः स्वायम्भुवाः।

स्वयं भगवती (के शरीर) से मरीचियाँ उत्पन्न हुई हैं। अतः ये मरीचियाँ सभी भुवनों को आवृत्त किए हुए हैं। अर्थात् सूर्य, चन्द्र और अग्नि की प्रकाशकता स्वयं उत्पन्न मरीचियों के प्रसाद से ही अपनी विशिष्टता को प्राप्त किए हुए हैं।

ये शरीराण्यकल्पयन् ॥

उपर्युक्त वे मरीचियाँ तीन सौ साठ हैं। वे ही कालरूप 360 दिन, वे ही संवत्सर हैं।

ते ते देहं कल्पयन्तु ॥

वे मरीचियाँ भगवती के शरीर का आश्रय प्राप्त करें।

मा च ते ख्या स्म तीरिषत् ॥

आपकी वह ख्याति-ज्ञान हमें नहीं छोड़े। अर्थात् आपसे सम्बद्ध ज्ञान हमें सदा सिद्ध हो।

(इसके पश्चात् पृश्नि-मुनि चक्रविद्या के अनुष्ठान में तत्पर होकर उसकी महिमा की चर्चा करते हुए उपासना में प्रवृत्त हो गए)। तदनन्तर पृश्नियों ने पूजा आदि के सम्बन्ध में कथन किया—

युवा सुवासाः ॥

दृढ अङ्गवाला तथा शुभ्र वस्त्र धारण करके पूजन करे। अब श्रीचक्र का स्वरूप-वर्णन करते हैं—

अष्टा चक्रा नवद्वारा ॥

यह चक्र (1. अष्टकोण, 2. दशकोण, 3. दशकोण, 4. चतुर्दशकोण, 5. अष्टदल, 6. षोडशदल, 7. त्रिवृत्त और 8. त्रिरेखात्मक भूपुर) नामक आठ चक्रों वाला है तथा इसके त्रिकोणरूप नौ द्वार हैं। और—

देवानां पूरयोध्या ॥

यह इन्द्रादि देवताओं के द्वारा पूज्य श्रीविद्या-नगर है, अथवा पञ्च विंशति तत्त्वात्मक पुरी है—25 तत्त्वों का स्थान है। अथवा सूर्य, चन्द्र और अग्निरूप है। इसमें तीन पुरों की समष्टि है। तथा यह मन्दभाग्य वालों के द्वारा असाध्य है।

तस्यां हिरण्मयः कोशः। स्वर्गो लोको ज्योतिषाऽऽवृतः ॥

उस श्रीचक्र में हिरण्मय-सहस्रदल कोश है। अर्थात् बैन्दवस्थान में सहस्रदल कमल कोश विद्यमान है। उस कोश की ज्योति से स्वर्ग-लोक आवृत्त है।

वहीं पृश्नि मुनि चक्रविद्या की उपासना का फल बतलाते हैं—

यो वै तां ब्रह्मणो वेद। अमृतेनावृतां पुरीम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च। आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः ॥

ब्रह्मस्वरूपा भगवती के उस पूर्वोक्त अमृत-चन्द्र-मण्डल से झरती हुई अमृत-धारा से आवृत पुरी—श्रीचक्ररूप त्रिपुरा के धाम का जो ज्ञानपूर्वक अर्चन करता है, उस विद्वान् अर्चक को ब्रह्मस्वरूपा भगवती और ब्रह्मरूप भगवान् शिव आयु, कीर्ति और सन्तति प्रदान करते हैं।

उस श्रीचक्र में शिव और शक्ति का निवास है—

विभ्राजमानां हरिणीम्। यशसा सम्परीवृत्ताम्।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा। विवेशापराजिता ॥

अनन्तकोटि संख्यक किरणों से प्रकाशमान, सुवर्णवर्णा तथा कीर्ति से सम्यक् परिवृत उस बिन्दुयुक्त पुरी—चिन्तामणि गृह में सदाशिव तथा सादाख्य चन्द्रकला ने प्रवेश किया। अर्थात् सदाशिव वहाँ सदा विराजमान हैं और अपराजिता कुण्डलिनी शक्ति षट्चक्रों का भेदन करके वहाँ प्रवेश करती है।

शिव-शक्ति का उस चक्र में स्थिति का प्रकार कहते हैं—

पराङेत्यज्यामयी। पराङेत्यनाशकी।

शिव-शक्ति में चन्द्ररूपिणी शक्ति अधोमुखी एवं नाशरहित नित्या आनन्दमयी है। अथवा वह पञ्चभूतमयी न होकर मनस्तत्त्वादिमयी है। अधोमुख होने से नाशरहित-शक्तिचक्रात्मक पञ्चयोनिरूपा है।

एतद् विषयक ज्ञान का फल बतलाते हैं—

इह चामुत्र चान्वेति। विद्वान् देवासुरानुभयान् ॥

एकादश इन्द्रियाँ और प्राणादि पाँच वायु—महदादितत्त्व—इन दोनों को देवता एवं असुरों में संयुक्त माया, शुद्ध-विद्या, महेश्वर सदाशिव को जो विद्वान् पचीस तत्त्वसमूह को शिवशक्तिसम्पुटात्मक छब्बीसवें तत्त्व को जानता है, वह विद्वान् इस लोक में पूजा की तररतमता के वश से तथा परलोक में

सार्ष्टि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्यरूप पाँच प्रकार की मुक्तियों से युक्त हो जाता है ।

यहीं देव-इन्द्रियाँ और असुर-प्राणों के ज्ञान का उपाय बतलाया है—

यत्कुमारी मन्द्रयते। यद् योषिद्यत्पतिव्रता।
अरिष्टं यत् किञ्च क्रियते। अग्निस्तदनुवेधति॥

कुण्डलिनीशक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं। जिस चक्र में कुमारावस्था को प्राप्त, सर्वप्रथम सुप्तोत्थित होकर मन्द्र स्वर करती है। जिस चक्र में कुलनारी कुल को छोड़कर विष्णु-ग्रन्थि का भेदन करने के लिए जाती है, तथा जिस चक्र में पतिव्रता सदाशिव के साथ—सहस्रदलकमल में विहार करती है एवं वहाँ अमृतास्वाद करती है। और जो कुछ उसके द्वारा किया जाता है, वह स्वाधिष्ठानगत अग्नि सहायता करता है। वहाँ से अभ्यासवश वायु से अग्नि को जलाकर अग्निशिखा से अनुविद्ध होने के कारण विलीन हुए चन्द्रमण्डल से झरती हुई अमृतधारा के अनुभव में पच्चीस तत्त्वातीता परमेश्वरी जानी जा सकती है।

यह चक्रविद्या की उपासना ब्रह्मचारी, संन्यासी, गृहस्थ, ज्ञानी और अज्ञानी सभी के लिए फलदायक है, यह भी वहीं बतलाया गया है—

अशृतासश्शृतासश्च। यज्वानो येप्ययज्वनः।
स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते॥

इस चक्रविद्या की उपासना अपक्व—जिन्होंने अन्तःकरण का कल्मष क्षीण नहीं किया है, ऐसे तथा पक्व—अन्तःकरण के क्षीण कल्मषवाले, यजनशील त्रैवर्णिक—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा यजनरहित शूद्र आदि सभी अधिकृत हैं। इस चक्रविद्या को जानते हुए उपासकगण स्वर्ग की अपेक्षा नहीं रखते।

उपर्युक्त प्रसङ्ग में ही "चक्रविद्या की उपासना के बिना अन्य देवताओं की उपासना से अनिष्ट होता है।" यह भी यहीं कहा गया है। यथा—

इन्द्रमग्निं च ये विदुः। सिकता इव संयन्ति।
रश्मिभिस्समुदीरिताः। अस्माल्लोकादमुष्माच्च॥

सुर, असुर मुख्यों के द्वारा वन्दित चरणारविन्दवाली, सर्वभूतान्तर्यामिनी, सर्वव्यापिनी एवं सकल जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय की हेतुभूत इस चक्रविद्या की अनन्यता से इन्द्र, अग्नि, एवं यम आदि लोकपालों को और

पृथिवी से सदाशिव तक तत्त्वों को जो उपास्य के रूप में जानते हैं अर्थात् इस विद्या की प्रधानता नहीं मानकर इन्द्रादि लोकपाल देवों की साधना में अनुरक्त होते हैं, वे बालुका के कणों के समान परस्पर मिलकर भ्रष्ट हो जाते हैं। अथवा यमपाश से बँध जाते हैं। इसलिए कहा गया है कि-—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ॥

(ईशावास्योपनिषद्)

विद्या के विरुद्ध इन्द्रादि की सेवा उपासना को जो करते हैं, वे अज्ञानी अन्धतमिस्र में प्रवेश करते हैं।

इन वैदिक मन्त्रों से श्रीविद्या एवं तत्सम्बन्धी चक्र-विद्या की उपासना का जो महत्त्व प्रतिपादित किया है, वह निश्चित ही हमारे कल्याण के मार्ग को पूर्णरूप से प्रशस्त करता है तथा यह आदेश करता है कि **"श्रीविद्या की उपासना में प्रत्येक कल्याणाभिलाषी को अवश्य ही प्रवृत्त होना चाहिए।"**

॥ श्रीगुरु-गणपतिभ्यां नमो नमः ॥

नमस्त्रिपुर-सुन्दर्यै

मङ्गलाचरण

: 1 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—अपार करुणामृतवर्षिणी भगवती त्रिपुरसुन्दरी एवं परम करुणा-वरुणालय भगवान् सदाशिव की परस्पर अभिन्नता का दर्शन कराते हुए जगद्गुरु आद्य शङ्कराचार्य भगवत्पाद 'भगवती शक्ति की महिमा का वर्णन स्तुति के द्वारा पुण्यात्मा के बिना नहीं हो सकता' इस तथ्य को प्रकट करते हैं—

मूल पाठ

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरि-हर-विरिञ्च्यादिभिरपि—
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ? ॥1 ॥

अवतरणिका—शिव-शक्ति-स्मरणात्मक मङ्गलाचरण करते हुए पूज्यपाद आचार्यदेव शक्ति-महिमा तथा स्वयं की स्तुति-निर्माण करने की अक्षमता को प्रकट करते हुए **'सौन्दर्य-लहरी'** का आरम्भ करते हैं—

सरलार्थ—'सच्चिदानन्दघन, परब्रह्म, भगवान् शिव निष्फल, निष्क्रिय, शान्त एवं निरञ्जन होकर भी शक्ति के आश्रय से ही सृष्टि, स्थिति और लयादि करते हैं—' यह श्रुति-प्रतिपादित है। इसका प्रमाण स्पष्ट करते हुए आचार्य प्रवर कहते हैं कि—शिव जब शक्ति से युक्त होते हैं तभी सृष्ट्यादि कर्मों में समर्थ होते हैं, अन्यथा वे सामान्यतः हिलने-चलने में भी समर्थ नहीं होते, अर्थात् शिव में 'शि' अक्षर 'श्+इ' के योग से बना है। इसमें इकार शक्ति का सूचक है। यदि यह इकार शकार में संयुक्त न हो तो वह 'शव' ही

रह जाता है। तब शव हिलने-चलने में समर्थ नहीं होता। अतः यह शक्ति का ही प्रभाव है कि भगवान् समस्त सृष्ट्यादि क्रिया करते हैं। तथा जो ऐसी महिमामयी पराम्बा विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा के द्वारा भी आराध्या है, उसको मन, वचन एवं काया से प्रणाम करने तथा उसके अगणित गुण-गणों की स्तुति करने में पुण्यहीन मानव कैसे समर्थ हो सकता है? अतः हे भगवती! आपकी महिमा अपार है तथा सकल देवगणों की आप आराध्या हैं। आपको प्रणाम करना अथवा आपकी स्तुति करना अकृत पुण्य मानव के लिए कठिन ही है। तथापि आपकी अनुकम्पा के सहारे मैं यह प्रयास कर रहा हूँ। आप मेरी सहायता करें और मुझे शक्ति-प्रदान करें।

रहस्यार्थ—'सौन्दर्य-लहरी' एक व्यङ्ग्य-प्रधान मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-योग आदि अनेक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण 'स्तुतिकाव्य' है। इसके प्रत्येक पद्य में आचार्यवर्य ने अनेकविध आगमिक रहस्यों को समाविष्ट किया है। पूर्वाचार्यों ने अपनी साधना एवं जगदम्बा की अपूर्व करुणा से इसके विभिन्न रहस्यों को अपनी-अपनी टीकाओं में व्यक्त किया है, जिनका सारांश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मन्त्रसङ्केत—इस प्रथम पद्य में दिव्यशक्तिमति, परमाराध्या महात्रिपुर-सुन्दरी की स्तुति के माध्यम से 'शिव-शक्ति-संयोग' की अनिवार्यता को लक्षित करते हुए मुख्य प्रतिपाद्य 'श्रीविद्या' के पञ्चदशी महामन्त्रविद्या की उत्पत्ति—'शिव-ह, शक्ति-स, देव-क, भू-बीज-ल आदि बीजों के द्वारा 'कामकूट'—हसकहल और महामाया-ह्रीं (हादि-विद्या) का सङ्केत दिया है। जबकि—

कामेश्वरसूरि ने 'अरुणामोदिनी' टीका में विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा मन्त्रोद्धार, विद्योद्धार एवं अर्थविस्तार के द्वारा रहस्यार्थों को ज्ञापित किया है। उन्होंने कुल मिलाकर चौदह अर्थ दिखाए हैं। वे इस प्रकार हैं—

पहला अर्थ—वेदान्तसिद्धान्त—शक्तियुक्त सगुणब्रह्म की शिव-शक्ति-समन्वय रूप जगत् की उत्पत्ति में कार्यक्षमता-सिद्धि, अर्थात् माया का ब्रह्म-शबलित होना।

दूसरा अर्थ—सांख्यदर्शनसिद्धान्त—पुरुष और प्रकृति दोनों ही भिन्न हैं। संसार में बन्ध एवं मोक्ष; यह सब प्रकृति की ही लीला है तथा पुरुष का ज्ञान होने पर प्रकृति निवृत्त होती है। जगत् प्रकृति का विकार है। पुरुष प्रकृति और विकृति दोनों ही नहीं है। यह शाक्त

तत्त्वज्ञान में स्वीकृत नहीं है। यहाँ तो शिव-शक्ति का अभेद स्पष्ट किया गया है तथा इसी के द्वारा साधक को आत्मज्ञान होता है, तब वह शिवशक्ति समन्वयात्मक ऐक्य को देखता है। अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमोगुणात्मक त्रिगुणात्मिका प्रकृति से समन्वित होने पर ही पुरुष शिव स्पन्दन में कुशल होता है। यह सिद्ध किया गया है।

तीसरा अर्थ—सौन्दर्य-लहरी से सम्बद्ध देवता के पक्ष में—ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि के द्वारा आराध्या भगवती त्रिपुरसुन्दरी एवं कामेश्वर का ऐक्य व्यक्त हुआ है।

चौथा अर्थ—वाच्य और वाचक के अभेद का बोधक है।

पाँचवाँ अर्थ—शब्दरूप शिव और अर्थरूप शक्ति का नित्यसम्बन्ध प्रतिपादक है।

छठा अर्थ—शब्दोत्पत्ति-निरूपण से सम्बद्ध है। तदनुसार भगवती हरिहर-विरिञ्चि द्वारा आराध्या हैं। अर्थात् उनके द्वारा उच्चार्यमाण है—वन्दित है।

सातवाँ अर्थ—यन्त्र से सम्बद्ध है, जिसमें श्रीत्रिपुरसुन्दरी के यन्त्र-**श्रीयन्त्र** का वर्णन है। यह यन्त्र विभिन्न कोणों से बनता है। इसमें चार शैव-त्रिकोण तथा पाँच शक्ति-त्रिकोणों का समन्वय प्रदर्शित है।

आठवाँ अर्थ—ओङ्कार का बोधक है। ओङ्कार की शिवशक्तिरूपता है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ये तीन देव; अग्नि, वायु, सूर्य—ये भूमि, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक के देवता; गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती छन्द; रक्त, शुक्ल, कृष्ण वर्ण; जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था; त्रिलोक; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वर; ऋक्, यजुः, साम वेदत्रयी; गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय अग्नि; प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल; सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण; सृष्टि, स्थिति, लय, कर्म आदि सभी स्थित हैं।

नौवाँ अर्थ—वर्णमातृका का बोधक है। जिसमें सिद्ध किया है कि मातृका को मन्त्रमातृका-मन्त्र माता कहा जाता है। यह समस्त मन्त्रों में स्वर और व्यञ्जनों से प्रकाशित है। यहाँ शिव व्यञ्जन रूप हैं और शक्ति स्वर रूप है। तन्त्रशास्त्रों के अनुसार—

अकारादि विसर्गान्त 16 स्वर शक्तियाँ हैं तथा ककारादि क्षकारान्त

वर्ण शिवरूप हैं। ये ही समस्त-व्यस्त रूप से 36 तत्त्व हैं।

केवल व्यञ्जनों से वर्णोच्चारण नहीं होता है। इनमें स्वरों का संयोग अत्यावश्यक है। यही शिव का शक्ति से युक्त होना है।

दसवाँ अर्थ—त्रिपुरसुन्दरी का मन्त्र कादि, हादि, और सादि का सूचक है।

ग्यारहवाँ अर्थ—हादि विद्या का बोधक है।

बारहवाँ अर्थ—श्रीशिव के ' नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी मन्त्र को व्यक्त करता है।

तेरहवाँ अर्थ—गुरुमन्त्र का सूचक है। तथा गुरु, विद्या और देवता के ऐक्य का बोध कराने के लिए शिव तथा गुरु के अभेद को व्यक्त किया है।

चौदहवाँ अर्थ—भगवती के चन्द्रकलारूप का बोधक है जिसमें शिव दर्श—उमा रूप हैं। यह चन्द्रमा की कला है। यह द्वितीया की रात्रि में दृष्टिगोचर होती है, तब इसे द्रष्टा कला कहते हैं। यह शक्तिरूपा कला ही शिव से संयुक्त होने पर दृश्यमात्र होती है।

बीजमन्त्र और कामना-पूरक यन्त्र

अन्य आचार्यों नें अपने-अपने बुद्धिबलोदय से प्रमुख बीजमन्त्र और कामना-पूरक मन्त्र भी प्रकट किए हैं। यथा—आयु, आरोग्य, सुख, सौभाग्य आदि की वृद्धि के लिए यह मन्त्र उद्भावित है—

"ऐं ह्रीं क्लीं शिवे हरिहरविरिञ्चाद्याराधिते शिव-शक्तिस्वरूपे स्वाहा।"

प्रयोग-विधि—इस मन्त्र के 'एक लाख पचीस हजार' जप करने चाहिएं। यह सर्व कार्यों की सिद्धि देनेवाला है।

यन्त्र-सङ्केत—प्राचीन आचार्यों ने 'सर्वकार्य सिद्धि' के लिए इस पहले पद्य की साधना में यन्त्र बनाकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करने का निर्देश इस प्रकार दिया है—

यन्त्र का निर्माण एवं अन्य विधि–

आगे बतलाई गई आकृति के अनुसार यन्त्र को पृथ्वी पर वेदी बनाकर चावल

के आटे से लिखें। अथवा सोने के पतरे पर बनवा लें और प्राण-प्रतिष्ठा करके षोडशोपचार पूजा करें। पूजा में घृत का दीप जलाएँ और 'शिव: शक्त्या युक्ते' इस पूरे श्लोक का एक हजार बार जप करें। यह प्रयोग 12 दिन तक करें। नैवेद्य में त्रिमधुर—'गुड़, नारियल और केला' अथवा घृत, शहद और कच्चा दूध मिलाकर रखें।

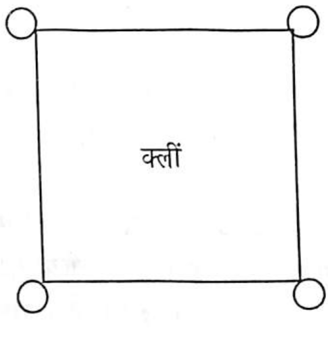

तन्त्र-सङ्केत—यह यन्त्र-साधना 12 दिन तक करके इस पर अक्षत और पुष्पों द्वारा ललिता-सहस्रनाम की नामावली से अर्चन करना चाहिए। इस यन्त्र को भोजपत्र पर अष्टगन्ध से लिखकर धारण करने से—सुख, समृद्धि, अपेक्षित उद्देश्य की सफलता एवं आन्तरिक समस्याओं का समाधान मिलता है।

योगदृष्टि—इस पद्य में प्रयुक्त शिव से **'ह'** तथा शक्तिपद से **'स'** का सङ्केत प्राप्त है। तद्नुसार महावाक्यों के मन्त्रात्मक स्वरूप **'हंस: सोहम्'** के जप का यौगिक सङ्केत है। इसके जप से ब्रह्म की तेजोमयी अध्यात्मकिरण का प्रकाश मिलता है तथा इस मन्त्र के अर्थ का सतत् स्मरण करने से शिवतत्त्व का अहंवृत्ति के आधार पर तत्त्वानुसन्धान करते-करते निषेधात्मक अकार का त्याग होने से 'ब्रह्मलीनता' प्राप्त करने का साधना-क्रम—'अहंग्रह-उपासना' होती है।

यह 'हंस: सोहं' मन्त्र ही विपरीत होकर 'सोहम्' बनता है। इसमें से व्यञ्जनों को लोप हो जाने पर 'ओम्' शेष रहता है। यही प्राणिमात्र के श्वास-प्रश्वास में अनवरत जप के रूप में चलते रहने के कारण **'अजपाजप'** कहलाता है। आगमों में कहा गया है कि—

हंकारेण बहिर्याति स:कारेण विशेत् पुन:।
हंस: सोहं परं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

जीव जब श्वास लेता है तो हं बाहर आता है और जब श्वास अन्दर जाता है तो स: अन्दर प्रवेश करता है। इस प्रकार 'हंस: सोहम्' मन्त्र को जीव सदा जपता रहता है। 'हंस' जीववाचक है और 'सोहम्' आत्मैक्य का बोधक है।

योगिराज श्रीमोतीलालजी महाराज ने बीजाक्षर के रूप में जप करने का सूचन किया है तथा उसके साथ ही पूरी विधि भी वर्णित की है। तद्नुसार इस प्रथम पद्य का बीजाक्षर 'शि' है। इस बीज का एक हजार जप करें। जप का स्थान मूलाधार है जिसके चारों दलों में जप करना चाहिए। जप पूर्ण होने पर प्रतिदिन लाल पुष्प, बिल्वफल, तिल और यव (जौ) घृत से दशांश होम करें। दशांश तर्पण करें तथा 10 बार श्लोक का जप करके 1 आहुति दें।

जपादि कर्म से पहले 'श' बीज का ध्यान इन पद्यों से करें—

चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दन-चर्चिताम्।
शुक्लवर्णां त्रिनयनां वरदां च शुचिस्मिताम्॥
रत्नालङ्कारभूषाढ्यां श्वेतमाल्योपशोभिताम्।
देववृन्दैः सदा वन्द्यां ध्यायामि मोक्षकांक्षया॥

(चार भुजाओं वाली, चकोराक्षी, उत्तम चन्दन से चर्चित, शुक्लवर्षा, तीन नेत्रोंवाली, वरदा, शुद्ध मुस्कानवाली, रत्नों-अलङ्कारों से विभूषित, श्वेत पुष्पों की माला धारण की हुई तथा देवगणों से सदा वन्दित भगवती का मैं मोक्ष की आकांक्षा से ध्यान करता हूँ)।

भगवान् शिव द्वारा श-वर्ण का स्वरूपात्मक महत्त्व यहाँ प्रदर्शित है। यथा—

श

शकारं परमेशानि श्रृणु वर्णं शुचिस्मिते।
रक्तवर्णं प्रभाकारं स्वयं परमकुण्डली।।
चतुर्वर्गप्रदं देवि शकारं ब्रह्मविग्रहम्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं प्रिये।।
रत्नपञ्चतमोद्युक्तं त्रिकूटसहितं सदा।
त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम्।।

हे परमेश्वरी ! शकार वर्ण लाल रङ्ग का है। स्वयं प्रकाशमान और कुण्डलीस्वरूप है। यह धर्मार्थ काम मोक्ष का दाता है। ब्रह्मस्वरूप है। पञ्चदेवमय है। पञ्चप्राणरूप है। पाँच रत्नों के समान प्रदीप्त एवं सदा त्रिकूट से युक्त है। इसमें त्रिशक्ति—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का निवास है तथा यह आत्मतत्त्व से परिपूर्ण है।

इसी प्रकार 'श' अक्षर में मिले हुए 'इ'कार का ध्यान भी यहाँ बतलाया है। यथा—

इ—

इकारं परमानन्दं सुगन्धं कुङ्कुमच्छविः।
हरिब्रह्ममयं वर्णं सदाशिवमयं प्रिये।।
महाशक्तिमयं देवि गुरुब्रह्ममयं तथा।
विश्वत्रयमयं वर्णं परब्रह्मसमन्वितम्।
ऊर्ध्वाधः कुब्जिता मध्ये रेखा तत्सङ्गता भवेत्।।
लक्ष्मीर्वाणी तथेन्द्राणी क्रमात् तास्वेव संवसेत्।
धूम्रवर्णां महारौद्रीं पीताम्बरयुतां पराम्।
कामदां सिद्धिदां सौम्यां नित्योत्साहविवर्द्धिनीम्।।
चतुर्भुजां च वरदां हरिचन्दनभूषिताम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां मन्त्रं तु दशधा जपेत्।।

इकार परमानन्द रूप है। सुगन्धित केसर के समान कान्तिवाला, हरि, ब्रह्मा और सदाशिवमय, महाशक्ति और गुरुब्रह्ममय है। यह अक्षर तीनों लोक और परब्रह्म के समान है। यह इकार ऊपर से तथा नीचे से मुड़ा हुआ है तथा बीच से नर्मदा के समान है। इसमें लक्ष्मी, सरस्वती और इन्द्राणी क्रमशः मिली हुई हैं। यह महारौद्री, धूम्रवर्णा, पीताम्बरा, परा भगवती कामदा, सिद्धिदा, सौम्या, नित्या, उत्साहवर्धिनी, चतुर्भुजा वरदा और हरिचन्दन से विभूषित है।

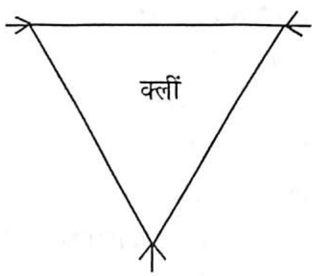

इस प्रकार श+इ=शि बीज का ध्यान करके ब्रह्मरूपा भगवती का ध्यान करना चाहिए।

इस विधान में पूजन यन्त्र उपरोक्त प्रकार से बनाएँ—

इस यन्त्र की साधना-विधि पूर्व दर्शित क्रमानुसार ही है। इस यन्त्र को 1000 की संख्या में 12 दिन तक लिखने से सर्वकार्यसिद्धि होती है।

साहित्य-सृष्टि—सौन्दर्यलहरी के प्रत्येक पद्य में उत्तम ध्वनि-तत्त्व, रस, अलङ्कार आदि साहित्यिक तत्त्वों का भी अनूठा समन्वय है। प्रथम पद्य में नवयोनिचक्रात्मक श्रीचक्र के स्वरूप का निरूपण भी सन्दर्भित है। चार-योनिचक्रात्मक शिवचक्र एवं पञ्चयोनिचक्रात्मक शक्तिचक्रों के संयोग

से निर्मित श्रीचक्र ही परिपूर्ण माना गया है जिसका तात्पर्य यह है कि शिव-शक्ति के मिलन से ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय होते हैं, केवल एक से नहीं।

सम्पूर्ण स्तुति में 'शिखरणी-छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसमें पहले य-गण का प्रयोग है। इसके प्रयोग से वांछित, समस्त पाठकों और साधकों के लिए अभीष्ट सिद्धि का लाभ है। शिव-शक्ति आदि अभिप्रायपूर्ण प्रयोग से यहाँ 'परिकर अलङ्कार, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग और श्लेष अलङ्कार' व्याप्त हैं। वस्तु, अलंकार, रसात्मक विविध ध्वनि, माधुर्य गुण द्राक्षापाक, कैशिकीवृत्ति तथा वैदर्भीरीति के प्रयोग यहाँ भी कामेश्वर सूरि ने दिखलाए हैं।

गोपाल-सुन्दरी-टीकाकार श्रीनृसिंह स्वामी ने इस सम्पूर्ण सौन्दर्य-लहरी का अर्थ विष्णु पक्ष में घटित किया है तथा प्रसङ्गवश गोपालसुन्दरी अथवा सुन्दरीगोपाल आदि मन्त्रों के उद्धरण भी किए हैं।

: 2 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—अनन्त शक्ति-सम्पन्न परमेश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि जो सृष्टि, स्थिति और संहार का कार्य सम्पादित करते हैं, वह भगवती के चरणों की रज को अपने-अपने मस्तकों पर धारण करके ही करते हैं। इस कथन द्वारा भगवती के चरण-रेणु की महिमा का वर्णन करते हैं—

तनीयांसं पांसुं तव चरण-पङ्केरुह-भवं,
विरिञ्चिः सञ्चिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां,
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलन-विधिम्॥2॥

अवतरणिका—अनन्तशक्तिमयी भगवती के चरणों की रज का छोटा-सा कण ही परम सामर्थ्य का दाता है, उसी का आश्रय लेकर तीनों देव ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और संहार-कर्म करते हैं।

सरलार्थ—हे माता! आपके चरण-कमलों से उत्पन्न अति मृदुल पराग—रजःकण का संचय करके ब्रह्मा बिना किसी विकलता के लोक-लोकान्तरों की सृष्टि करते हैं। शेषनाग रूप (विष्णु) उन लोक-लोकान्तररूप ब्रह्माण्ड को अपने सहस्र फणों पर जैसे-तैसे-बड़े परिश्रम से धारण करते हैं तथा हर (शिव) उसका संहरण करके उसकी भस्म अपने अंग पर लगाते हैं। अर्थात्

ब्रह्मादि तीनों देवों के सृष्ट्यादि कर्म भगवती के चरणरज के ही अधीन हैं।

रहस्यार्थ—पूर्वोक्त पद्य में कहा गया था कि 'हे माता ! आपकी प्रणति और स्तुति करने में अकृत पुण्य समर्थ नहीं हो सकता है।' इस कथन के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठता है कि—आप स्तुतिकार ने मेरे स्वरूप, प्रभाव का कौन-सा ज्ञान किया है ? इसका उत्तर इस पद्य में वर्णित है। सकल जगत् की कारणभूता भगवती के चरण-कमलों का पराग सृष्टि के बीजरूप से 'भूर्भुवः स्वः' आदि 14 लोकों का विविध विचित्रता से ब्रह्मा निर्माण करते हैं। उसी पराग कणिका से विष्णु भूमि आदि 7 लोकों का पालन-पोषण शेषनाग के रूप में अपने हजार मस्तकों से धारण करके करते हैं तथा महादेव कल्पान्त काल में उन लोकों का मर्दन करके—तृतीय नेत्र की ज्वाला से भस्म करके अपने अङ्ग पर भस्मलेपन करते हैं। ऐसा शिवप्रोक्त आगमों से ज्ञात होता है।

तान्त्रिक व्याख्यान की दृष्टि से आगमों में भगवती के चार चरणों का निर्देश है। वे हैं—1. शुक्ल, 2. रक्त, 3. मिश्र और 4. निर्वाण। ये क्रमशः सत्त्व, रजस्, तमस् और गुणातीत हैं। यहाँ 'तनीयांसं पांसुं' इस पद से 'कामकला' रूप गुणांश का चयन करके ये त्रिदेव सगुण-जगत् की सृष्टि आदि क्रियाएँ करते हैं, यह सङ्केत दिया है। कामकला का स्वरूप आगमों में 'ई' दिया है। सौन्दर्य-लहरी के पद्य-19वें में 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' इत्यादि पद्य में इसका ध्यान दिया गया है। (इस विषय में विशेष वहीं 19वें पद्य के सन्दर्भ में द्रष्टव्य है)।

मन्त्रसङ्केत—श्री आनन्दगिरि ने इस पद्य में प्रयुक्त 'तनीयांसं' पद से कामकला का मन्त्र-सङ्केत माना है। कामकलात्मा पांसु-रज का ब्रह्मा सञ्चय करके सगुणरूप जगत् की रचना करते हैं तथा विष्णु और शिव भी 'कामकला ही साररूप है', ऐसा मानकर जगत् को स्थिर एवं दहन करके धारण करते हैं। यह कामकला—'ई'कार है। यह कामकला 'अबलाशक्ति' कहलाती है। यामल में इसका स्वरूप 'त्रिबिन्दुः सा त्रिशक्तिः सा त्रिमूर्तिः सा सनातनी' इत्यादि कहा गया है। यही त्रिकोण की तीन—'वामा, ज्येष्ठा और रौद्री' रेखाओं के रूप में निर्दिष्ट है। 'काली-ऊर्ध्वाम्नाय' में तथा 'शाक्तानन्दतरंगिणी' में कहा गया है कि—

त्रिबिन्दुं परमं तत्त्वं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम्।
वर्णात्मकं त्रिकोणं तु जायते बिन्दुतत्त्वतः॥

तथा—

वामावर्तेन विलिखेदकथापि-त्रिकोणकम्।

यह कामकला बिन्दु के अङ्कुरभाव से वर्ण के अवयवों को प्राप्त हुई है। ब्राह्मी लिपि में 'ई' अक्षर त्रिकोणाकार में ही लिखा जाता है। इस कामकला-मन्त्र का विशेष परिचय एवं साधना-विधि हम आगे (पद्य संख्या-19 मुखं बिन्दुं कृत्वा में) लिख रहे हैं, वहीं देखें।

'अविकलम्' पद में 'अवि+कलम्' ऐसा विच्छेद करके तथा कल पद से कला का निर्देश मानकर आचार्य कामकला मन्त्र के स्मरण का सूचन करते हैं।

तान्त्रिक मत में भगवती के चार चरणों का स्मरण होता है। ये चरण क्रमशः शुक्ल, रक्त, मिश्र और निर्वाण नामक हैं। इनमें सत्त्व प्रधान शुक्ल, रजःप्रधान रक्त, तमःप्रधान मिश्र तथा गुणातीत निर्वाणरूप हैं। मन्त्रपारायणादि-विधानों में इन चरणों की वासना का विधान भी मिलता है। अतः वासना के सम्बन्ध में कुछ विचार आगे प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस पद्य में भगवान् शिव के द्वारा बृहत् सृष्टि के लय होते हुए अणुओं की भस्म धारण करना एवं उन अणुओं में पुनः जीवन-गति प्रदान करने का वर्णन होने से शिव के 'महामृत्युञ्जय-योग' का निर्देश हुआ है। इस आधार पर 'भस्मोद्धूलन-विधि' का भी यह सङ्केत है। इस विधि में—1. सद्यो जातं प्रपद्यानि, इत्यादि 5 मन्त्रों से भस्म ग्रहण करें। उस भस्म को दाहिने हाथ से आच्छादित करके, 2. अग्निरिति भस्म, इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रण करे। 3. 'आपो ज्योती रसोऽमृतम्' इस मन्त्रांश से भस्म में जल मिलाए। तदनन्तर 4. 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र से भस्म का सम्मर्दन करे और 4. 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि मन्त्र से मस्तक पर भस्म लगाएं। 5. तत्पुरुषाय विद्महे—मन्त्र से ललाट पर, 6. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य, इससे हृदय पर, 7. 'वामदेवाय नमः' इससे गुह्य स्थान पर, 8. 'सद्योजातं प्रपद्यामि' मन्त्र से पैरों पर तथा 9. 'ॐ' मन्त्र से मस्तक से पादतल तक भस्म लगाए। तदनन्तर भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करने का विधान है। यहाँ उद्धूलन का अर्थ अङ्गावलेपन है। अन्य आचार्य 'ऊपर की ओर उड़ाना' ऐसा अर्थ बतलाते हैं।

श्री पं. देवदत्त शास्त्रीजी ने इस द्वितीय पद्य का मन्त्रोद्धार '**श्रीं ऐं श्रीं श्रीं क्लीं श्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं दुर्गां दुर्गतारिणीं पद्ममालिनीं मातरं प्रपद्ये स्वाहा**' दिया है।

यह मन्त्र एक लाख संख्या में जपने से सिद्ध होकर दुःखदारिद्र्य का

विनाश करता है तथा धन-सम्पदा को देता है।

साहित्य-सृष्टि—चरणों को कमलों की उपमा देने से यहाँ उपमा अलङ्कार है। हाथों से अभय और वरदान देना सर्वसाधारण है, तथापि भगवती के चरण ही वैसे अभय और वरदान को देते हैं, इस कथन से व्यतिरेकालङ्कार तथा काव्यलिङ्ग अलङ्कार भी व्यक्त हैं। इनके अङ्गाङ्गिभाव से सङ्कर अलङ्कार हुआ है।

यहाँ अन्य देवताओं द्वारा अभय, वरद आदि मुद्राओं के धारण को अभिनय व्यक्त किया है जबकि भगवती इस प्रकार के बाह्य अभिनय से रहित हैं, तथापि इच्छा से अधिक फल देती हैं। यह व्यक्त है।

'वासना' विचार—शाक्तदर्शन में 'वासना' का प्रयोग बहुधा होता आया है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना में श्रीचक्रवासना एवं चरण-वासना को महत्त्व मिला है। इस द्वितीय पद्य में चरण-वासना का सङ्केत आचार्य श्री ने किया है। भगवती के चार चरण माने गए हैं। 1. शुक्ल, 2. रक्त, 3. मिश्र और 4. विश्रान्ति = निर्वाण। वासना शब्द की व्युत्पत्ति—'वसति आसु प्रत्यगात्मा' अथवा 'वासयते आसु प्रत्यागत्मा' इति है। अर्थात् 'इन वासनाओं में प्रत्यगात्मा निवास करता है, अथवा प्रत्यगात्मा जिसके द्वारा वासित होता है, वह वासना है।'

आगमों में साधक को चरणवासना के जप एवं ध्यान से इष्ट तथा गुरु के प्रकाशमय दिव्य विग्रह का साक्षात्कार होता है। अतएव चरण-वासना को आम्नायों के मन्त्रों के अन्तर्गत मन्त्रों के पश्चात् जपने का विधान है। श्रीचक्र के आवरणार्चनों में सर्वत्र पादुका-पूजन का संयोग है। तथा चौदहवें आवरण में इन चारों चरणों की पूजा 'यतिदण्डैश्वर्य-विधान' के अन्तर्गत आद्यशङ्कराचार्य निर्मित 'पूजापद्धति' में कहा गया है कि—

शुक्लं रक्तञ्च मिश्रञ्च विश्रान्तिचरणं तथा।
निर्वाणचरणञ्चेति तुरीयचरणं तथा॥
तुरीयातीतचरणं पूजयामीह सर्वदा।

इस प्रकार उपर्युक्त चार चरण एवं व्योमातीत-चरण की पूजा का स्थान चौदहवें आवरण में आता है। 'लयक्रमार्चन' का यह क्रम है। ऊर्ध्वाम्नाय में शुक्ल, रक्त, मिश्र और विश्रान्ति के पश्चात् निर्वाणचरण की भी पूजा होती है। पूर्णक्रमदीक्षाप्राप्त साधकों को यह पूजाबिन्दु के ऊपर प्रणव की भावना करके क्रमशः—1. शुक्लचरण, 2. रक्तचरण, 3. मिश्रचरण, 4. विश्रान्तिचरण,

5. निर्वाणचरण, 6. तुरीयचरण और 7. तुरीयातीत चरण की पूजा करने का विधान प्राप्त होता है। यह षोडशावरणार्चन में आता है।

चरण-वासना के मन्त्र—इनमें 1. परचरणवासना, 2. श्रीविद्याचरणवासना 3. लोपामुद्राचरणवासना के मन्त्र इस प्रकार हैं—

1. परचरणवासना-मन्त्र—

ऐं ह्रीं श्रीं हंसः शिवः सोहं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं हसकल ह्रीं हसकल ह्रीं हसकल ह्रीं ह्सौः हसक्षमलवरयूं हसौः सहक्षमलवरयीं हसौः श्रीं ॐ सोहमस्याहमस्मि, ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्मरूपाहमस्मि, सोहं स्वच्छ प्रकाश-परिपूर्ण-परापर ब्रह्मप्रकाशपरिपूर्णश्रीपादुकां पूजयामि, हंसः शिवः सोऽहं हंसः स्वात्मानन्दनाथ परमहंस परिपूर्णात्मने परात्परतर परमेष्ठिगुरु श्रीपादुकां पूजयामि सः हः सौः हंसः प्रकाशचरणाभ्यां नमः। अः हः सोऽहं विमर्शचरणाभ्यां नमः। सौः अः सौः अः हंसः सोऽहं आनन्दचरणाभ्यां नमः। सौः अः हंसः शिवः सोऽहं ज्योतिष्पाद-चरणाभ्यां नमः।

(इति परचरणवासना)

2. श्रीविद्याचरणवासनामन्त्र—

ऐं कएईल ह्रीं हंसः रक्तचरणाभ्यां नमः।

क्लीं हसकहल ह्रीं सोऽहं शुक्लचरणाभ्यां नमः।

सौः सकल ह्रीं हंसः सोऽहं रक्तशुक्लचरणाभ्यां नमः।

(इति श्रीविद्याचरणवासना)

3. अथ लोपामुद्रा चरणवासना

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं हसकल ह्रीं हंसः प्रकाशचरणाभ्यां नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं हसकहल ह्रीं हंसः शिवः सोऽहं विमर्शचरणाभ्यां नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं हसकल ह्रीं क्लीं हसकहल ह्रीं सौः सकल ह्रीं हंसः शिवः सोऽहं निर्वाणचरणाभ्या नमः।

(इति लोपामुद्राचरणवासना)

ऐं ह्रीं श्रीं कएईल ह्रीं रक्तचरणाभ्यां नमः।

ॐ हसकहल ह्रीं सौः शुक्लचरणाभ्यां नमः।

ॐ सकल ह्रीं सौः मिश्रचरणाभ्यां नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं हसकल ह्रीं सौः हंसः प्रकाशचरणाभ्यां नमः ।

ॐ हसकल ह्रीं सौः सोऽहं विमर्शचरणाभ्यां नमः ।

ॐ सकल ह्रीं सौः सोऽहं विमर्शप्रकाशचरणाभ्यां नमः ।

ऐं ह्रीं श्रीं कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं हंसः शिवः सोऽहं सौः निर्वाणचरणाभ्यां नमः ।

ऐं ह्रीं श्रीं क 15 हंसः शिवः सोऽहं चतुष्पथ ज्योतिष्मतीचरणाभ्यां नमः । हसौः शुक्लविद्या महापीठ शुक्लदुग्ध शुक्लाक्षत शुक्लपुष्प शुक्लमण्डल शुक्लमहापीठ शुक्लमुद्रा, शुक्लचरण शुक्लमन्त्र महापीठ शुक्लनीति, शुक्लमहाप्रकाशानन्दनाथ, हस्ख्फ्रें हसौः गुरुनाथ श्रीं हसौः । रक्तविद्या महापीठ रक्तगन्ध रक्ताक्षत रक्तपुष्प रक्मण्डल—महापीठ—रक्तचरु रक्तमन्त्र महापीठ रक्तविद्या रक्तमुद्रा महापीठ रक्तनीति महाप्रकाश हसखफ्रें ह्सौः श्रीगुरुनाथ श्रीं ह्सौः प्रकाशचरण श्रीं ह्सौः विमर्श-चरण श्रीं ह्सौः । प्रकाश-विमर्शचरण ऐं क्लीं सौः शान्तानन्दनाथ गुरुनाथ—सौः क्लीं ऐं पीठ शतानन्दनाथ पराम्बा ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सौः उन्मन्यै वौषट् ह्रीं श्रीं ऐं ऐं क्लीं सौः आनन्दचरण ज्योतिष्पाद निर्वाणचरण श्रीगुरुनाथ परम शिवानन्दनाथ सदानन्दनाथ प्रज्ञादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ये चरणवासना के मन्त्र आम्नाय-मन्त्रों के जप के पश्चात् जपनीय हैं। श्रीयन्त्र की आवरण-पूजा के क्रम में कहीं तेरहवें आवरण में तथा चौदहवें आवरण में 'चरणवासना' की पूजा उपदिष्ट है। तदनुसार—'भावनोपनिषद्' में दर्शित पद्धति से बिन्दुचक्र में नीचे लिखे अनुसार भावना करने के लिए श्रीभास्करराय मखी ने बतलाया है कि—

उपाध्यभावरूपशुक्लत्वोपलक्षिता सती शुद्धसंविदेव शुक्लचरणः ।

चित्वविशिष्ट संवित् प्राथमिक पराहन्तात्मक मृत्युरूपेण रागेणोपलक्षिता सती रक्तरणः ।

अहमाकारवृत्तिनिरूपिता विषयता चरणयोर्मिथो विशेष्यविशेषण भावरूपैव तदुभय सामरस्यमिति विभाव्य—'हृद्रूप सर्वानन्दमयचक्रेश्वर्यै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः' इस प्रकार अनुसन्धान करना चाहिए।

'षोडशावरण-खड्गमाला' के क्रम में इन चरणों का स्मरण 'बिन्दु के ऊपर प्रणव का चिन्तन करके समयानित्याओं की पूजा के पश्चात् क्रमशः 1. शुक्लचरण, 2. रक्तचरण, 3. मिश्रचरण, 4. विश्रान्तिचरण, 5. निर्वाणचरण,

6. तुरीयचरण और 7. तुरीयातीतचरण के रूप में होता है।

'विश्वयोनिस्तोत्र' के अनुसार बिन्दु में त्रिकोण की भावना करके मध्य में दक्षरेखा में 'श्वेतपाद शुक्लचरणं वन्दयामि। रक्तपाद रक्तचरणं वन्दयामि।' पृष्ठरेखा में 'मिश्रपादमिश्रचरणं वन्दयामि' और मध्य में 'निर्वाणं निर्वाणचरणं वन्दयामि' तथा सर्वाधिकार विद्या का वन्दन करने के लिए कहा है। तदनन्तर निर्वाण दक्षिणकाली, निर्वाणोग्रतारा, निर्वाणभुवनेश्वरी, निर्वाणगुह्यकाली, निर्वाणकुब्जिका, गुरु एवं गुरुमाता की वन्दना करके—शुक्लनिष्कलपाद शुक्ल-चरण, रक्तनिष्कलपाद रक्तचरण, मिश्रनिष्कलपाद मिश्रचरण, महानिर्वाणेश्वरा- नन्दननाथ, आनन्दानन्दनाथ, प्रज्ञानानन्दनाथ, सत्यानन्दनाथ, पूर्णानन्दनाथ, स्वभावानन्दनाथ, प्रतिभानन्दनाथ, सुभगानन्दनाथ आदि के चरणों का वन्दन भी सम्मिलित किया है। यह 'त्रयोदश आवरण' का ही विषय है।

वासना—प्राक्तनजन्मसंस्कार को कहा गया है। यह वासना नामक संस्कार जीव की वृत्ति है और यही जीव को जन्म-जन्मान्तर में घुमाती है, ऐसा वेदान्त का मत है। यहाँ नादनवक त्रिपुटी की अभेद भावना चिन्मयसृष्टि का सूचक वासना पद समझना चाहिए। यह चिन्मयवासना विषयोपरक्ति के अभाव में होती है। श्रुति में अर्हंभाव को वासना माना है। यष्टुर्भावना वासनाप्रकार भेद है। दर्शपूर्णमासेष्टि प्रकरण में 'देवा: पितरो देवा:। सोऽहमस्मि स सन् यजे।' 'यस्यास्मि न तमन्तरेमि' इत्यादि यागकालिक नामरूपविरहित सख्यात्मवृत्ति रूप अभिमानवासना-त्यागकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मैक्यस्वरूप आत्मा बनना यह सङ्केत है। इस प्रकार भक्तिपूर्वक चरणवासना का आत्मीकरण होने से सामरस्य का अनुभव होता है।

'जन्म-जन्मार्जित संस्कारों को भगवती के चरणकमलों की उपासना के लिए प्रबुद्ध रखना' इस वासना का लक्ष्य है।

इस पद्य का प्रथमाक्षर 'त' जपसाधना के लिए बीजाक्षर के रूप में ग्राह्य है। इसका ध्यान—

चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम्।
सदा षोडशवर्षीयां रक्ताम्बरधरां पराम्॥
नानालङ्कारभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा तकारं तु मन्त्ररूपं सदा यजेत्॥

तकारं चञ्चलापाङ्गि स्वयं परमकुण्डली।
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं तथा।।
त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादित्तत्वसंयुतम्।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम्।।

इस प्रकार ध्यान करके त-बीज का 1000 जप करे। जप का स्थान मूलाधार है। हवन में रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और जौ से 100 आहुति दे। मार्जन, तर्पण तथा श्लोक पाठक 10-10 संख्या में करे।

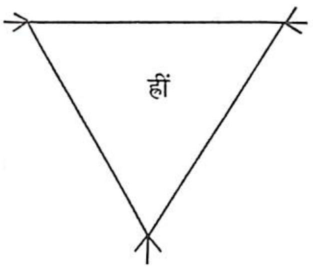

यन्त्र-सङ्केत—इस पद्य का पूजा-यन्त्र त्रिकोण मध्य में श्रीं ह्रीं बीज वाला है। श्री योगिराज बाबा मोतीलालजी मेहता ने इस पद्य का 'पूजा-यन्त्र' त्रिकोणात्मक 'ह्री' मध्य बीजवाला बतलाया है।

बीज स्थापना के विषय में हमारा अभिमत है कि साधना में फल की आकांक्षा के अनुरूप बीजाक्षर की स्थापना की जा सकती है। ऐसा करने से सिद्धि में सुगमता आ जाती है।

यन्त्र-विधि—इस यन्त्र को सोने के पतरे पर लिखकर ईशान कोण की ओर मुख करके 15 दिन तक 'तनीयांसं पांसुं' इत्यादि श्लोक की प्रतिदिन 1000 आवृत्ति करे। इससे सर्वैश्वर्य और सर्वविद्याओं की प्राप्ति होती है।

इसी यन्त्र की 54 दिनों तक पूर्वोक्त विधि से पूजा और जप करे और प्रतिदिन 2000 श्लोक जप करे तो साधक वेदों का ज्ञाता होता है। इसको नैवेद्य माष उड़द के आटे के पूए का लगाएं।

योगदृष्टि—योगी दत्तात्रेय ने शुक्ल आदि भगवती के चारों चरणों की स्थिति का श्रुतिसम्मत वर्णन किया है। जैसे—शुक्ल और रक्त चरणों का स्थान दो दलवाला आज्ञाचक्र है। मिश्रचरण का स्थान हृदयकमल है। निर्वाण चरण का स्थान सहस्रदल कमल है। इनमें क्रमश: आज्ञाचक्र में ब्रह्मा और विष्णु का ध्यान, हृदय में रुद्र का ध्यान तथा सहस्रदल में सदाशिवरूप का ध्यान करना चाहिए।

वेदान्त दृष्टि—नैयायिकों और वैशेषिकों के अनुसार परमाणु ही सृष्टि

का उपादान-कारण है। सांख्य और योग के अनुसार सृष्टि का उपादान कारण मूल प्रकृति है जिसे प्रधान और अव्यक्त भी कहते हैं। प्रधान में साम्यावस्था होती है और जब विषमावस्था होती है तो उसी को महत्तत्त्व कहते हैं। वेदान्त ने ईश्वर की इच्छाशक्ति को आदि कारण माना है और जड़ प्रधान कारणवाद एवं अणुवाद दोनों का खण्डन किया है। इस पद्य में तीनों का समन्वय करके इच्छा-शक्ति को ही स्वीकार किया गया है।

: 3 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—भगवती भवानी के चरणों की रज तो अचेतन है, उसमें ऐसी शक्ति कहाँ से आई? इस आशंका का निरसन करते हुए उनकी महिमा को प्रकट करते हैं—

अविद्यानामन्तस्तिमिर - मिहिर - द्वीप - नगरी,
जडानां चैतन्य-स्तबक-मकरन्द-स्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणि-गुणनिका जन्म-जलधौ,
निमग्नानां दंष्ट्रा मुर-रिपु-वराहस्य भवति।।3।।

अवतरणिका—भगवती के चरणकमलों का अति लघु पराग कण अज्ञाननाश करके भुक्ति और मुक्ति भी देता है तथा संसार-समुद्र में डूबे हुए का उद्धार करता है। यह व्यक्त करते हुए आचार्य कहते हैं—

सरलार्थ—हे भवानी! आपके चरण-कमल का यह रेणु अविद्यारूप अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य का आवासगृह है, अनन्त सूर्यरूप से प्रकाश देनेवाला है, जड़-जीवों के लिए चैतन्य-पुष्प-गुच्छ के मकरन्द को बरसाने वाला झरना है, दरिद्र दीनजनों के लिए चिन्तामणि (सर्वेप्सित-साधिनी) माला है तथा संसार-समुद्र में डूबे हुए जीवों के लिए विष्णु के अवतार वराह भगवान् की दाढ़ है। अर्थात् आपके इस चरणकमल के पराग कण के प्रभाव से अज्ञान नष्ट होकर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, जड़ता का लोप होकर चैतन्य का विकास होता है, दरिद्रों की सभी अभिलाषाओं की पूर्ति होती है तथा अनन्त जन्म लेने के बन्धनों से मुक्ति मिलती है।

रहस्यार्थ—यहाँ अकार 'विद्या' है। उसके मध्य में आए हुए वर्ण शक्ति हैं,

सूर्य स्वर है, द्वीप-पृथ्वीबीज का सूचक है, नगरी लज्जाबीज है, जड़ पद कामराज-कूट का सूचक है, स्तबक माया का प्रतीक है व चिन्तामणि-गुणनिका से 'नन्दिविद्या' का निर्देश मिलता है। 'जन्मजलधौ' पद में आदि और अन्त के कूट से युक्त प्रकृति शक्ति सकार से युक्त है। इन सबके सामूहिक समुद्धार से **षट्कूटा 'वैष्णवीविद्या'** का उद्धार हुआ है। इस विद्या का जप करके भगवती भुवन के भार को तिरस्कृत करती हैं। इसी नन्दिविद्या को 'चिन्तामणि-मन्त्र' कहा गया है—

यथा—

चिन्तामणिरयं मन्त्रश्चिन्तामणिरिवापरः।
चिरं चिन्तामणिध्यातुः पुंसश्चिन्तामणिः स्वयम्॥(रुद्रयामल।)

तथा इसी पद्य में दीर्घ ई का प्रश्नदेव मानकर महालक्ष्मी के बीज का भी उद्धार हुआ है।

मन्त्र-सङ्केत नन्दिविद्या—सुन्दरी मन्त्रों के भेद-प्रभेदों के प्रसङ्ग में नन्दिविद्या का उद्धार इस प्रकार मिलता है।

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यज।
चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम्॥
हित्वा चन्द्रं मुखे कुर्याद् विद्येयं नन्दिपूजिता।

इसके अनुसार—'सएईल ह्रीं सहकहल ह्रीं सकल ह्रीं' यह मन्त्र होता है। यही सादि-पञ्चदशी मन्त्र भी कहलाता है।

स्वामी कैवल्याश्रम ने इस पद्य को 'कामराजमातृका-भाव' में बतलाया है तथा पद्य के आद्याक्षर अ और ईकार के सम्बन्ध से वाग्बीज ऐ की उत्पत्ति बताई है। 'मिहिर' शब्द से द्वादश सूर्य—1. धातृ, 2. मित्र, 3. अर्यमा, 4. रुद्र, 5. वरुण, 6. सूर्य, 7. भग, 8. विवस्वत्, 9. पूषम्, 10. सवितृ, 11. त्वष्टृ और 12. विष्णु आते हैं।

योगिराज मेहताजी के अनुसार इस पद्य का बीजाक्षर 'अ' है। जप-संख्या 1000, जपस्थान मूलाधार। रक्तपुष्प, बिल्व और यव से होम दशांश करना। तथा दशांश क्रम से मार्जन, तर्पण और श्लोकपाठ करना सूचित है।

इस पद्य की साधना में 'अ' बीज का ध्यान इस प्रकार है—

केतकीपुष्पगर्भाभां द्विभुजां हंसलोचनाम्।
शुक्लपट्टाम्बरधरां पद्ममाला-विभूषिताम्॥

चतुर्वर्गप्रदां नित्यं नित्यानन्दमयीं पराम्।
वराभयकरां देवीं नागपाश-समन्विताम्।।
शृणु तत्त्वमकारस्य अतिगोप्यं वरानने।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चकोणमयं सदा।।
पञ्चदेवमयं वर्णं शक्तिद्वय-समन्वितम्।
निर्गुणं सगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्तिमान्।
बिन्दुद्वयमयं वर्णं स्वयं प्रकृतिरूपिणी।

इस प्रकार ध्यान करके 'अ' बीज का 1000 जप करें। जप का स्थान मूलाधार चक्र है। रक्तपुष्प, तिल और यवों से 100 अथवा 10 बार हवन करें। मार्जन 10, तर्पण 10 एवं श्लोक पाठ 10 बार करें। श्लोक पाठ की 1 आहुति दें। इसका पूजा-यन्त्र—मध्य में श्रीं बीज लिखा हुआ षट्कोण आकृति वाला है।

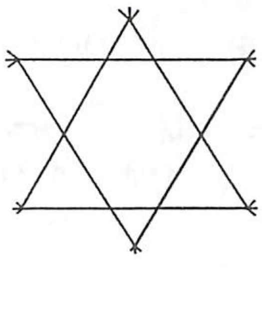

यन्त्रसङ्केत—इस पद्य की साधना के लिए षट्कोणात्मक यन्त्र बनाने का विधान है। इस यन्त्र के बीच में 'श्रीं' बीज लिखा जाता है। इसे सुवर्ण पत्र पर लिखकर ईशान कोण की ओर मुख करके 15 दिन तक यन्त्र की प्रतिष्ठापूर्वक नित्यपूजा करे और प्रतिदिन 'अविद्यानां' इत्यादि पद्य के एक हजार जप करे। बाद में इस मन्त्र को धारण करे। इससे सर्वैश्वर्य एवं सर्वविध विद्याओं की प्राप्ति होती है। अथवा इसी मन्त्र की पूर्ववत् 45 दिन तक पूजन और श्लोक का 1000 जप करे तो साधक वेदज्ञ होता है। इसकी पूजा में माष-उड़द के आटे के पूए का नैवेद्य लगाए। अन्य आचार्य बतलाते हैं कि इस मन्त्र की पूजा ललिता त्रिशती के 3000 नाम-मन्त्रों से श्वेतपुष्प, जपापुष्प अथवा मल्लिका-बेले के श्वेत पुष्प से नित्यपूजा करे तथा चावल (पके हुए) में शहद, कच्चे नारियल का बूरा मिलाकर नैवेद्य लगाए। अन्त में पान और सुपारी अर्पित करे।

विशेष—जगन्माता की कृपा से किसी भी प्रकार की ज्ञानप्राप्ति के लिए इस पद्य की साधना अनेक विद्वानों ने की है तथा ज्ञानसंवर्धन के लिए, स्मरण-चैतन्य के लिए अनेक विध प्रयोग किए हैं और समुचित लाभ प्राप्त

किए हैं। एक अन्य आचार्य ने 'विशेष प्रयोग विधि' इस प्रकार बताई है—

प्रारम्भ में नित्यनियमानुसार श्रीमन्त्र की पंचोपचार-पूजा करके नैवेद्य में दूध और मिश्री रखे। पूर्वाभिमुख होकर एकाग्रचित्त से श्रीमन्त्र के मध्यबिन्दु पर लक्ष्य केन्द्रित करके आगे बतलाए हुए मन्त्र 'अविद्यानामन्तस्तिमिर' आदि पद्य का जप यथाशक्ति करे। बारह वर्ष से छोटी आयु वाला बालक प्रातः और सायं हाथ-पैर धोकर जप करे। तब पहले—

नमस्ते श्रीगणेशाय विद्याविघ्नान् निवारय।
त्वं मे गणपते वाक्सिद्धि-विद्यासिद्धिप्रदो भव।।1।।
नमस्ते शारदे देवि सरस्वति मतिप्रदे।
वस त्वं मम जिह्वाग्रे सर्वविद्याप्रदा भव।।2।।
करवीरस्थविबुध-मूढपुत्रं विनिन्दितम्।
छिन्नजिह्वं बुधं चक्रे तद्वन्मयि कृपां कुरु।।3।।

इन पद्यों से प्रार्थना करे।

प्रौढ़ विद्यार्थी जो अपने पढ़े हुए विषय को स्मृति में बनाए रखना चाहते हों वे उपर्युक्त पूजाविधि और श्लोक जप करके आगे बताए गए मन्त्र का 31 अथवा 12 बार जप करें।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

यह जप पूर्ण करके नैवेद्य में स्थापित दूध और मिश्री का स्वयं प्राशन करके आसन से उठे। जप के समय प्रत्येक मन्त्र के बाद जूही अथवा मोगरा आदि का एक-एक युग्म श्रीमन्त्र पर चढ़ाए। इससे परीक्षा में सफलता मिलती है। परीक्षा में निश्चित सफलता के लिए—

ॐ श्रीं विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदी दिव्य चक्षुषे।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे।।

'श्रीं' ॐ इस मन्त्र का जाप करे।

अन्य विधान

विद्या-ज्ञान प्राप्ति के लिए साधना

विद्याप्राप्ति अर्थात् ज्ञान-सम्वर्द्धन के लिए सर्वप्रथम कुशाग्र बुद्धियुक्त स्मरण-शक्ति की वृद्धि होना आवश्यक है। यह दिव्यशक्ति श्रीविद्या

जगदम्बा की कृपा से प्राप्त होती है। इसके लिए विद्यार्थी अवस्था में सात्विक आहार नितान्त आवश्यक है। प्रारम्भ में श्रीयन्त्र की पञ्चोपचार पूजा करके पूर्व की ओर मुख रखकर प्रातः नियमपूर्वक सौन्दर्य-लहरी के निम्नांकित मन्त्र का जाप करे—

अविद्यानामन्तस्तिमिर-मिहिर-द्वीप-नगरी,
जडानां चैतन्य-स्तबक-मकरन्दस्तुति-झरी।
दरिद्राणां चिन्तामणि-गुणनिका जन्मजलधौ,
निमग्नानां दंष्ट्रा मुरा रिपु-वराहस्य भवती।।

जपानुष्ठान के दिनों में प्रतिदिन सायंकाल में हाथ, पैर, मुँह धोकर पूर्वाभिमुख बैठे। स्वस्थचित्त से आसन पर बैठे हुए पूर्ण शान्तभाव से आगे लिखे हुए प्रार्थना के पद्यों को बोले—

नमस्ते श्रीगणेशाय विद्या-विघ्नान् निवारय।
त्वं मे गणपते वाक्सिद्धि-विद्यासिद्धिप्रदो भव॥
नमस्ते शारदे देवि सरस्वति मतिप्रदे।
वस त्वं मम जिह्वाग्रे सर्वविद्या-प्रदा भव॥
करवीरस्थ-विबुध मूढपुत्रं विनिन्दितम्।
छिन्नजिह्वं बुधं चक्रे तद्वन्मयि कृपां कुरु॥

यह प्रार्थना करके आगे लिखे हुए मन्त्र का 31 बार अथवा 12 बार जाप करे।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

जप पूर्ण करने के पश्चात् दूध और मिश्री का भगवती सरस्वती को नैवेद्य लगाए।

परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए—परीक्षा के 21 दिन पहले यह मन्त्र जप-प्रार्थना करे तथा सूर्योदय से पूर्व स्नान आदि करके मन्त्र जप करते हुए 31 पुष्पों से इष्टदेव की प्रतिमा अथवा चित्र पर पूजा करे।

परीक्षा में निश्चित रूप से सफलता प्राप्त करने के लिए—

ॐ श्रीं विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदी दिव्यचक्षुषे।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे।। श्रीं ॐ

इस मन्त्र का जप 108 बार करें।

'त्रिपुरसुन्दरी-साधना' में इस पद्य का मन्त्रोच्चार नीचे बताए अनुसार है—**'ऐं ऐं ऐं क्लीं हस्से काका ळ ळ ळ ळ ह्रीं ह्रीं ह्रीं चिन्तामणि गुणनिक स्वाहा।'** इसकी जप-संख्या सत्रह हजार है।

फल—इसके जप से पाप, शाप, ताप, रोग-दोष, ग्रहदोष और दुर्भाग्य—जनित अरिष्ट का नाश होता है।

साहित्य सुधोदय—यहाँ परिणाम अथवा उल्लेख अलङ्कार का प्रयोग हुआ है। अविद्या शब्द अज्ञानियों का सूचक है। अविद्यमान विद्या का नहीं। यत्र-तत्र तिमिर एवं समुद्र का आरोप अज्ञान एवं संसार पर होने से रूपक अलङ्कार भी प्रयुक्त है।

श्रीविद्योपासकों के लिए प्रारम्भ में कामराज-मातृका न्यास आवश्यक है, अतः यहाँ इस पद्य में 'कामराज-मातृका-देवता' का ध्यान सूचित किया है। सौभाग्यवर्धिनी-टीका में ध्यान का पद्य इस प्रकार दिया है—

बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां कोदण्डमिक्षुजनितं स्मरपञ्चबाणान्।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां ध्यायेत् समस्त जननीं नवचन्द्रचूडाम्॥

भगवती त्रिपुरा का बीजमन्त्र ऐं है। यह ऐं बीज ऋग्वेद तथा सामवेद के आदिवर्ण अकार तथा यजुर्वेद के आदिवर्ण इकार से सन्धि होने पर बना है। ए में पहले गुणसन्धि और बाद में वृद्धिसन्धि होने से ऐ बना और इसमें अर्धचन्द्राकार का योग करने से 'ऐं' यह त्रयीरूप होता है। इसमें प्रथम अकार अविद्यानिवर्तक है, द्वितीय अकार जड़ता निवर्तक है। इकार इच्छित फल का दाता है और अर्धचन्द्र मोक्षप्रद है। इस प्रकार यह वाग्भव-बीज 'कादिमत' एवं त्रिपुरार्णव में बतलाया है।

अविद्या शब्द की व्युत्पत्ति—आन्-ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरान् विदन्ति इति अविद्या। ऐसी मानी गई है।

इस पद्य से 'चिन्तामणि-गुणनिका' मन्त्र का उद्धार भी देवदत्त शास्त्री जी ने बतलाया है। मन्त्र का स्वरूप है—'ॐ ॐ ॐ ऐं ऐं ऐं क्लीं ह्सौं काकाका ललल ह्रीं ह्रीं ह्रीं चिन्तामणि-गुणनिके स्वाहा।' इस पद्य में वाराही-विद्या की उपासना भी सूचित है।

साहित्य सुधोदय—इस पद्य में परिणामालङ्कार और उल्लेखालङ्कार हैं। भगवती अपने शरीर से उत्पन्न ब्रह्मा आदि देवों को ही महिमामण्डित नहीं करती है अपितु अविद्या, जड़ता और दरिद्रता आदि से ग्रस्त अपने भक्तों का

भी पालन-पोषण करके अभीष्ट प्राप्त कराती है, यह व्यक्त किया है।

यहाँ विद्या-धर्म प्रतिपादक शास्त्र है, इससे रहित अज्ञानरूप अन्धकार में डूबा रहता है, उसके लिए ज्ञानरूपी सूर्य, जड़—कामादिशास्त्रज्ञानरहित के लिए स्तबक—ज्ञानसमूह-पुष्परस, दरिद्र-निर्धन के लिए चिन्तामणि की माला, संसार-समुद्र में डूबे हुए जीवों के लिए वराहभगवान् की दाढ़, इन चार विशेषणों से धर्मार्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थों को देनेवाली भगवती है, यह अभिव्यक्त है।

वेदान्त-दृष्टि—मुण्डकोपनिषद् में परा और अपरा नाम से दो प्रकार की विद्या बतलाई हैं। चारों वेद और उनके छः अङ्ग शिक्षा कल्पादि अपराविद्या में आते हैं। ब्रह्मप्राप्ति के लिए पराविद्या मान्य है। अपराविद्या में कर्मकाण्ड-विस्तार अविद्यामय है। अतः मुमुक्षुओं को पराविद्या की साधना करनी चाहिए।

यौगिक-दृष्टि—कुण्डलिनी शक्ति प्रबुद्ध होकर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार में शिवसायुज्य पद पर आरूढ़ होने के लिए मूलाधारादि छः चक्रों का वेध करती हुई पहुँचती है। तब वह प्रतिप्रसव-क्रम से सब इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बना देती है। मन के विक्षेपों को नष्ट कर देती है तथा बुद्धि को बाह्यचिन्तन से विश्रान्ति दिलाती है। अन्तरात्मा रूपी सूर्य पर छाए हुए बादल विलीन होने लगते हैं। हृदयाकाश स्वच्छ हो जाता है। ज्ञान का प्रकाश पूर्ण तेज से चमकने लगता है। अविद्या का अन्धकार एवं वासनारूपी काम-क्रोधादि समाप्त हो जाते हैं।

आचार्य चरण का कथन है कि अविद्यारूपी अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए भगवती प्रखर सूर्य के समान है। सूर्यमण्डल में अधोमुखी सूर्यशक्ति जाग्रत होकर अमृतस्राव करने लगती है। उसी से वासना शान्त होती है और अन्तर्याग द्वारा भगवती चिन्मयी-वाटिका के पुष्पों से मकरन्द का प्रवाह झरता है, जिससे जड़ता समाप्त होकर प्रति-प्रसव-क्रम से सभी नामरूपों को अपने में विलीन करती हुई शिव से सायुज्यता को प्राप्त करके स्वयं शिवस्वरूप हो जाती है।

आत्मबोधोपनिषद् और योगचिन्तमण्युपनिषद् आदि उपनिषदों में यह विषय-विस्तार से समर्थित किया है।

साहित्य सुधोदय—आचार्य भगवत् पाद ने सौन्दर्य-लहरी के प्रत्येक पद्य में प्रयुक्त पदावली का संयोजन व्यङ्ग्यगर्भित एवं लक्ष्यार्थपोषक रूप में किया है। इस पद्य में रूपक अथवा उल्लेख अलङ्कार का आश्रय लेकर चरणरज की विविध क्षमताओं का निदर्शन अद्‌भुत है। आनुप्रासिक वर्णच्छटा

के साथ ही आगमोक्त भगवती की अपूर्व महिमा का दर्शन भी सहज करा दिया है। जगन्मात सर्व अज्ञान नाशिका, जड़-जीवों के लिए चैतन्य प्रकाशिका, दरिद्रों के लिए चिन्तित कामनापूर्तिकरी, संसार समुद्र में डूबे हुए जीवों का उद्धार करनेवाली इत्यादि कथन से माला एवं परम्परित रूपकालङ्कारों की संसृष्टि भी यहाँ हुई है। कुछ आचार्य परिणामालङ्कार भी प्रतिपादित करते हैं।

श्रीविद्या के मन्त्राक्षर चिन्तामणि-माला के दाने के समान हैं। इन विस्तृत कथनों से यह सिद्ध किया गया है कि सकाम साधकों और निष्काम साधकों के लिए ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों ही फल प्राप्त करानेवाली जगदम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना सर्वतोभावेन श्रेयस्करी है।

ईशावास्योपनिषद् के—

अन्धतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूप इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

इस मन्त्र का तत्त्व इस पद्य में यथार्थतः समझाया है।

'मुररिपु-वराह की दंष्ट्रा' का स्मरण करते हुए यहाँ पौराणिक आख्यान का समावेश स्पृहणीय है। हिरण्याक्षवध की कथा का अनुसन्धान करके भगवती वाराही शक्ति की उपासना का भी इसमें निर्देश है।

: 4 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के चरणों की धूलि की महिमा पूर्वपद्य से वर्णित करके आचार्यश्री चरणों की महिमा का पुनः महत्त्व बतलाते हुए अन्य देवताओं की तुलना में समधिक प्रभाव वर्णन करते हुए कहते हैं—

त्वदन्यः पाणिभ्यामभय-वरदो दैवतगण—
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छा-समधिकं,
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥4॥

अवतरणिका—भगवती की स्तुति की आवश्यकता व्यक्त करते हुए आचार्य शङ्कर कहते हैं कि—अन्य हरि-हर-गणेशादि देव अपने हाथों में वर-अभयमुद्रा आदि धारण करके यद्यपि स्तुति से इच्छित फल प्रदान करते हैं,

तथापि आपके चरण ही वाञ्छित से अधिक फल देने में निपुण हैं तथा वे देव भी तो आपके ही शरण्य हैं। अतः आप ही स्तुत्य है।

सरलार्थ—हे भगवती ! आपके अतिरिक्त देवगण मनोरथ प्रदान के लिए अपने दोनों हाथों में अभय और वरद मुद्राओं को धारण करते हैं, किन्तु आप अकेली ऐसी हैं कि अपने हाथों में ऐसी मुद्रा धारण का अभिनय नहीं करती हैं। अपितु आपके चारों हाथों में धनुष, बाण, अंकुश और पाश धारण किए हुए हैं। अतः हे शरण्ये ! आपके चरण ही सभी को भय से रक्षा तथा वाञ्छा से अधिक फल देने में निपुण हैं।

रहस्यार्थ—यद्यपि समस्त अभिमतसिद्धि देनेवाले हैं जिसे हम उनके वर, अभय आदि मुद्राओं से युक्त कर-कमलों से प्रकाशित हैं, किन्तु आचार्य की दृष्टि में वे मात्र अभिनयरूप हैं। क्योंकि भगवती त्रिपुरसुन्दरी के हाथ तो पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणों से विभूषित हैं। इस स्थिति में आराधक पूजा में वरदान, अभयदान आदि चिह्नों के अभाव में कैसे प्रवृत्त हो ? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि—हे परमेश्वरी ! आपके अतिरिक्त देवसमूह तो अपने हाथों से वरदान एवं अभय प्रदान का प्रदर्शन करते हैं, किन्तु आप अकेली ऐसी हैं कि अपने हाथों से वरदान, अभयदान आदि का प्रदर्शन नहीं करती हैं। इससे यह शङ्का नहीं करनी चाहिए कि इन चिह्नों के अभाव में भक्तों को इनका लाभ कैसे प्राप्त होगा ? ऐसा नहीं है। हे माता ! अपनी शरण में आए हुए भक्त को संसार के मोह से बचाने के लिए तथा उसकी इच्छा से भी अधिक फल देने के लिए भी आपके चरण ही निपुण हैं। जब चरण ही वरदान, अभयदान आदि को प्राप्त कराने में समर्थ हैं, तो हाथों में वराभय आदि मुद्राधारण के अभिनय की आवश्यकता ही क्या है ? यहाँ वर का अर्थ-स्वर्ण और अभय या मोक्ष गृहीत है। 'मनोहर-स्तोत्र' में कहा गया है कि—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं है, जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं है। किन्तु भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना में तत्पर भक्तों के लिए तो भोग और मोक्ष दोनों ही हाथ में रखे हुए हैं। अतः कामना से अधिक फल देनेवाला कोई ऐसा अन्य देवता नहीं है। देवी माहात्म्य-दुर्गासप्तशती में सुरथ क्षत्रिय और समाधि वैश्य के द्वारा यह कथन पुष्ट हुआ है।

मन्त्र-सङ्केत—इस श्लोक से श्रीमाता की उपासना के लिए '**बाला मन्त्र**' '**ऐं क्लीं सौः**' का सङ्केत किया है, जो भुक्ति और मुक्ति को देनेवाला है। बालामन्त्र के उद्धार के लिए भगवती के स्थूल-स्वरूप अग्नि को और देवीप्रणव **ऐं** को आधार माना है, यही वाग्-बीज भी है। यह त्रिकोणाकृति है तथा भगवती के तृतीय नेत्र का प्रतीक है। मधु-कैटभ राक्षसों से भयभीत ब्रह्माजी ने इसी बीज द्वारा आराधना की थी। कामनाओं की सिद्धि के लिए काम-बीज 'क्लीं' है तथा सर्वशक्ति-सम्पन्न चरणों का प्रतीक '**सौः**' बीज है। ये ही तीन बीज लोम-विलोम प्रयुक्त होने पर '**षडक्षरी-बाला**' और लोम-विलोम एवं पुनः लोम होने पर 'नवाक्षरी बाला मन्त्र' बनते हैं। इनके ध्यान एवं भैरव-मन्त्र भी पृथक्-पृथक् हैं।

—अन्य आचार्य श्री देवदत्तजी शास्त्री ने 'ह्रां ह्रीं ह्रूं क्षेत्रज्ञे ग्लौं श्रीनित्ये गां स्वाहा' मन्त्र का उद्धार माना है। इस मन्त्र की साधना द्वारा पाप-ताप-शाप-रोग-दोष, ग्रहदोष और दुर्भाग्य से अत्यन्त अरिष्ट का निवारण होता है। सवा लाख जप करना चाहिए।

योगिराज बाबा श्रीमोतीलालजी मेहता ने इस पद्य का बीजाक्षर 'त्व' बतलाया है। इसका मूलाधार में एक हजार संख्या में जप करें। दशांश हवन में बिल्वफल, तिल और जौ का प्रयोग कर 108 आहुति दें। मार्जन, तर्पण, ब्राह्मण भोजन तथा श्लोक पाठ दस-दस करें।

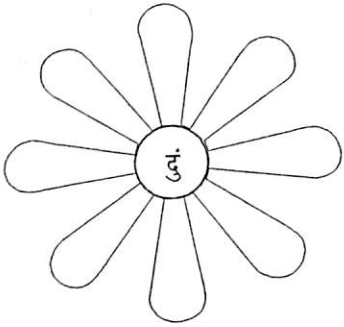

यन्त्र-सङ्केत—दाक्षिण्त्य आचार्य इस पद्य का यन्त्र अष्टदल-कमल और उसके मध्य में 'दुं' बीज लिखकर बनाने का सूचन करते हैं।

यह यन्त्र चाँदी के पतरे पर लिखकर प्रतिष्ठा करे और 16 दिन तक प्रतिदिन 1000 श्लोक जप करके पूजा करे तथा स्वयं धारण करे। इससे साम्राज्यसिद्धि होती है।

अथवा इस यन्त्र की पूजा 26 दिन तक श्लोक जप 1000 करे। इसके बीच में श्रीं बीज लिखे। इससे साधक की दरिद्रता नष्ट होती है तथा रोग मिट जाते हैं। नैवेद्य में हल्दी मिले

हुए भात, केशरिया भात का प्रयोग करे। ललितासहस्रनाम से उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुँह करके यन्त्र की पूजा करे। नैवेद्य में मसालेवाले भात बनाकर नींबू का रस शक्कर और दूध का प्रयोग भी किया जाता है।

श्रीमेहताजी 'त्रिकोणाकार मन्त्र' में श्रीं बीज लिखकर, 'त' और 'त् व' अक्षरों का ध्यान करके पूजन का निर्देश देते हैं। ध्यान के पद्य इस प्रकार हैं—

त्-कार ध्यान—

तकारं चञ्चलापाङ्गि स्वयं परमकुण्डली।
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं तथा।।
त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम्।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम्।।

वकार ध्यान—

वकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली मोक्षमव्ययम्।
पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा।।
त्रिबिन्दुसहितं मन्त्रमात्मतत्त्वसमन्वितम्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लतामयम्।
चतुर्वर्गप्रदं शान्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।

योगदृष्टि—साधक साधना में बैठने के पश्चात विघ्नकर्ता और हिंसक जीवों से अपनी रक्षा के लिए दिग्बन्धन करता है। उसमें ज्वालामालिनी देवी के मन्त्र द्वारा अपने रक्षण के प्रकार-परकोटे की भावना की जाती है। ज्वालामालिनी का मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं ह्रूं र र र र र र र हूं फट् स्वाहा'**।

इस पद्य में वर्णित बाला मन्त्र का प्रथम बीज अग्नितत्त्व का अक्षर है। यह सुषुम्ना नाड़ी से सम्बद्ध है। इस बीज के स्मरण से सुषुम्ना का आग्नेय-तत्त्व खुल जाता है तथा बीजशक्ति से कुण्डलिनी को सहस्रार में पहुँचने में सुविधा होती है।

साहित्यसुधोदय साहित्यसृष्टि—पद्य में वर्णित हाथों से वरदान और अभयदान देने की क्रिया की अपेक्षा चरणों के द्वारा वरदान, अभयदान और समाधिसुख देने का कथन असाधारण रूप से वर्णित है। अत: व्यतिरेकालङ्कार

और हेतुकथन से काव्यलिङ्ग अलङ्कार घटित है।

अन्य देवों में ब्रह्मादि की उपासना करने से वे एक-एक इच्छा की ही पूर्ति करते हैं; किन्तु भगवती के चरणों की उपासना से तो इच्छा से भी अधिक फल की प्राप्ति होती है। अतः 'भगवती ही परम उपास्या है' यह ध्वनित है। अन्य देवता अपने हाथों से इच्छित फल-प्रदान करते हैं; किन्तु भगवती के तो चरण ही तत्समान फल प्रदान करने में निपुण हैं। यह विशिष्टता भी यहाँ ध्वनित है।

श्रीत्रिपुरारिसुन्दरी भगवती के सर्वत्र चार भुजाओं का वर्णन प्राप्त होता है; किन्तु इस पद्य में दो भुजाओं का ही वर्णन हुआ है।

: 5 :

प्रसङ्ग सङ्गति—पूर्वोक्त पद्य द्वारा भगवती के चरणों की महिमा को वर्णित किया गया, उसकी पुष्टि के लिए आचार्यश्री दृष्टान्त-प्रमाण प्रस्तुत करते हुए विष्णु, शिव, कामदेव आदि के उदाहरण व्यक्त करते हुए माता की स्तुति करते हैं—

हरिस्त्वामाराध्य प्रणत-जन-सौभाग्य-जननीं,
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा,
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्।।5।।

अवतरणिका—पूर्वोक्त भगवती के चरणों की मनोरथपूर्ति की पुष्टि को दृष्टान्त द्वारा प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री भगवान् विष्णु और कामदेव द्वारा जगन्मोहन सामर्थ्य प्राप्ति का आधार भगवती की आराधना को व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे भक्तजनों को लोकोत्तर सम्पत्ति प्रदान करनेवाली माँ! श्रीहरि ने पूर्व में मन, वचन और काया से आपकी आराधना करके आपके सायुज्यरूप मोहिनीस्वरूप को प्राप्त करके काम-दहन करके स्वयं महादेव को भी मोहित कर दिया था। उसी से प्रेरणा प्राप्त करके कामदेव ने भी आपकी आराधना की, जिसके फल-स्वरूप वह भी रतिनेत्र चुम्बनयुक्त अत्यन्त मनोहर

शरीर को प्राप्त करके मनोहारिणी शक्ति से बड़े तपस्वी महामुनियों के मन में विकार उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

रहस्यार्थ—अमृतमन्थन के पश्चात् श्रीहरि के मोहिनी रूप को देखने के लिए आए हुए भगवान् शिव ने श्रीहरि से पूछा कि—आपने जिस रूप से दानवों को मोहित किया, उस रूप को मैं देखना चाहता हूँ, तब श्रीहरि ने नारायणीरूप प्रकट करके शिव को क्षुब्ध कर दिया, वे कामपरवश हो गए। उससे स्मरणावस्था को प्राप्त होने के कारण कामदेव स्मर नाम को प्राप्त हुआ। जोकि रति के नेत्रों से आस्वाद्य-परमानुराग से दर्शनीय शरीरवाला बना, और विश्वामित्र, गौतम आदि महामुनिगणों को भी मोहित करने का सामर्थ्य रखनेवाला, वह भी आपकी षट्कूटा विद्या की उपासना करके ही वैसे स्वरूप को प्राप्त हुआ। यहाँ 'प्रणतजनसौभाग्यजननि+ई' ऐसा सन्धि-विभाजन करके शिव को मोहित करने की शक्ति की उपलब्धि के लिए श्रीहरि ने तुरीय वर्णरूप 'ई' बीज की उपासना की थी। क्योंकि स्वयं कामदेव का दहन करनेवाले शिव किसी प्राकृत नारी के रूप से मोहित नहीं हो सकते थे। इस प्रकार विष्णु ने षट्कूप विद्या की उपासना के प्रभाव से ही शिव को मोहित किया।

भगवती के चरणकमल साष्टांग प्रणाम, स्तोत्र, मन्त्रजप आदि से भी इष्टफल प्रदान करते हैं। मार्कण्डेय-पुराणोक्त—'स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप-गन्धादिभिस्तथा। ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा शुभाम्' इत्यादि वचन इसमें प्रमाण हैं। भगवान् विष्णु भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के आद्य उपासक हैं। भगवती के मन्त्र के प्रथम खण्ड के द्रष्टा ऋषि भी विष्णु हैं। वामकेश्वर तन्त्र में भी—'एतामेव पुरा ध्यात्वा विद्यां त्रैलोक्यमोहिनीम्' इत्यादि कहकर विष्णु और कामदेव के द्वारा भगवती की उपासना से ही सर्वमोहन शक्तिप्राप्ति का कथन हुआ है।

मन्त्रसङ्केत—श्री आनन्दगिरि ने इस पद्य से प्रथमचक्र—त्रैलोक्यमोहनचक्र एवं उसके मन्त्र का उद्धार बतलाया है। श्रीचक्र का पहला चक्र 'त्रैलोक्यमोहनचक्र' है। इस चक्र की ईश्वरी का मन्त्र 'हरि से अ, आराध्य से आ तथा प्रणतजनसौभाग्यजननीं के सौभाग्य से सौ का ग्रहण करके नयनत्रय—बिन्दु से युक्त इन बीजों से 'अं आं सौः' इस—त्रैलोक्यमोहन- चक्रेश्वरी मन्त्र का उद्धार होता है।

अन्य विमर्शक आचार्य लोपामुद्राविद्या—'हसकल ह्रीं हसकहल ह्रीं

सकल ह्रीं' (पञ्चदशाक्षरी है) तथा नन्दिविद्या—सएईल ह्रीं सइकइल ह्रीं सकल ह्रीं (पञ्चदशाक्षरी) है। इन दोनों के योग से षट्कूटा वैष्णवी विद्या बनती है। इनमें आधा मन्त्र शिवप्रधान और आधा मन्त्र शक्ति प्रधान है।

श्री मेहताजी ने इस श्लोक से **'साध्य-सिद्धविधा'** का उद्धार स्वामी अच्युतानन्दाचार्य के अनुसार बतलाया है। यह विद्या 'चतुरासनन्यास' में प्रयोज्य है। ये 1. देव्यासन, 2. श्रीचक्रासन, 3. सर्वमन्त्रासन और 4. साध्य-सिद्धासन रूप चार आसन क्रमशः (चरणद्वय), (जानुद्वय), (ऊरुमूल) तथा मूलाधार में व्यक्त होते हैं। इस साध्य सिद्धविद्या का स्वरूप 'ह्रीं क्लीं ब्लें' है। इसमें हर, स्मर—कामबीज, ई, वपुषा से व्, लेइत्र से ले तथा महतां मुनीनाम् से अनुस्वार का ग्रहण करके उद्धार स्पष्ट किया है। इस मन्त्र की साधना से सर्वसौभाग्य की प्राप्ति होती है।

योगिराज श्रीमेहताजी ने पद्य के प्रथमाक्षर ह को इस पद्य का बीजाक्षर बतलाया है तथा त्रिकोणात्मक यन्त्र के मध्य में दुं बीज लिखकर प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजा करने का सूचन किया है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

चतुर्भुजां रक्तवर्णां शुक्लाम्बर-विभूषिताम्।
रक्तालङ्कारसंयुक्तां वरदां पद्मलोचनाम्॥
ईषद्हास्यमुखीं लोलां रक्तचन्दनचर्चिताम्।
सर्वधात्रीं चतुर्वर्गप्रदां सौम्यां मनोहराम्॥
गन्धर्वसिद्धदेवाद्यैर्ध्यातामाद्यां सुरेश्वरीम्।
एवं ध्यात्वा हकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥

हकार का ध्यान—

हकारं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम्।
कुण्डलीद्वयसंयुक्तं रक्तविद्युल्लतोपमम्।
रजस्सत्वतमोयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा।
पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं हृदि भावय पार्वति॥
ऊर्ध्वादाकञ्चिता मध्ये कुण्डली त्वं गता ह्यधः।
ऊर्ध्वं गता पुनः सैव तासु ब्रह्मादयः क्रमात्॥

हकार का जप 1000, जपस्थान मूलाधार, रसपुष्प, तिल और जौ से

आहुति 100 अथवा 10, मार्जन 10, तर्पण 10 बार। श्लोक पाठ आहुति 10। त्रिकोणयन्त्र की पूजा। इससे सम्मोहन-आकर्षण होता है।

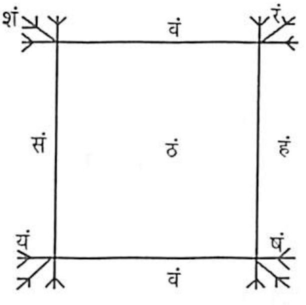

यन्त्र-सङ्केत—इस श्लोक की आराधना के लिए चतुष्कोण आकार का यन्त्र बनाकर चारों दिशा और चारों कोणों में बनाए अनुसार बीजाक्षर लिखें तथा बीच में ठं बीज लिखे। ताम्रपत्र पर यह यन्त्र बनाएं तथा लाल पुष्पों से प्रतिष्ठा-पूर्वक पूजा करें। दुर्गा सप्तशती और ललिता-सहस्रनाम का पाठ करें तथा गुड़, क्षीरान्न, नारियल एवं शहद का नैवेद्य लगाकर 8 दिन तक आराधना पाठादि करें।

इससे वशीकरण, आकर्षण होता है। अनुष्ठान पूर्ण होने पर यन्त्र को मस्तक पर धारण करें। अन्य आचार्य ताम्रपत्र पर केसर की स्याही और अनार की कलम से 2000 लिखने का भी निर्देश करते हैं।

इस पद्य से 'ॐ लं ईं ह्रीं क्लीं श्रीं संक्षोमणे स्वाहा' संक्षोभणमन्त्र का और 'ॐ क्लीं ह्रीं सहकल हसकल क्षूं सहकल हसकल कमले विमले क्लीं सम्मोहने स्वाहा' इस मन्त्र का उद्धार भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध भाग से किया है। इससे सर्वसौभाग्य की श्री प्राप्ति होती है।

योगदृष्टि—साध्यसिद्ध-मन्त्र का न्यास स्वामी श्री विष्णुतीर्थजी महाराज के अनुसार हृदयचक्र और महांनाद के ऊपर होता है। अन्य आचार्य बिन्दु के ऊपर स्थित उन्मनी आदि के ऊपर न्यास करना बतलाते हैं। अन्तरात्मा की आध्यात्मिक खोज के लिए आत्मज्ञान अमृत है। इस अमृत की प्राप्ति के लिए शिवशक्त्यात्मक-आराधना करके अन्तरात्मा में प्रविष्ट होना ही मुक्ति है। हादिविद्या मोक्ष देती है। वैष्णवीविद्या से शक्ति प्राप्त होती है। इन दोनों की आराधना यहाँ उपदिष्ट है।

साहित्य-सृष्टि—इस पद्य में प्रयुक्त पदावली अभिधार्थ के अतिरिक्त गूढ़ार्थों से भी गर्भित है। जिनसे विष्णु, कामदेव को त्रिपुरान्तकशिव को मोहित करने की सौन्दर्य-सम्पत्ति भगवती की उपासना से ही प्राप्त है, यह कथन होता है।

पौराणिक-आख्यान—यहाँ समुद्र-मन्थन के पश्चात् विष्णु के मोहिनी अवतार एवं शिव के मुग्ध होने की कथा का स्मरण कराया है।

: 6 :

प्रसङ्ग सङ्गति—यद्यपि पूर्वोक्त पद्य में भगवती की कृपा कामदेव के सर्वाङ्ग सुन्दरत्व एवं सर्वसम्मोहन-शक्ति का वर्णन करके उसकी निपुणता बतलाई है तथापि उसकी अनङ्गविद्या में उसका ऋषित्व होने से उसकी अति निपुणता का कटाक्ष की कृपा के माहात्म्य रूप में वर्णन करते हैं—

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्च विशिखा,
वसन्तः सामन्तो मलय-मरुदायोधनरथः।
तथाऽप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते! कामपि कृपा—
मपाङ्गात् ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते।।6।।

अवतरणिका—यह प्रसिद्ध है कि 'कामदेव अशरीरी है, तथापि उसने श्रीविद्या की उपासना से माता की कृपा का लेशमात्र प्राप्त करके वह जगद्-विजयी बना हुआ है' जबकि उसके विजयकारक साधन भी तद्नुकूल नहीं हैं। यह व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे हिमालय-पुत्री, माता! आपके कृपा-कटाक्ष का ही यह प्रभाव है कि भगवान् शिव की नेत्राग्नि से दग्ध कामदेव अनङ्ग होकर भी वह अकेला जगद्-विजेता बना हुआ है। वैसे देखा जाए तो उसके युद्ध के उपकरणों में भ्रमर की प्रत्यञ्चावाला धनुष पुष्पों से बना हुआ है। उसके पास केवल पाँच बाण ही हैं। अकेला वसन्त ही उसका साथी-सेनापति है तथा शीतल मलय-पवन ही युद्ध का रथ है। (ये सभी सामान्य हैं, तथापि) आपकी कृपापूर्ण अमृतमयी दृष्टि से वह अनङ्ग सशरीर उत्पन्न होकर अकेला अखिल विश्व पर विजय प्राप्त कर रहा है। अतः आप 'कामाक्षी'—अक्षि (नेत्र) से काम को उत्पन्न करनेवाली हैं।

रहस्यार्थ—कामदेव अनङ्ग=अङ्ग-रहित है। उसके आयुध धनुष आदि भी अपने-अपने कार्य के साधन में अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। यथा—धनुष पुष्पों का है। पुष्प अति कोमल होते हैं। वे स्पर्श को भी सहन नहीं कर

सकते। अतः धनुष को झुकाना, खींचना असम्भव है। प्रत्यञ्चा भँवरों से निर्मित है, अतः परस्पर उसे ताना भी नहीं जा सकता। केवल पाँच पुष्पों के बाण हैं और उनमें शिखा-फल भी नहीं है। अतः वे अपेक्षित कार्य करने में असमर्थ हैं। वसन्त ऋतु सचिव है, वह भी चैत्र-वैशाख मास होने पर आता है। मलयाचल से आनेवाला वायु युद्ध का रथ है। वह तो मलय पर्वत पर ही स्थित है। वह सर्वत्र सुलभ भी नहीं होता। तथापि वह अकेला कामदेव असहाय साधनों से शूर बना हुआ हाथों के अभाव में धनुष का आकर्षण, शरसन्धान, पैरों के अभाव में रथ में स्थिर रहने में तथा मुखादि के अभाव में सम्भाषण, निरीक्षण, साथ में बैठने आदि में असमर्थ होते हुए भी इस स्थावरजङ्गम जगत् को मोहित करके विजय प्राप्त कर रहा है। यह आपके कृपा-कटाक्ष की सङ्गति का ही फल है। अर्थात् अत्यन्त असहाय एवं साधनशून्य व्यक्ति भी माता की कृपा से सर्वसामर्थ्य प्राप्त कर सकता है।

अत्यन्त तुच्छ साधनों वाला कामदेव अनङ्ग होते हुए भी भगवती के कृपाकटाक्ष से ही जगत् को अकेला जीत लेता है। इसका कारण भगवती की उपासना ही है। इस प्रसङ्ग से यह भी स्पष्ट होता है कि मोक्ष की इच्छा रखनेवाले साधकों को कामदेव से बचने के लिए भगवती की उपासना करनी चाहिए।

मन्त्र-सङ्केत—इस पद्य में प्रयुक्त काम-पद से क्, मलय पद से ल, मौर्वी पद से ई और पौष्पं से अनुस्वार का चयन करके 'क्लीं' बीज का उद्धार किया है। इस बीज की उपासना से मनोवाञ्छित-सिद्धि प्राप्त होती है। अरुणामोदिनी-टीकाकार ने द्वितीय चक्रेश्वरी बाला त्रिपुरेशी के मन्त्र का उद्धार किया है। द्वितीय चक्र सर्वाशापूरक है। उसकी अधीश्वरी त्रिपुरेशी हैं। इसका मन्त्र है—'ऐं क्लीं सौः'।

योगिराज श्रीमेहताजी ने 'धकार' को बीजाक्षर बतलाकर उसकी जप-संख्या 1000, जप-स्थान मूलाधार, रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और जौ का दशांश 100 हवन, 10 बार मार्जन, 10 बार तर्पण और 10 बार श्लोक पाठ एवं श्लोक से 10 आहुति देने का विधान बतलाया है।

'ध' का ध्यान—

षट्भुजां मेघवर्णां च रक्ताम्बरधरां पराम्।
वरदां शुभदां रम्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्॥
एवं ध्यात्वा धकारं तु मन्त्रं च दशधा जपेत्।

त्रिकोणरूपरेखायां त्रयोदेवा वसन्ति च।
विश्वेश्वरी विश्वमाता विश्वधारिणीति च।।

श्री देवदत्त शास्त्रीजी सम्मोहन, आकर्षण और वशीकरण के मन्त्र का उद्धार—'**ॐ उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं भयं मे भञ्ज श्रीमति ध्रीं यवरयूं हसौः कमले क्लीं स्वाहा**' दिया है।

यन्त्र सङ्केत—इस पद्य की साधना में चतुष्कोण मन्त्र बनाकर उसके बीच में तीन क्लीं बीज, तीन सं बीज तथा पुनः तीन क्लीं बीज तीन पंक्तियों में लिखे जाते हैं।[1] यन्त्र को सवर्ण के पत्रे पर बनाकर पूर्व की ओर मुंह करके 31 दिन तक 500 बार श्लोक की आवृति करें।यन्त्र की पूजा में जेसमीन अथवा चम्पे के पुष्पों का प्रयोग करे। ललिता त्रिशती के 300 नामों से नित्यार्चन करे। तथा औटाये हुए दूध में नारियल का बूरा डालकर नैवेद्य लगाए। इससे शक्ति बढ़ती है तथा सर्ववशीकरण होता है।

योगदृष्टि—कामविकार का जब तक नाश नहीं होता, तब तक जीवात्मा परमात्मा से समत्व प्राप्त नहीं कर सकता। काम समाधि के लिए बहुत बड़ा विघ्न है। कामवासना का क्षय ज्ञान के उदय से होता है। यहाँ काम को जगत्-विजयी बतलाकर साधकों को कामवासना से बचने का सङ्केत दिया है। योगसाधना से यह सम्भव है। सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् में कहा है कि—

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः।
तथात्ममनोरैक्यं समाधिरित्यभिधीयते।।

अर्थात् जैसे पानी में नमक मिलाने पर वह घुलमिल जाता है, वैसे ही आत्मा में मन भी योगसाधना से विलीन हो जाता है, उसे समाधि कहते हैं तथा जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य से समस्त सङ्कल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं। अतः मन को जीतने के लिए सावधानीपूर्वक भगवती के चरणों में चित्त लगाना चाहिए।

साहित्य-सृष्टि—यहाँ धनुष्, मौर्वी, रथ आदि कामदेव के विशेषणों का

1. यहाँ कुछ आचार्यों ने मध्य पंक्ति में सं बीजों के स्थान पर 'साध्यकार्य का नाम' लिखने का भी निर्देश किया है।

अति लघुत्व सूचन करने से भगवती के कृपाकटाक्ष की प्राप्ति रूप वाच्य की सिद्धि प्रकट करने से 'गुणीभूत व्यंग्य' है। कारण के नहीं होने पर अर्थात् कामदेव के सभी आयुध सामर्थ्यहीन होते हुए भी विजयरूप कार्य की सिद्धि होने से यहाँ 'विभावना अलङ्कार' है।

भगवती की उपासना में साधक गण मन्त्रजप से पूर्व आत्मरक्षा के लिए कवच-स्तोत्र का पाठ भी करते हैं। यहाँ 'जगन्मङ्गल-कवच' का पाठ भी करना श्रेयस्कर है।

पौराणिक-दृष्टि—आचार्यपाद ने यहाँ कामदहन की कथा का सङ्केत भी किया है जो शिवपुराण आदि में प्रसिद्ध है।

भगवती ने पहले सती के रूप में दक्ष-प्रजापति के यहाँ यज्ञ में भगवान् शिव की स्थापना न होने से अपने पतिदेव का अपमान देखा। वह असह्य होने से योगाग्नि द्वारा अपने शरीर को भस्म कर दिया था। तदनन्तर पुनः वे देवों की प्रार्थना से हिमालय की पुत्री के रूप में भक्तों का कल्याण करने के लिए पार्वती के रूप में अवतरित हुई। यह कथा स्मरणीय है ॥6 ॥

: 7 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—भगवती त्रिपुरसुन्दरी निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों से उपास्य है। आचार्य भगवत्पाद माता के सगुणस्वरूप का वर्णन करते हुए भगवान् शिव की उत्साह-शक्ति के रूप में दर्शन की कामना करते हैं। इसमें करधनी, स्तनभार, मुखकान्ति, भुजाओं में धारण किए हुए आयुधों का वर्णन है—

श्रीविद्यारूप श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी जगदम्बा के स्वरूप एवं ध्यान-पूर्वक साक्षात्कार की प्रार्थना—

क्वणतकाञ्चीदामा करिकलभ-कुम्भस्तननता,
परिक्षीणा मध्ये परिणत-शरच्चन्द्र-वदना।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः,
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितु राहोपुरुषिका ।।7 ॥

अवतरणिका—जगदम्बा के आश्चर्यपूर्ण स्वरूप का वर्णन करते हुए आचार्यश्री उनके अद्भुत सगुण स्वरूप के दर्शन की कामना करते हैं।

सरलार्थ—माता श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी अनेक ब्रह्माण्डरूप घुँघरुओं से बनी, मधुर शब्द करती हुई करधनी ललित कटि में धारण किए हुए है ।, बाल हस्ती के गण्डस्थल के समान पुष्ट एवं अमृतपूर्ण स्तनों के भार से किञ्चित् नत अर्थात् विश्व का भरण-पोषण करने के अनुरूप स्तनभार धारणकर्त्री, मध्यभाग में नैसर्गिक सौन्दर्य से पूर्ण कृश तथा शरद्-पूर्णिमा के चन्द्र के समान शान्तिदायक मुखवाली है । चारों भुजाओं में धनुष, बाण, पाश एवं अङ्कुश धारण किए हुए वह भगवान् शङ्कर की उत्साह-शक्ति हमारे हृदयकमल में विराजमान हो ।

रहस्यार्थ—समयी-समयाचारी-साधकों के चतुर्विध ऐक्यानुसन्धान की महिमा से मणिपूरचक्र में भगवती का जैसा स्वरूप स्फुरित होता है, उस प्रकार के स्वरूप की प्रस्तुति इस पद्य से प्रस्तुत की गई है ।

यह चतुर्विध ऐक्य का अनुसन्धान शास्त्रकारों ने 1. आधारादि छः चक्रों का श्रीचक्र के साथ ऐक्य, 2. बिन्दुस्थान का बैन्दवस्थान-सहस्रार के साथ ऐक्य, 3. मल तथा आवरण-रहित जीव का शिव के साथ अथवा शक्ति के साथ ऐक्य और 4. श्रीयन्त्र और मन्त्र का ऐक्य बतलाया है अथवा 1. मातृका और मन्त्र का ऐक्य, 2. मन्त्र और चक्र का ऐक्य.3. चक्र तथा नित्याओं का ऐक्य और 4. नित्याओं का तिथियों से ऐक्य समझना चाहिए ।

इस प्रकार के ऐक्य के दो प्रकार श्रीगौडपादाचार्य ने सुभगोदय-स्तुति में व्यक्त किया है—

कला नादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं,
षडब्जं चाधारप्रभृतिकममीषां च मिलनम् ।
तदेवं षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनां,
चतुर्धैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम् ।।

और इसी पद्य से पहले षोढैक्य—छः प्रकार के ऐक्य का निर्देश इस प्रकार है—

कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे,
तयोर्नादे नैक्यं तदनुच कलायामपि तयोः ।
तयोर्बिन्दावैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे ।
तदेवं षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम् ।।

अर्थात् हे परशिवे ! शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्ति के लिए 1. कला में बिन्दु की एकता, 2. नाद में कला की तथा 3. नाद में बन्दु की एकता, 4. नाद के

साथ कला व बिन्दु दोनों की एकता, 5. कला में नाद-बिन्दु दोनों की एकता एवं 6. बिन्दु में नाद-कला दोनों की एकता इस प्रकार नाद, बिन्दु और कला इन तीनों की छः प्रकार की जो एकता की भावना है, यही समयमार्ग में भगवती की पूजा है।

वस्तुतः यह विषय श्रीचक्र में विद्यमान 5 शक्तिचक्र और चार शिवचक्रों का ज्ञान करके सुषुम्ना-मार्गरूप श्रीचक्र की अन्तर्भावनापूर्वक पूजा का विषय है। देह में श्रीचक्र को जानकर समयाचारी पूजा करते हैं। यह मोक्ष का मार्ग है। (यह विषय 'सुभगोदयस्तुति' में विस्तार से वर्णित है)।

ध्यान दो प्रकार का होता है—1. बाह्य और 2. आभ्यन्तर। इनमें बाह्य ध्यान बाह्य इन्द्रियों से गोचर और आभ्यन्तर मानसध्यान मन से ही ध्येय है। यहाँ ब्रह्मादि देवताओं द्वारा किए जानेवाले बाह्य ध्यान का वर्णन करते हुए श्रीमूर्ति के दर्शन की प्रार्थना की गई है।

यद्यपि परम प्रकृतिरूपिणी, अनेक प्रकार के आयुध धारण करनेवाली, नानावर्णी और अनेक चेष्टाओं वाली मूर्तियाँ हैं तथापि उन सब में मुख्य अविनाशिनी मूर्ति आगम, तन्त्र और सर्वलोक प्रसिद्ध जो है वही नहीं दिखाई दे तो सर्वविध ध्यान की रुचि रखनेवाले भक्तसाधक किस रूप का ध्यान करें? इस दृष्टि से सभी ध्यानरूपों में सर्वोत्कृष्ट ध्यान का स्वरूप इस पद्य से वर्णित है।

मन्त्रसङ्केत—इस पद्य में श्रीचक्रगत तृतीय 'सर्वसंक्षोभणचक्र' की चक्रेश्वरी 'त्रिपुरसुन्दरी' के मन्त्र 'ऐं क्लीं ह्सौः' अथवा 'ह्रीं क्लीं सौः' का उद्धार टीकाकार आनन्दगिरि ने बतलाया है। क्वणत्काञ्ची आदि पद से ऐं तथा ह्रीं बीजमन्त्र और करिकलभकुम्भ आदि पद से कामबीज उद्धृत है तथा मध्ये परिक्षीणा आदि पराबीज सौः के सूचक हैं। आचार्य ने यह बाला-मन्त्र (त्रितारी) गुप्तभाव से निरूपित किया है। गुप्तावतार बाबा मोतीलालजी ने इस पद्य के प्रथमाक्षर क्व को रहस्यमय और मोक्षप्रद कहा है। इस बीज के अनुष्ठान से आपत्ति-निवारण, सिद्धि-प्राप्ति और शत्रुजय भी प्राप्त होता है। वैसे भगवती के चारों आयुधों के बीज धनुष—स्वाहा ठः ठः, बाण—द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः, अङ्कुश—क्रों तथा पाश—ह्रीं बीज के सूचक हैं। इसी पद्य के पदों से वशीकरण बीज ब्लूं का उद्धार होता है। यथा—बाणान् में से 'ब्', करतल में से 'ल', पुरमथितुः में से 'उ' तथा पौष्पं में से बिन्दु का उद्धार करके संयुक्त रूप से 'ब्लूं' की उत्पत्ति हुई है।

यहाँ 'चन्द्र' का अर्थ अर्द्धमात्रा-बिन्दु है। बिन्द्वावरण द्वितीया का चन्द्र शिव तथा माता के मस्तक पर रहता है। बिन्द्वावरण का अर्थ है—जिसमें से

बीजमन्त्रों का विस्फुरण हो। तृतीयनेत्र का अर्थ है मूलाग्नि, लयात्मिका का पृथक्करण शक्ति।

श्रीमेहताजी के अनुसार इस पद्य का ध्यान क् एवं व अक्षरों के द्वारा होता है।

क—ध्यान—

जवा यावक सिन्दूरसदृसीं कामिनीं पराम्।
चतुभुजां त्रिनेत्रां च बाहुबल्ली विराजिताम्॥
कदम्बकोरकाकारस्तनयुग्मविराजिताम्।
रत्नकङ्कणकेयूरहारनूपुरभूषिताम्।
एवं ककारं ध्यात्वा तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
शङ्खकुन्दसमा कीर्तिर्मात्रा साक्षात् सरस्वती।
कुण्डली चाङ्कुशाकारा कोटिविद्युल्लताकृतिः।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशो मध्ये शून्यः सदाशिवः।
शून्यगर्भस्थिता काली कैवल्यपददायिनी।
अर्थश्च जायते देवि तथा धर्मश्च नान्यथा॥
ककारः सर्ववर्णानां मूलप्रकृतिरेव च।
कामिनी या महेशानि स्वयं प्रकृतिसुन्दरी।
माता सा सर्वदेवानां कैवल्यपददायिनी।
ऊर्ध्वकोणे स्थिता वामा ब्रह्मशक्तिरितीरिता॥
वामकोणे स्थिता ज्येष्ठा विष्णुशक्तिरितीरिता।
दक्षकोणे स्थिता शक्ती रौद्री संहाररूपिणी॥
ज्ञानात्मा सा तु चार्वङ्गी चतुःषष्ट्यात्मकं कुलम्।
इच्छाशक्तिर्भवेद् ब्रह्मा विष्णुश्च ज्ञानशक्तिमान्।
क्रियाशक्तिभवेद् रुद्रः सर्वप्रकृतिमूर्तिमान्।
आत्मविद्याशिवैस्तत्वैः पूर्णा मात्रा प्रतिष्ठिता॥
आसनं त्रिपुरा देव्याः ककारः पञ्चदैवतः।
ईश्वरो यस्तु देवेशि त्रिकोणे यस्तु संस्थितः॥
त्रिकोणमेतत्कथितं योनिमण्डलमुत्तमम्।
कैवल्यं प्रपदे भस्माः कामिनी सा प्रकीर्तिता॥
एषा सा कादिविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा॥

यन्त्र-सङ्केत—इस पद्य की आराधना करने के लिए एक चतुरस्र बनाकर बीच में क्लीं बीज लिखें।

यह स्वर्ण-पत्र पर लिखकर पूर्व की ओर मुख करके इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे तथा 45 दिन तक नित्य-पूजा करे । प्रतिदिन इस श्लोक का 1000 जप करे । पायस-क्षीरान्न का नैवेद्य लगाए। इस यन्त्र को सिद्ध करके मस्तक पर धारण करे । इससे शत्रु पर विजय मिलती है । केवल गन्ने के टुकड़ों का नैवेद्य भी लगा सकते हैं अथवा इस यन्त्र को 12 दिन तक प्रतिदिन 1000 की संख्या में स्वर्णपत्र पर अनार की कलम और काली स्याही से लिखे । इससे अपेक्षित वस्तु भी प्राप्त होती है । श्री मेहताजी ने त्रिकोणात्मक यन्त्र बनाकर बीच में 'ह्रीं' बीज लिखना बताया है । 'स्व' बीज का 1000 जप, जप-स्थान मूलाधार, होम रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से दशांश करें । मार्जन और तर्पण दशांश 100-100 । श्लोक पाठ 10 तथा श्लोकपाठ की आहुति 10 देने का निर्देश दिया है ।

पं. देवदत्त शास्त्रीजी ने 'त्रिपुरसुन्दरी साधना' में इस पद्य से 'ज्वालामालिनी मन्त्र' का उद्धार बतलाया है जो इस प्रकार है। ज्वालामालिनि जूं हूं ह्सौं ज्वालामालिनि गं ठं हुं हुं भ्रां भ्रां रः सौ अं आं ॐ क्लीं ह्सौं श्रीं ह्रीं क्षुं ॐ क्लीं रः तं थं दं दंन वं हैं । हूं हंसाः स्वाहा ।

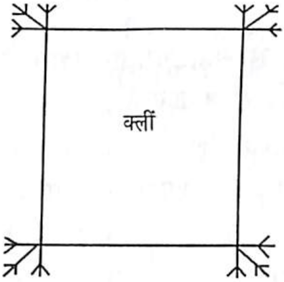

योगदृष्टि—भगवान् अपनी ही शक्ति से स्वयं बँध जाते हैं । पारमार्थिक दृष्टि से वे स्वयं पुरुष हैं और स्त्री भी वे ही हैं । आत्मतत्त्व में लिङ्गभेद का भाव नहीं है । इस प्रकार 'एकोऽहं बहु स्याम्' इस वेदवाणी के अनुसार ईश्वर स्वेच्छा से अनेक रूप धारण करते हैं। इस भावना से शिवशक्ति के एकत्व की उपासना करनी चाहिए ।

भगवती के वामभाग के नीचेवाले हाथ में पाश और ऊपरवाले हाथ में धनुष् है । दक्षिण भाग के नीचेवाले हाथ में अङ्कुश है तथा ऊपरवाले हाथ में 5 बाण हैं। ये भावनोपनिषद् के अनुसार—रागः पाशः—राग पाश है । मन इक्षुधनुः—विकारहित मन ईख का धनुष् है । द्वेषोङ्कुशः—द्वेष-क्रोध अङ्कुश है तथा शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से पाँच तन्मात्राएँ बाण हैं। तन्त्रराज आदि ग्रन्थों में भी इसी भाव की पुष्टि की गई है। ललितासहस्रनाम में—रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला । मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका' इत्यादि कहा गया है ।

यहाँ 'पुरमथितु' पद से 'पुरारि' शिव का स्मरण हुआ है। ये त्रिपुर-त्रिपुरासुर के द्वारा आत्मरक्षार्थ बनाए गए स्वर्ण, रजत, ताम्र-लोह आदि के पुरों का सूचक है। अन्य आचार्यों ने जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति रूप तीन अवस्थाओं—स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण देह; देवयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ आदि तीन कर्मकाण्डों का स्मरण माना है। भगवान् शिव ऐसे त्रित्व के शत्रु हैं। श्री लक्ष्मीधराचार्य का मत है कि भगवान् शिव त्रिपुरा के तीन बीजों का मन्थन करके नवनीत बनाते हैं, अत: वे पुरमथिता हैं। आत्मसाक्षात्कार के लिए भगवती की उपासना से उपर्युक्त विभिन्न त्रित्वों से मुक्ति प्राप्त होकर मोक्ष-प्राप्त होता है।

आचार्य भगवान् पाद ने इस पद्य से प्रार्थना की है कि मणिपूर से निकलकर हे माता ! आप हृदयकमल में विराजमान होवें।

साहित्य-सृष्टि—समान जातीय एवं समान श्रुतिक माधुर्यमूलक वर्णों का प्रयोग होने से यहाँ 'अनुप्रास अलङ्कार' है। शरीरावयवों का क्रमिक वर्णन होने से यहाँ उल्लेखालङ्कार भी है।

पौराणिक-दृष्टि—'पुरमथितु:' इस पद से यहाँ भगवान् शिव के द्वारा त्रिपुरासुर के वध का आख्यान पुराणों के वर्णन से ज्ञातव्य है।

भगवान् शिव अपने नि:स्पृह स्वभाव से निर्मल होते हुए भी परमेश्वरी के भर्ता होने से अहङ्कार शक्ति को प्राप्त हुए। तथा श्मशानादि अमंगलशील होते हुए भी चौदह भुवनों में पूज्य हुए। यह सब भगवती के साहचर्य से ही हुआ है। इस प्रकार श्रीमाता भगवान् शिव की अभिमानशक्ति है, यह व्यक्त किया गया है। शिव-शक्ति की एकरूपता सर्वविध ध्यानमण्डलों में सर्वोत्तम ध्यान इस पद्य से प्रकट किया गया है। भगवान् शिव महापुरुष हैं।

गोपालसुन्दरी टीकाकार ने भगवान् शिव को क्षुब्ध करनेवाली विष्णु की मोहिनीमूर्ति का स्मरण कराते हुए कहा है कि—

ऊर्ध्वाभ्यां मणिवंशवादनवरं मुद्रालसत्पुस्तकं,
पाशं चाङ्कुशमैक्षवं धनुरिषुं सम्यग्दधानं करै:।
गोपीगोपपरीवृत्तं सुरतरोर्मूले स्थितं हारिणं,
स्त्रीवेषं मणिभूषणोज्ज्वलममुं कृष्णं भजे सुन्दरम्॥

इससे भगवान् के गोपालसुन्दरी स्वरूप का वर्णन दिया है।

श्रीविद्या की उपासना में भगवती के मन्त्राक्षरों अथवा पदों को तत्तद् देवताओं के मन्त्रों में गुम्फित करके अन्य उपासना-विधान भी आगमों में वर्णित

हैं। यथा—गोपाल मन्त्र में सुन्दरी-श्रीविद्या के मन्त्र-बीजों के योग से 'गोपाल-सुन्दरी' की उपासना होती है। इसका विधान 'मेरुतन्त्र' में दर्शित है। हनुमानजी के मन्त्र के साथ हनुमत्सुन्दरी और नृसिंहमन्त्र के साथ नृसिंहसुन्दरी-मन्त्र बनने पर उपासना होती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने ऐसी उपासनाएँ की थीं।

: 8 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—पिछले पद्य में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान-स्वरूप वर्णित किया है। वह ध्यान कहाँ करना चाहिए? यह समझाने के लिए आचार्य चरण व्यक्त करते हुए भगवती के परम ऐश्वर्य का वर्णन तथा उनके अपूर्व स्वरूप का चिन्तन करने में भी माता की कृपा की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटी-परिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिव-पर्यङ्क निलयां,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥8॥

अवतरणिका—अनन्त ऐश्वर्यशालिनी जगज्जननी का स्मरण कुछ पुण्यशाली ही चिदानन्द-प्रवाहरूप-चितिशक्ति के स्वरूप में करते हैं, उनका जीवन धन्य है। यह भगवती की कृपा के बिना सम्भव नहीं है।

सरलार्थ—अमृत-समुद्र के मध्य, कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरे हुए मणि-द्वीप में कदम्बवृक्षों के उपवन के बीच चिन्तामणियों से बने गृह में, त्रिकोणाकृति शिवाकार मञ्च पर परमशिव के सिंहासन पर विराजमान श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी चिदानन्दलहरी हैं। ऐसे अपूर्व स्वरूप का भजन-स्मरण जगदम्बा की कृपा से कुछ भाग्यशाली ही करते हैं।

रहस्यार्थ—भगवत्पाद आचार्य समयमत के पारदर्शी हैं तथा समयाचार में प्रवीण हैं। अतः समयरूपा भगवती की स्तुति करते हैं। समयाचार आन्तरपूजा पद्धति है तथा कुलाचार बाह्यपूजा की अनुरक्ति है। श्रीचक्र का अपर नाम वियच्चक्र है। अतः वियत्—आकाश चक्र की पूजा आकाश में ही होनी चाहिए। यह पूजा 1. हृदयाकाश—चिदाकाश और 2. बाह्याकाश—

पीठ आदि में, अथवा भोजपत्र, वस्त्र, सुवर्ण रजत आदि के पत्र पर यन्त्र लिखकर आराधना करना—वृद्ध आचार्य इसी को कुलपूजा कहते हैं। प्रथम प्रकार में हृदयाकाश में श्रीचक्र की पूजा करना ही समयपूजा है। इस श्लोक द्वारा श्रीचक्र का सूचन किया गया है। श्रीचक्र में चार अधोमुख त्रिकोण हैं, वे शिवाकार मञ्च हैं तथा ऊर्ध्वमुख पाँच त्रिकोण शक्तिरूप हैं। इस चार अधोमुख शिवमञ्च के चार पाद (पाये) ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर हैं। इनके ऊपर सदाशिवरूप पर्यंक है। उसी पर्यङ्क पर भगवती त्रिपुरसुन्दरी विराजमान हैं। भैरवयामल, कामकेश्वरतन्त्र और बहुरूपाष्टक विद्या में—बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः। इत्यादि कथन से भगवती के मन्दिर का वर्णन हुआ है। भगवती की महापूजा में सर्वप्रथम 44 मन्दिर-मन्त्रों से पूजा की जाती है, जिसमें—'महाभोगपद्धति' में दर्शित नाम इस प्रकार हैं—

1. अमृताम्भोनिधये नमः
2. रत्नद्वीपाय नमः
3. नानावृक्षमहोद्यानाय नमः
4. कल्पवाटिकायै नमः।
5. सन्तानवाटिकायै नमः
6. हरिचन्दनवाटिकायै नमः
7. मन्दारवाटिकायै नमः
8. पारिजातवाटिकायै नमः
9. कदम्बवाटिकायै नमः
10. पुष्परागरत्नप्रकाशाय नमः
11. पद्मरागरत्नप्रकाराय नमः
12. गोमेधक रत्नप्रकाराय नमः
13. वज्ररत्न प्रकाराय नमः
14. वैदूर्यरत्न प्रकाराय नमः
15. इन्द्रनील रत्न प्रकाराय नमः
16. मुक्तारत्न प्रकाराय नमः
17. मरकतरत्न प्रकाराय नमः
18. विद्रुमरत्नप्राकाराय नमः
19. माणिक्यमण्डपाय नमः
20. सहस्रस्तम्भमण्डनाय नमः
21. अमृतवापिकायै नमः
22. आनन्दवापिकायै नमः
23. विमर्शवापिकायै नमः
24. बालातपोद्गाराय नमः
25. चन्द्रिकोद्गाराय नमः
26. महाशृंगारपरिधायै नमः
27. महापद्माटव्यै नमः
28. चिन्तामणिमयगृहराजाय नमः
29. पूर्वाम्नायमयपूर्वद्वाराय नमः
30. दक्षिणाम्नायमयदक्षिणद्वाराय नमः
31. पश्चिमाम्नायमयपश्चिमद्वाराय नमः
32. उत्तराम्नायमयोत्तरद्वाराय नमः
33. रत्नप्रदीपवलयाय नमः
34. मणिमयमहासिंहासनाय नमः
35. ब्रह्ममयैकमञ्चपादाय नमः
36. विष्णुमयैकमञ्चपादाय नमः
37. रुद्रमयैकमञ्चपादाय नमः
38. ईश्वरमयैकमञ्चपादाय नमः

39. सदाशिवमयैकमञ्चपादाय नमः
40. हंसतूलिका तल्पाय नमः
41. हंसतूलिका महोपधानाय नमः
42. कौसुम्भास्तरणाय नमः
43. महावितानकाय नमः
44. महामायायवनिकायै नमः

इन मन्त्रों के पहले ऐं ह्रीं श्रीं (त्रितारी) और यथासम्भव इष्ट मन्त्र को जोड़कर अक्षत एवं पुष्पों से स्थानों की भावना करते हुए पूजा की जाती है।

महर्षि दुर्वासा-विरचित 'ललितास्तवरत्नम्' में इन मन्दिर के अवयवों का वर्णन विस्तार से हुआ है।

भगवती का यह महाद्वीप दश आवरण वाले श्रीचक्र के आकार का है। यहाँ मणिद्वीप के चारों ओर अमृत का समुद्र है। वह समुद्र वायु के संघटन-योग से दिव्य तरङ्गोंवाला है। रत्नमयी दिव्य रेती उस समुद्र के किनारे फैली हुई है। मणिद्वीप में चार द्वार हैं। वहाँ अनेक सिद्ध पुरुषों का निवास-स्थान है। दर्शन के लिए आतुर दर्शनार्थियों के अनेक विमानों की वहीं भीड़ लगी रहती है। वहाँ के वृक्ष दिव्य मणियों के कल्पवृक्ष जैसे हैं। वहाँ अति सुन्दर वाटिकाएँ हैं। वसन्त वाटिका का माली है। सभी वृक्ष फल, पुष्प एवं पल्लवों से सुशोभित हैं। आनन्दमय दिव्य सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त है। पद्ममणि के समान हरी भूमि में अनेक सुन्दर अमृतजल के झरने मधुर कलरव से मन्द-मन्द बहते रहते हैं। ऐसे अनेक सुन्दर रसमय झरने मणिद्वीप की प्राकृतिक शोभा बढ़ाते हुए दर्शकों को महाशान्ति प्रदान करते हैं। उन झरनों के जाल का पान करने से ब्रह्मानन्द उद्बुद्ध होता है। शुक, मैना आदि पक्षी तत्त्व-विज्ञानमय चर्चारूप मधुर स्वरों से शब्द करते हैं। यह उत्तम वन सुगन्धपूर्ण, नीरोग पवन से पूर्ण आनन्दप्रद है। इस मणिद्वीप में कल्पवृक्ष का बगीचा है। कल्पवृक्ष की शाखाएँ सुवर्णमय कान्तिवाली हैं।

इस प्रकार के दिव्य मणिद्वीप की भावना पूजा के समय करनी चाहिए।

मन्त्र-सङ्केत—शिव तथा शक्ति की एकात्मता का भाव 'शिवो बिन्दुः शक्तिर्नादः'—शिव बिन्दुरूप हैं तथा शक्ति नादमयी हैं।

योगिराज श्री मेहताजी ने उपर्युक्त मणिद्वीप के साथ ही इस पद्य से 'क्लीं' बीज का उद्धार बतलाया है। चिदानन्द पद से ककार, लहरी पद से ल और ईं का ग्रहण हुआ है। अन्य मत से कलह्रीं का ग्रहण करके हादिविद्या का उद्धार भी माना गया है। कामकला की उपासना पर विशेष लक्ष्य दिया है।

श्री देवदत्तजी शास्त्री इस पद्य से त्रिपुरा-गायत्री का उद्धार बतलाते हैं। यथा 'ॐ ऐं त्रिपुरां देवीं विद्महे क्लीं कामेश्वरीं धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात् ।'

यन्त्र सङ्केत—इस पद्य की साधना के लिए लाल चन्दन के पटिये पर इस आकार का यन्त्र बनाकर 12 दिन तक उसकी लाल पुष्पों से पूजा करें तथा 'सुधासिन्धो' इत्यादि श्लोक की 200 आवृत्तियाँ करें। तदनन्तर यन्त्र को धारण करने से कारागार 'कैद' से मुक्ति मिलती है। इसकी साधना में काली मिर्च का नैवेद्य लगा दें।

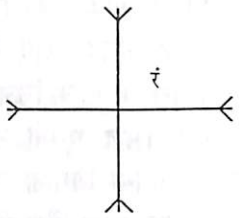

श्री मेहताजी के अनुसार इस श्लोक की साधना में त्रिकोणाकार यन्त्र बनाकर उसके बाहर-ऊपर, दोनों ओर तथा नीचे 'रं, यं लं और वं' बीज लिखकर सु स् + उ, अक्षरों का ध्यान मूलाधार में करके 1000 जप करे। रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और जौ से 100 बार हवन करे व मार्जन 10, तर्पण 10 और 10 बार श्लोकपाठ करके श्लोक से 10 आहुति प्रदान करे।

अन्य आचार्य ताम्रपत्र पर चन्दन की स्याही और अनार की कलम से यन्त्र लिखने का निर्देश करते हैं। अथवा उत्तर-पूर्व की ओर मुख करके स्वर्णपत्र पर यन्त्र लिखे और 45 दिन तक साधना करे। यन्त्र की पूजा दुर्गा-सहस्रनाम से की जाए। नैवेद्य में ओदन, दही, फलों का रस तथा औटाये हुए दूध का प्रयोग करे। यह जेल में गए हुए व्यक्ति को छुड़ाने तथा आकर्षण के लिए उपयोगी है।

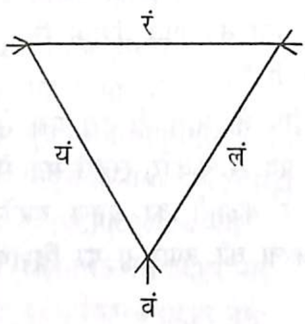

श्रीचक्र में नौ-नौ योनियों में अधःस्थित शिवात्मक योनिचतुष्क के ऊपर ऊर्ध्वस्थित शक्त्यात्मक पाँच योनियों के अधःप्रदेश के बिन्दु को सुधासिन्धु कहते हैं। इसके प्रथम अक्षर 'सु' बीजाक्षर का ध्यान स् और उ के रूप में इस प्रकार बतलाया है—

स्-ध्यान—

करीषभूषिताङ्गीं च साट्टहासां दिगम्बराम्।
अस्थिमाल्यामष्टभुजां वरदामम्बुजेक्षणाम्।।
नागेन्द्रहारभूषाढ्यां जटामुकुटमण्डिताम्।
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यं धर्मकामार्थमोक्षदाम्।।
एवं ध्यात्वा सकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
सकारं शृणु चार्वङ्गि शक्तिबीजं परात्परम्।।
कोटिविद्युल्लताकारं कुण्डलीमयसंवृतम्।
पञ्चदेवमयं देवि पञ्चप्राणात्मकं सदा।।
रजः सत्त्व तमोयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा।।

उ-ध्यान—

पीतवर्णां त्रिनयनां पीताम्बरधरां पराम्।
द्विभुजां जटिलां भीमां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।।
एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
उकारं परमेशानि अधः कुण्डलिनी स्वयम्।।
पीतचम्पकसङ्काशं पञ्चदेवमयं सदा।
पञ्चप्राणमयं देवि चतुर्वर्गप्रदायकम्।।

इन ध्यान पद्यों में अक्षरों की महिमा तथा उनमें स्थित भगवती के स्वरूप का निर्देश करते हुए कुण्डलिनी-शक्ति का रूप बतलाया है।

साहित्य-सृष्टि—इस पद्य के द्वारा आचार्य चरण ध्यान-प्रणाली का सूचन करते हैं। तदनुसार कदम्बवन की वाटिका में स्थित चिन्तामणि के भवन में पञ्चवक्त्र शिव के आकार के समान बने हुए सिंहासन पर अत्यन्त कल्याणमय आस्तरण में निवास करनेवाली चिदानन्दलहरी रूप भगवती विराजमान हैं। ऐसा ध्यान करने का उपदेश है। भक्तों को अभीष्ट फल देने वाली भगवती के मन्त्र का जप उपर्युक्त ध्यान करके करना चाहिए। वैसे इसमें वर्णित सुधा-सिन्धु आदि पद भगवती के शरीरावयवों के बोधक हैं। ऐसे अपूर्व महिमामय माता के स्वरूप का स्मरण, ध्यान और जप कुछ धन्य पुरुष ही करते हैं। 'भजन्ति' पद से यहाँ श्रीपीठ की अर्चना में प्रयोग्य चतुःषष्टि

उपचारों का भी निर्देश है। यह बहिर्ध्यान का सूचन है। उपमा तथा रूपक अलङ्कार पदयोजनाओं में निहित हैं।

योगदृष्टि—साधक का शरीर श्रीचक्र है। उसका आकार क्रमशः इस प्रकार ध्येय है—

अमृत-सागर—भूपुर-मूलाधार।

लोकदुर्गप्राकार—वृत्तत्रय—स्वाधिष्ठान।

कांस्यदुर्गप्राकार—षोडशदलपद्म—मणिपूर चक्र।

ताम्रदुर्गप्राकार—अष्टदलपद्म—अनाहत चक्र।

सीसकदुर्गप्राकार—चतुर्दशार—विशुद्ध चक्र।

रौप्यदुर्गप्राकार—बहिर्दशार आज्ञाचक्र का ऊर्ध्वभाग।

स्वर्णदुर्गप्राकार—अन्तर्दशार—आज्ञाचक्र का अधोभाग।

कल्पवृक्षवन—अष्टार—आज्ञाचक्रस्थ ऊर्ध्वभाग।

चिन्तामणिगृह—त्रिकोण—सहस्राररूप।

श्रीमहामायामहाशक्तिस्थान—बिन्दु-सहस्रार में।

यहाँ पद्य में प्रयुक्त शिवा पद से कुण्डलिनी शक्ति का अर्थ लिया गया है। यह शक्ति हृदयकमल पर स्थित सूर्यमण्डल का भेदन करके आच्छादित करके सूर्यमण्डल पर स्थित ब्रह्मद्वार को ढककर सहस्रदल कमल के अन्तर्वर्ती पत्रों पर स्थित चन्द्रमण्डल को डसती है—द्रवित करती है। इसीलिए कुण्डलिनी-कुलपोषित कहलाती है। यहाँ कुलमार्ग का अर्थ सुषुम्ना है। उसके मार्ग को छोड़कर यह कुण्डलिनी वहीं इन्दुमण्डल में स्थित होकर अमृत का वर्षण करती है। फिर 72 हजार नाड़ियों में प्रवर्षण करके पुनः स्वस्थान स्वाधिष्ठान में आकर सो जाती है। यह ध्यानयोग की प्रक्रिया इस पद्य में वर्णित है।

'क्वणत्काञ्ची' और 'सुधा-सिन्धोर्मध्ये' इन दोनों श्लोकों की सम्मिलित व्याख्या इसमें प्रस्तुत है। यहाँ प्रयुक्त 'चिदानन्दलहरी' पद से ही कुछ आचार्य 41 पद्यों के भाग को 'आनन्दलहरी' के रूप में सौन्दर्यलहरी का पूर्वभाग मानते हैं।

दृष्टि-पुराणों में श्रीपर्वत आदि पुण्य क्षेत्रों का वर्णन भगवती के शरीर के रूप में वर्णित है। यथा—

श्रीपर्वतः शिरःस्थाने केदारस्तु ललाटकः। वाराणसी महाप्राज्ञा

भ्रुवोर्घाणिस्य मध्यमे। कुरुक्षेत्रं कुचस्थाने प्रयागो हृत्सरोरुहे। चिदम्बरं तु हृन्यध्यमाधारः कमलालयः। इत्यादि।

: 9 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—उपासना के विभिन्न मार्गों में निर्दिष्ट योगमार्ग के अनुसार अन्तःस्वरूप कुण्डलिनी-क्रम से साधना का उद्घाटन करते हुए आचार्य चरण योगमार्गोक्त अन्तर्यामी स्वरूप की उपासना का वर्णन करते हैं—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।9॥

अवतरणिका—पूर्वोक्त पद्य संख्या 7 में श्रीदेवी के बाह्य स्वरूप की उपासना का वर्णन तथा पद्य संख्या 9 में सर्वव्यापी स्वरूप की उपासना का निर्देश करके आचार्यश्री अब श्रीदेवी के अन्तःस्वरूप कुण्डलिनी का वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—हे देवी ! आप मूलाधार में पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व को, मणिपूर में अग्नितत्त्व को, जिसकी स्थिति स्वाधिष्ठान में है, हृदय-अनाहत में वायुतत्त्व को, तथा ऊपर विशुद्ध-चक्र में आकाशतत्त्व को और भ्रूमध्य-आज्ञाचक्र में मनस्तत्त्व को—इस प्रकार समस्त षट्चक्ररूप कुल मार्ग का भेदन करके सहस्रदल-कमल में अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती हैं। अर्थात् मूलाधार में पृथ्वीचक्र को भेदकर, उसके ऊपर मणिपूर चक्र में कामशक्ति के स्वाधिष्ठान (अग्नि को) भेदकर, उसके ऊपर अनाहत चक्र में वायु को भेदकर उसके ऊपर विशुद्ध चक्र में आकाश-तत्त्व को भेदकर उसके ऊपर ज्ञान चक्र में मन को भेदकर शरीरस्थ समस्त कुल पथ को भेदकर सहस्रदल कमल में भगवान् शिव के साथ विहार करती हैं।

विशेष-चिन्तन—श्लोक संख्या 9 और 10 में षड्चक्रों के निरूपण के क्रम में कुण्डलिनी शक्ति के आरोह तथा अवरोह क्रम में आचार्य भगवत्पाद ने मूलाधार के पश्चात् मणिपूर में स्वाधिष्ठान का वर्णन किया

है। आचार्य ने चक्रों के क्रम में तो परिवर्तन किया है; किन्तु तत्त्वों का परिवर्तन नहीं हुआ है। (इस विषय पर टीकाकार आचार्यों ने विभिन्न विचार व्यक्त किए है)। यथा— 1. आचार्य श्री लक्ष्मीधर का मत है कि आकाशादि तत्त्वों की उत्पत्ति के क्रम का अवलम्बन करके यहाँ पहले मणिपूर चक्र का वर्णन किया गया है। वे इसकी पुष्टि में 'तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं' इस 36वें पद्य में कहते हैं कि स्वाधिष्ठान के आगे अग्निमण्डल है। अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमण्डलों की 360 रश्मियाँ-आधार-चक्र से आज्ञाचक्र पर्यन्त ही विचरण करती हैं। उन्हीं का यहाँ वर्णन है। 2. जगद्-विजयी रामकवि ने भी इस विषय की सङ्गति लगाई है। यथा—मणिपूर शब्द यहाँ नाभिचक्र के लिए है। तथापि परस्पर सामीप्य होने से मणिपूर के स्थान में स्वाधिष्ठान और स्वाधिष्ठान के स्थान में मणिपूर का व्यवहार हो गया है, जैसे मधु-माधव महीनों का परस्पर व्यवहार होता है। यद्यपि यह आचार्य का प्रयोग अप्रसिद्ध है तथापि प्रामाणिक चूड़ामणि भगवान् शङ्कराचार्य के इस निर्देश को प्रमाण ही मानना चाहिए। 3. श्री नरसिंह ठक्कुर ने भी अपनी टीका में लिखा है कि 'शान्तनवाचार्य के मतानुसार स्वाधिष्ठान और मणिपूर की 'संज्ञा-व्यत्यय' है। अर्थात् स्वाधिष्ठान को मणिपूर की और मणिपूर को स्वाधिष्ठान की संज्ञा दी गई है। अर्थात् स्वाधिष्ठान इस संज्ञा-व्यत्यय का आधार शाम्भवमत के अनुसार माना गया है। 4. 'अरुणामोदिनीकार' का कथन है कि 'यह श्रौतसूत्रक्रम का अनुसरण है। श्रुतिसूत्र में 'आत्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी'; 'आपो वा अग्नेरायतनम् अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रं पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशाः' इत्यादि। उनका यह भी कथन है कि अग्रिम 'तवाज्ञाचक्रस्थ', इत्यादि छः पद्यों में आचार्य ने इसी श्रौतक्रम का अवलम्बन लेकर आत्मा, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी-तत्त्वात्मक आज्ञाचक्र आदि कमलों का ध्यान बतलाया है। और 'मनस्त्वं व्योम त्वम्' तथा 'नरं वर्षीयांसम्' एवं क्षितौ षट्पञ्चाशत्' इत्यादि पद्यों के द्वारा भी इसी श्रौतक्रम का निर्वाह किया है। आचार्य चरण की दृष्टि में स्मृतिक्रम से श्रौतक्रम की प्रबलता है। अतः यह क्रम ध्येय है। ये रामकवि के विचार को भी चिन्त्य बतलाते हैं। 5. श्री आनन्दगिरि ने इसका समाधान दो प्रकार से किया

है—(क) यहाँ मणिपूर चक्र का ग्रहण छन्द के अनुरोध से नहीं करते हुए स्वाधिष्ठान का प्रयोग हुआ है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'कुल पथ के क्रम का त्याग करना अनुचित है' तो यह सत्य है; किन्तु अपने स्वामी के प्रति मन के परतन्त्र होने से स्वाधीनपतिका पतिशुश्रूषारूप कुलाचार का परित्याग करनेवाली को दोष नहीं माना जाता है। इसके अनुसार यह कथन हुआ हो कि 'ऐसा प्रतीत होता है। देहली का अतिक्रमण करके भावरूप कुलपथ का अतिक्रमण कर 'अभिसारन्यास' से अपने स्वामी के पास पहुँचना कोई दोष नहीं है। 6. अन्य टीकाकारों में आनन्दलहरी के टीकाकार शैवकल्प के अनुसार मणिपूर और स्वाधिष्ठान का वैपरीत्य मानते हैं। जबकि अन्य सभी अन्योन्य-सामीप्य के कारण अन्योन्य पदवाच्यता मानते हैं। 7. स्वामी श्री विष्णुतीर्थ जी ने लिखा है कि 'शङ्कर भगवत्पाद ने इन दो चक्रों के स्थानों का सङ्केत नहीं किया है, अपितु नामक्रम से यही प्रतीत होता है कि उनको उपस्थ वाले चक्र का नाम मणिपूर और नाभि के चक्र का नाम स्वाधिष्ठान अभिमत था। किन्तु हमारी राय में ऐसा नहीं है, केवल तत्त्वों के वेध क्रम में यहाँ अन्तर है। समयाचार के मतानुसार उपस्थ वाले चक्र का वेध करना उचित नहीं समझा गया, क्योंकि इस चक्र के वेध से वासना की वृद्धि होकर वज्रौली आदि क्रियाओं द्वारा ऊर्ध्वरेता होने की सिद्धि प्राप्त की जाती है जो कौलाचार को अभीष्ट है, समयाचार को नहीं। इसलिए यहाँ समयाचार के अनुसार वेधक्रम दिया गया है। यह क्रम इस प्रकार है—

मूलाधार के वेध से पृथिवीतत्त्व का और साथ ही वहीं जलतत्त्व का भी वेध किया जाना चाहिए। अपि शब्द का कं=जलं का प्रयोग भी इसी ओर सङ्केत करता है, नहीं तो अपि शब्द वृथा-सा दिखता है; फिर स्वाधिष्ठान को छोड़कर नाभिवाले मणिपूर में अग्नि का वेध किया जाता है। परन्तु तत्त्व की स्थिति योनिस्थान में होने से स्वाधिष्ठान में दिखाई गई है अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र में नीचे अग्नि और ऊपर जल दोनों का सन्धिस्थान है क्योंकि योनिस्थान मूलाधार और स्वाधिष्ठान के मध्य भाग में स्थित है। इसलिए अग्नि के प्रदीप्त होने पर मूलाधारस्थ पृथिवी और स्वाधिष्ठानस्थ जल दोनों का वेध मूलाधार के वेध के साथ हो जाएगा।"

उन्होंने अपने उपर्युक्त मत की पुष्टि 'हंसोपनिषद्' से बतलाई है। वहाँ

गुदाचक्र से वायु का उत्थान करके मणिपूर-चक्र में ले जाने का विधान किया गया है। तथा स्वाधिष्ठान चक्र का वेध न करके उसकी तीन प्रदक्षिणा करने की आज्ञा दी है। (द्रष्टव्य, सौ. ल. हिन्दी टीका- पृ 94-97)

हंसोपनिषद् में कहा गया है कि "गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं च गत्वाऽनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान् निरुद्ध्याज्ञामनुध्यायन् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽहमित्येवं सर्वदा ध्यायेत्।"

अर्थात् गुदाद्वार को रोककर, आधारचक्र से वायु को उठाकर स्वाधिष्ठान की तीन बार परिक्रमा करके मणिपूर में आकर अनाहत चक्र का अतिक्रमण करके विशुद्धचक्र में प्राणों का विरोध करे और आज्ञाचक्र में ध्यान करता हुआ पुनः ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करता हुआ, 'मैं तीन मात्रा से युक्त ॐ हूँ।' ऐसा सदा ध्यान करे। अर्थात् मैं जाग्रदवस्था में वैश्वानर अकार, स्वप्नावस्था में तैजस उकार, सुषुप्ति-अवस्था में प्राज्ञ मकार हूँ।' इस प्रकार सदा ध्यान करता हुआ शुद्ध स्फटिक सदृश नाद का आधारचक्र से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त ध्यान करना चाहिए।

बिन्दु और बीज के योग से नाद की उत्पत्ति होती है। बिन्दु शिवात्मक है और बीज शक्त्यात्मक है। इनके समवाय से नाद होता है। ऐसा आगमों में कहा गया है।

इस प्रकार के गम्भीर विचारों से पं. स्वामी विष्णुतीर्थ जी ने इस पद्य की उलझनों का समाधान दिया है।

योगिराज श्री मोतीलाल जी मेहता ने विविध विचारों को पहचान कर लिखा है " 'सम्भव है कि यह मतान्तर हो, इस प्रकार यह शरीर के कुल-योगानुभव से विपरीत है। अतः वे इस मत को मान्य नहीं करते हैं।'

वस्तुतः यह विषय गुरु-परम्परा से ही जाना जा सकता है।

8. डिण्डिम भाष्य के अनुसार यहाँ मूलाधार चक्र के पश्चात् मणिपूर चक्र का उल्लेख नहीं हुआ है। इस पर प्रश्न किया है कि इस क्रम से मूलमन्त्राक्षर जनित देवताओं की पूजा नहीं हो सकेगी और इस आशङ्का का निरसन करते हुए कहा गया है कि यहाँ सहस्रार मूलाधारादि में सर्वत्र लक्षित होता है। 'हस्रेण सह वर्तते' इस व्युत्पत्ति के अनुसार हं बीजरूप महादेव को द्रवित करते हैं अर्थात् 36 तत्त्वरूप विद्याक्षरों का मूलाधार आदि में 6, और

शेष कल्पेश्वरादि देवताओं की पूजा करनी चाहिए। इनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

मूलाधार महीचक्र में—कं कल्पेश्वराय नमः । अं अनुगम्यम्बायै नमः । अं अनुग्रहेश्वराय नमः । इं इदङ्गमदनाथाय नमः । ईं ईड्यम्बायै नमः । स्वाधिष्ठाने ललिताम्बायै नमः । हं हतिगनाथाय नमः । रं रेचकनाथाय नमः । इं इंबम्बायै नमः । मं महः पितृनाथाय नमः । **मणिपूर में—**हं हरिण्यम्बायै नमः । अं अन्तःकरणनाथायै नमः । सं सारसाम्बायै नमः । हं हरनाथाय नमः । रं रतिनाथाय नमः । **आज्ञाचक्र में**—ईं ईड्येतरनाथाय नमः । कं कनकदाभ्रनाथाय नमः । मं मदनास्वादननाथाय नमः । सं सहादनाथाय नमः । अं अवलम्बनाथाय नमः । अं अम्बुगणनाथाय नमः । **विशुद्ध चक्र में**—लं लमरेप्युनाथाय नमः । अं अवकाशनाथाय नमः । हं हठनाथाय नमः । रं रटछर्दिनाथाय नमः । हं (हति) हर्यम्बायै नमः । मं महाम्बायै नमः । **ब्रह्मरन्ध्रोपरि कुलस्थान में**—षट्कोण पर सर्वतत्त्व कमल की भावना करके—सर्वशक्तितत्त्वनाथायै नमः । श्रीललितामहाभट्टारिकायै नमः ।

इस प्रकार यह **मन्त्रावरण देवतापूजन नामक** अन्तर्माण प्रकाशित है । इसका शेष चक्रावरण देवतापूजन नामक अन्तर्माग 'क्षितौ षट्पञ्चाशत्" इत्यादि 14वें पद्य में स्पष्ट करेंगे ।

आचार्यश्री ने यहाँ पद्य में कहा है कि—भगवती की परमशक्ति चित्स्पन्दभाव में विश्वसृष्टि की कल्पना करके षट्चक्रवेध भाव में सूक्ष्मतत्त्वों के वेध द्वारा स्थूल पञ्चतत्त्वों में 'पञ्चीकरण' करती है । यथा—**मूलाधार में** भूतत्त्व पीतवर्ण, **स्वाधिष्ठान में** जलतत्त्व श्वेतवर्ण, **मणिपूर में** अग्नितत्त्व रक्तवर्ण, **अनाहत चक्र में** अग्नि-वायु मिश्रित तत्त्व गुलाबी वर्ण, **विशुद्ध चक्र में** वायुतत्त्व-धूम्रवर्ण तथा **आज्ञाचक्र में** आकाशतत्त्व इन्द्रधनुर्वर्ण। इस प्रकार कुलपथ को भेद कर पराशक्तिरूपा भगवती **सहस्त्रारपद्म** में अपने पति के साथ गुप्त विहार करती है । यहाँ पति से तात्पर्य—'आधिकृत-चैतन्य शिव' है ।

यहाँ आज्ञाचक्र में स्थित मनस्तत्व के साथ एकादश इन्द्रियसमूह का संग्रह हुआ है । इस प्रकार कुल 21 तत्त्वों का प्रतिपादन है तथा 'पत्या सह विहरसि' इस कथन से चार तत्त्वों का सूचन किया है । शाक्तागम में कुल 36 तत्व मान्य हैं । ये तत्त्व हैं—1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. आकाश, 6. गन्ध, 7; रस, 8. रूप, 9. साक्षी, 10. शब्द, 11. नासिका, 12. जिह्वा, 13. चक्षु,

14. त्वचा, 15. कर्ण, 16. वाणी, 17. हस्त, 18. पाद, 19. वायु, 20. उपस्थ और मन। मन के आगे 22. बुद्धि, 23. अहङ्कार, 24. प्रकृति, 25. चित् (पुरुष), 26. कला, 27. अविद्या, 28. विद्या, 29. राग, 30. नियति, 31. माया, 32. शिव, 33.शक्ति, 34. सदाशिव, 35. ईश्वर और 36. शुद्ध विद्या। ऐसे 36 तत्त्व हैं।

महापूजा में तत्त्वशोधन के मन्त्रों में इन्हीं तत्त्वों को, आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व और सर्वतत्त्व में विभाजित करके तत्त्व-शोधन होता है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी की 'अन्त:पूजा का प्रचार' अथवा कुण्डलिनी योग का प्रकार यहाँ तथा पद्य-संख्या 8 से 10 तक वर्णित है।

मन्त्रसङ्केत—उपर्युक्त तत्त्वों में प्रमुख पाँच तत्त्वों के बीज इस प्रकार हैं—1. आकाशबीज हं, 2. वायुबीज-यं, 3. अग्निबीज-रं, 4. जलबीज-वं तथा 4. भूबीज-लं। तथा मनोबीज-मं, बुद्धिबीज षं, शक्तिबीज-सं, और चिद्बीज हं। शिवबीज, प्राणबीज। तथा जीवबीजादि-स्वर। कुलपथ में 21 बीजों का पृथ्वी से मनपर्यन्त तत्त्वों का भेदन होता है।

तत्त्वबीजों का चक्रन्यास इस प्रकार है—

श्रीचक्राङ्ग	**तत्त्व**	**चक्र**	**तत्त्वबीज**
त्रिकोण	आकाश	आज्ञा	हं
अष्टकोण	वायु	विशुद्ध	यं
दशारद्वय	अग्नि + वायु	हृदय	य्रं-रं = य्रं
चतुर्दशार	अग्नि	नाभि	रं
अष्टदलपद्म	जल	स्वाधिष्ठान	वं
षोडशदल	भू	मूलाधार	लं

श्री योगिराज मेहताजी के अनुसार इस पद्य से आराधना करते समय 'म' बीज का ध्यान करना चाहिए जिसमें भगवती का ध्यान होता है। यथा—

म-ध्यान—

कृष्णां दशभुजां भीमां पीतलोहितलोचनाम्।
कृष्णाम्बरधरां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदाम्।।
एवं ध्यात्वा मन्दारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
मकारं शृणु चार्वङ्गि स्वयं परमकुण्डलिनी।
तरुणादित्य सङ्काशं चतुर्वर्गप्रदायकम्।।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं तथा।

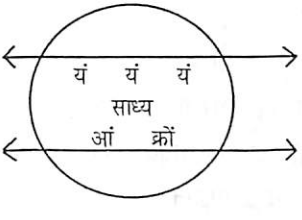

म-कार का जप 10 बार करें। जपस्थान मूलाधार है। लालपुष्प, बिल्व और तिलत्रय से दशांश हवन 100 बार अथवा 10 मार्जन, 10 तर्पण, 10 श्लोक पाठ-आहुति 1।

मन्त्रसङ्केत—इस पद्य की साधना में पूजा के लिए यन्त्र की आकृति इस प्रकार बनाएँ—

(1) इस यन्त्राकृति को सुवर्ण पत्र पर बनाकर प्राण-प्रतिष्ठा करें और दस दिनों तक पूजा करके प्रतिदिन 1000 श्लोक का जप करें।

(2) अथवा गन्ध से लिखकर 45 दिनों तक पूजन करके प्रतिदिन 1000 बार श्लोक का जप करें। दूध की खीर, पायस का नैवेद्य लगाए। इससे देशान्तर में गया हुआ शीघ्र ही वापस आ जाता है।

(3) इससे पञ्चभूतजय और पर्यावरण पर विजय भी प्राप्त होती है। साध्य के स्थान पर फल के कार्य का उल्लेख करना चाहिए। श्री मेहताजी ने इस पद्य का पूजा-यन्त्र त्रिकोणाकार अधोमुख बनाया है, जिसमें ऊपर रं दक्षिण पार्श्व में यं और वामपार्श्व में लं बीज लिखें।

: 10 :

प्रसङ्ग संङ्गति—पूर्वपद्य में ध्यान-प्रणाली का उपदेश करके योगशास्त्र प्रसिद्ध कुण्डलिनी के रूप में भगवती की स्तुति में पति के संग विहार का वर्णन किया गया। अब विहार के पश्चात् होने वाले नृत्य का वर्णन करते हैं। इसमें भगवती के द्वारा साधक के शरीररूप ब्रह्माण्ड के परिपालनादि रूप लीला का वर्णन है तथा यह पद्य पूजांगरूप कुण्डलिनी-उत्थान का प्रकाशक है—

सुधा-धारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय-महसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजग-निभमध्युष्ट-वलयं,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ।।10 ॥

अवतरणिका—जगदम्बा कुण्डलिनीरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी के

चरण-युगलों से विगलित अमृतवर्षण से साधक के पिण्ड का सिञ्चन करके पुनः अपने मूल-स्थान कुलकुण्ड में पूर्ववत् शयन-विराम करती है। यह लोकोपकार के लिए भगवती की लीला है। इसका वर्णन करते हुए करते हैं—

सरलार्थ—हे माता! आपके दोनों चरणों से गिरती हुई अमृत की धारावृष्टि से आप देहस्थित सभी नाड़ियों को और उनके माध्यम से देह को तृप्त करती हैं, उनका पोषण करती हैं तथा पुनः चन्द्रमण्डल षट्चक्रमार्ग से नीचे उतरकर अपने पूर्वस्थान में आती हैं। और वहीं स्वयं को सर्प के समान कुण्डल रूप साढ़े तीन वलय बनाकर आधारचक्रस्थ छिद्र में शयन करती हैं। यहाँ कुण्डलिनी का अवरोह-क्रम वर्णित है।

रहस्यार्थ—विश्वजननी भगवती कुलकुण्ड की अन्तर्गुहा में जब विश्राम करती हैं तब निजानन्द भाव में एकाग्र होकर स्वात्मानन्दरसाम्नाय के स्वाद में मग्न हो जाती हैं। उस समय भी माता के श्रीचरण सुधा की तीव्र वर्षा से प्रपञ्च को सींचते हैं। अर्थात् विश्राम में भी श्री भगवती विश्व का कल्याण करती हैं। विश्रामकाल में विश्व के त्रिनाड़ी वलय में जिस प्रकार जीवदेह निद्राकाल में नाड़ियों में रक्तसञ्चार होता रहता है वैसे ही कुण्डलिनीरूप माता का सञ्चार होता रहता है।

इन 9 तथा 10 संख्या वाले पद्यों से 'कुण्डलिनी-रहस्य-सोपान' का वर्णन हुआ है। नौवें पद्य में सोपान की 'उन्नेय-भूमिका' वर्णित है— कुण्डलिनी शक्ति का जाग्रत होकर मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त सूक्ष्म कुण्डलिनी का जागृत होकर चढ़ना—उन्तये भूमिका है। सुषुम्ना में व्याप्त होकर पुनः कुलकुण्ड में—मूलाधार चक्र के ऊपर वापस आकर सार्धत्रयवलयाकार में कुण्डलिनी का सो जाना अन्वयभूमिका—प्रत्यावृत्ति भूमिका है।

यह सब चक्रलेखन के परिज्ञान के बिना समझ पाना कठिन है, अतः चक्रलेखन का प्रकार भी आचार्यों ने यहाँ प्रदर्शित किया है।

चक्रलेखन के दो प्रकार हैं—1. सृष्टिक्रम से तथा 2. संहारक्रम से। तथापि नौ योनि का परिज्ञान कराने के लिए **संहारक्रम** से पहले वृत्त बनाकर उसके मध्य में नौ रेखाएँ लिखें। पश्चिम रेखा के अन्त्य भागों से त्रिकोण को बनाकर उन रेखाओं में छठी रेखा से उनका संयोजन करें। इसी प्रकार पूर्व की रेखाओं के अन्त्य भागों से त्रिकोण उत्पन्न करके अपनी रेखा से सातवीं रेखा को मिलाएँ। पश्चिम की द्वितीय रेखा के अन्तिम भागों से त्रिकोण उत्पादित करके

आठवीं रेखा से जोड़ें। पूर्व की द्वितीय रेखा के दोनों छोरों से त्रिकोण उत्पादित करके पूर्ववत् आठवीं रेखा से जोड़ें। वहां से पूर्व और पश्चिम की रेखाओं के दोनों प्रान्त भागों से षट्कोण बनाएँ। फिर षट्कोण के मध्य में स्थित छोटी तीन रेखाओं में पश्चिम की रेखा के अन्य किनारों से त्रिकोण उत्पादित कर पूर्ववत् पाँचवीं रेखा से संयुक्त करें। इस प्रकार पूर्व की रेखाओं से त्रिकोण उत्पादित कर पूर्ववत् तीसरी रेखा से संयुक्त करें। इस प्रकार 24 मर्म और 24 सन्धियाँ और नौ योनियों वाला श्रीचक्र बनता है। यह कौलमत का रहस्य है।

सृष्टिक्रम 'समयमार्ग' है, उसमें पहले त्रिकोण बनाकर मध्य में बिन्दु लिखें। बिन्दु के ऊपर त्रिकोण का भेदन करके एक दूसरा त्रिकोण बनाएं। फिर प्रथम त्रिकोण के अग्रभाग से अन्य त्रिकोण पश्चिमाभिमुख बनाएं। इस प्रकार अष्टकोणचक्र बन जाएगा। इसी से दशार बनाएं। यथा—अष्टकोण की पूर्व और पश्चिम की रेखाओं के प्रान्त भागों से षट्कोण निकालें। तथा विदिशाओं के मर्मस्थानों से चार-चार त्रिकोणों को उत्पन्न कर अष्टकोणगत योनि के ऊपर दक्षिण-उत्तर की आयत रेखाओं को ईशान कोण के त्रिकोणों से जोड़ें। इसी प्रकार पश्चिम से भी जोड़ें। इससे दशार बनता है। इसी दशार से पुनः दूसरा दशार उसी पूर्वोक्त पद्धति से उत्पादित करें। उसी दशार से चतुर्दशार निकालें। यथा—प्रथम दशार की पूर्व-पश्चिम की रेखाओं के छोर से षट्कोण निकालें, षट्कोणगत चार मर्मस्थानों के चार त्रिकोण निकालें। वहाँ के ऊपर वाले चार मर्मस्थानों से दशारन्याय के अनुसार चार त्रिकोण निकालकर पूर्व और पश्चिम की रेखाएँ मिलाएँ। इस प्रकार 43 त्रिकोण, 24 सन्धियाँ और 24 मर्म बनते हैं। यह समयमत का रहस्य है। इस मत के श्री चक्र में त्रिकोण ऊर्ध्वमुख लिखना चाहिए। कौलमत में त्रिकोण के मध्य में बिन्दु रहता है। समयमत में चतुष्कोण के मध्य में बिन्दु रहता है। वैसे कौलमत में कोणसंख्या नहीं है। वह नौ त्रिकोणात्मक होता है। वहाँ नौत्रिकोणों के मेल से मर्म और सन्धियाँ उत्पन्न होती हैं। यह बड़ा रहस्य है। दोनों चक्रों में इससे ऊपर अष्टदल पद्म, तत्पश्चात् षोडशदल पद्म, तदनन्तर मेखलात्रय, फिर चतुर्द्वारयुक्त भूपुरचक्र होते हैं। यह विधि आचार्य श्री लक्ष्मीधर ने अपनी टीका में बतलाई है।

श्रीचक्र के 1. मेरु प्रस्तार, 2. कैलास प्रस्तार और 3. भू-प्रस्तार ऐसे तीन प्रस्तार होते हैं। मेरु प्रस्तार 16 नित्याओं के तादात्म्य वाला है। कैलास प्रस्तार मातृका तादात्म्य वाला है और भू-प्रस्तार वशिनी आदि के तादात्म्य वाला है।

(यहाँ श्रीलक्ष्मीधराचार्य ने तैत्तिरीय आरण्यक श्रुति के मन्त्रांशों द्वारा पृश्नि-मुनियों के संवाद का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए श्रीचक्र की उपासना के ज्ञान को विस्तार से समझाया है। और अन्त में पृश्नियों के परस्पर कथन से विद्यानुष्ठान के प्रति—'उत्तिष्ठत मा स्वप्त, अग्निमिच्छध्वं भारताः। राज्ञः सोमस्य तृप्तासः। सूर्येण सयुजोषसः।' इस मन्त्र के द्वारा ज्योतिरूप चक्रविद्या में तत्पर होने का आह्वान किया है। चक्रविद्या की उपासना का फल भी यहाँ बतलाया गया है।

(यह विषय हमने 'कुण्डलिनी-साधना' के प्रसङ्ग पर विस्तार से लिखा है)।

मन्त्र-सङ्केत—श्रीलक्ष्मीधराचार्य इस पद्य में मादन-प्रयोग का सूचन करते हैं। इसका आधार सनत्कुमारसंहिता बतलाया है। प्रयोग की विधि में—जिस स्त्री पर यह प्रयोग करना हो उसके मुख का ध्यान करके उसके नीचे दोनों स्तन और योनि में कामबीज का ध्यान करते हुए उसके स्वरूप में अपने तादात्म्य का चिन्तन करें। यहाँ 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः' इन पाँच बीजों का चिन्तन होता है। रुद्रयामल, चतुःशती एवं अन्य अनेक स्तुतियों में इस पञ्चबाण-विद्या की महिमा वर्णित है।

श्री आनन्दगिरि ने इस पद्य में कामेश्वरी-नित्या के मन्त्र का उद्धार बताया है। मन्त्र है—'ऐं क्लीं ह्सौः स्क्लों नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः' अथवा साम्प्रदायिक मन्त्र—'अं ऐं क्लीं सकल ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः'। एकाक्षर कामकलामन्त्र का उद्धार भी इसमें ज्ञानसुधा के अनुसार बतलाया है। यहीं सारस्वत बीज ईं का भी प्रतिपादन आचार्यगण करते हैं।

श्री बाबाजी के अनुसार इस पद्य की आराधना में **न** अक्षर का ध्यान इस प्रकार है—

दलिताञ्जनवर्णाभां ललज्जिह्वां सुलोचनाम्।
चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दनचर्चिताम्॥
कृष्णाम्बरपरीधानामीषद्हास्यमुखीं सदा।
एवं ध्यात्वा नकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
नकारं शृणु चार्वङ्गि रक्तविद्युल्लताकृतिः।
पञ्चदेवमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली।
त्रिगुणा शक्तिसंयुक्तं हृदि भावय पार्वति॥

बीजाक्षर **न**। जपसंख्या 1000, जपस्थान मूलाधार। हवन रक्तपुष्प।

बिल्व, तिल और यवों से 100 अथवा 10। मार्जन 10। तर्पण 10। श्लोक पाठ 10। श्लोकपाठाहुति 1।

पूजन-यन्त्र

सीसे के पतरे पर यन्त्र बनाकर प्रतिष्ठापूर्वक 6 दिन पूजन करें और चावल का नैवेद्य लगाएं। श्लोक का जप 1000 बार करें। यन्त्र को गले में धारण करें तो वशीकरण होता है।

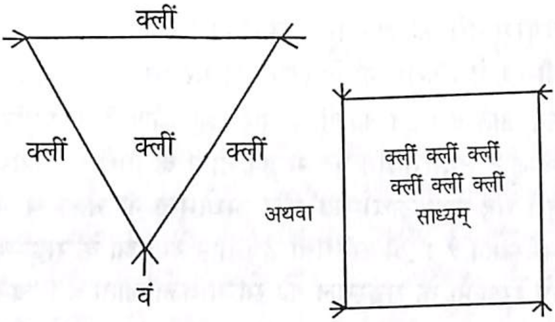

: 11 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—पूर्वोक्त पद्य में चन्द्रमण्डलात्मक श्रीचक्र है, ऐसा कहा गया। अब उस श्रीचक्र के स्वरूप का उपदेश करते हैं। शिवाकार मञ्च का जो निरूपण पहले हुआ है, उसी—श्रीचक्र का निरूपण तथा बहिर्याग का सङ्केत अग्रिम पद्य से किया जा रहा है—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिव-युवतिभिः पञ्चभिरपि,
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल-प्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदल - कलाश्र - त्रिवलय—
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ।।11 ।।

अवतरणिका—अद्वैतभावापन्न शिव-शक्तिस्वरूप श्रीललितामहात्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिररूप श्रीचक्र का निरूपण करते हुए आचार्यप्रवर बहिर्याग-साधना हेतु उसका अवयव-सहित वर्णन करते हैं—

सरलार्थ—हे माता त्रिपुरसुन्दरी ! चार ऊर्ध्वमुख शिव-त्रिकोण तथा पाँच अधोमुख शक्ति-त्रिकोण, मध्यस्थ बिन्दु भगवान् सदाशिव से भिन्न ऐसे

श्रीचक्र में नौ त्रिकोण हैं। इन त्रिकोणों से सब मिलकर तियालीस कोण होते हैं। (ये कोण बिन्दु से भिन्न हैं, अत: उसको जोड़ लेने पर चवालीस कोण भी माने जाते हैं)। इनके बाहर अष्टदल, षोडशदल, त्रिवृत्त तथा त्रिरेखात्मक भूपुर है। इन सभी से आपके प्रत्यक्ष निवास रूप श्रीचक्र का निर्माण हुआ है।

रहस्यार्थ—शाक्तागमों में उपासना के दो प्रकार निर्दिष्ट हैं— 1. अन्तर्याग और 2. बहिर्याग। अन्तर्याग में मुख्यत: देह को ही श्रीचक्र का स्वरूप मानकर भावना-पूर्वक ध्यान-स्मरण किया जाता है। कुण्डलिनीरूपा भगवती त्रिपुरसुन्दरी की आन्तरिक उपासना समयाचार में स्वीकृत है, परा देवता का चक्र श्रीचक्र है। इसमें नौ त्रिकोणों की परस्पर रचना का मिश्रण होने से 43 त्रिकोण बन जाते हैं। इन कोणों में चार शिवकोण हैं तथा पाँच शक्तिकोण हैं, मध्य में बिन्दु हैं तथा युवति पद से इन दोनों के मिश्रण से नौचक्रों वाला श्रीचक्र बनता है। यह चक्र ऊर्ध्वमुख और अधोमुख नौ चक्रों से बना है। इस चक्र में 28 मर्मस्थान हैं। 24 सन्धियाँ हैं। तीन रेखाओं के सङ्गस्थान को मर्म कहते हैं तथा दो रेखाओं के सङ्गस्थल को सन्धि कहा जाता है। 'चन्द्रज्ञानविद्या' में कहा गया है कि—चतुर्दशार, दशारद्वय, अष्टकोण और वृत्तचुष्ट्य में योगाभ्यास द्वारा कुण्डलिनी का जाग्रत होकर सुषुम्ना मार्ग से आज्ञाचक्र का उल्लङ्घन होने पर उसका पुन: संवरण करना अति कठिन होता है। कुण्डलिनी के जाग्रत होकर सहस्रारगामिनी होने से जीव का बाह्य स्थूल-सम्बन्ध छूट जाता है तथा वह एकाग्र होकर शान्त-प्रशान्त वृत्तियों में मग्न होने लगता है। सहस्रारगत कुण्डलिनी शक्ति का पुन: संवरण तब साध्यकर हो सके तो ईश्वरत्व की सिद्धि होती है। यही परा नित्या नित्य है।

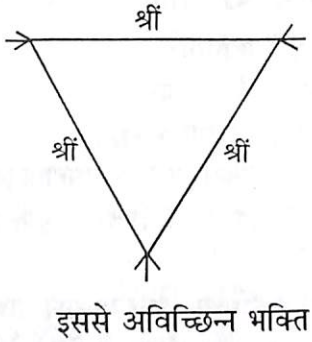

यन्त्र-सङ्केत—इस श्लोक मन्त्र में श्रीचक्र निर्माण का स्वरूप बताया गया है। इसका बीजाक्षर 'च' है। यह यन्त्र पूजार्थ बनाएँ। 1000 जप करें। लाल फूल, बेल, तिल, जौ से 100 या 10 आहुति दें। श्लोक मन्त्र का पाठ 10 बार करें और श्लोक पाठ की एक आहुति दें।

इससे अविच्छिन्न भक्ति प्राप्त होती है। मनोबल बढ़ता है तथा व्यक्ति सर्वदा सन्तुलित व्यवहार वाला, शान्तचित्त होता है।

: 12 :

प्रसङ्ग सङ्गति—श्रीचक्र में भगवती के अनिर्वचनीय सौन्दर्य गुणों की स्तुति—

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये! तुलयितुं,
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चि-प्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा,
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिश-सायुज्य-पदवीम्।।12।।

अवतरणका—पूर्वोक्त पद्यों से श्रीमाता के अन्तः और बाह्य ध्यान-पूजा का वर्णन करके आचार्य भगवत्पाद श्रीचक्र में विराजमान भगवती की रूप-सम्पदा का निरूपण करते हैं—

सरलार्थ—हे हिमगिरिनन्दिनी! आपके सौन्दर्य की तुलना करने के लिए ब्रह्मा आदि कवीन्द्र भी (आपके समान अन्य सुन्दर वस्तु का अभाव होने से) समर्थ नहीं होते हैं। तथा उर्वशी आदि अप्सराएँ अथवा ब्रह्माणी, वैष्णवी आदि अमरललनाएँ आपके दिव्य सौन्दर्य की दर्शन-लालसा से अत्यन्त दुष्प्राप्य शिव-सायुज्य-सरणि को अन्तःकरण से प्राप्त कर लेती हैं। अर्थात् माता त्रिपुरसुन्दरी का लावण्य ललनाओं को भी मोहित करनेवाला है, उस सौन्दर्य का आस्वाद श्रीशिव ही प्राप्त करते हैं। अतः शिवत्व की कामना वे मन से करती हैं। क्योंकि वास्तविक सायुज्य तो कठिन तपश्चर्या से भी दुष्प्राप्य है।

रहस्यार्थ—यहाँ भगवती की सौन्दर्य-लहरी के चिन्तन से शिवसायुज्य-पदवी की प्राप्ति का कथन हुआ है। साधक अपने अधिकार के अनुसार बहिर्याग, और अन्तर्याग द्वारा भगवती को प्रसन्न करें तथा अन्तर्याग के द्वारा शिवसायुज्य-मुक्ति को प्राप्त करें। क्योंकि सहस्रार में शिव-शक्ति का ऐक्य होने पर परमपद की उपलब्धि होती है।

भगवती के सौन्दर्य का चिन्तन करने से समाधि लग सकती है। 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' में जीव को ब्रह्म से एकता प्राप्त होने पर कृतार्थ और वीतशोक होने का निर्देश किया है—

यथा—यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधातम्। तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः॥2/24॥ अर्थात् मिट्टी से लिपे हुए, तेजोमय अमृत के समान चमकते हुए शीतल बिम्बवत्

आत्मतत्त्व को देखकर देहाभिमानी जीव ब्रह्म से एकता प्राप्त करके कृतार्थ और वीतशोक हो जाता है।

भगवती का सौन्दर्य स्वच्छ, शीतल, प्रकाशपूर्ण, अमृतमय तथा सुधामयी ज्योति के सदृश है। ऐसे अद्वितीय सौन्दर्य की लहरी का ध्यान इस पद्य में वर्णित है। यह सौन्दर्य कठिन तपश्चर्या द्वारा ध्येय है तथा शिवसायुज्य को प्राप्त कराता है।

यन्त्र-सङ्केत—इसका बीजाक्षर 'त्व' है। पूजनयन्त्र त्रिकोणात्मक 'क्लीं' युक्त होता है। बीज जप 1000 करके, आहुति संख्या 100 या 10 ही है। श्लोक पाठ पूर्ववत्, 10 बार व आहुति ही है। हवन-सामग्री घी मिला बेल, लाल फूल, तिल व जौ हैं। ध्यान श्लोक दिया जा रहा है।

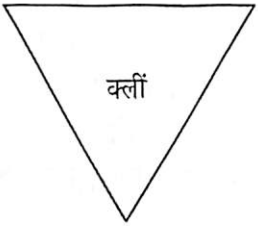

चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम्।
सदा त्षोडशवर्षीयां रक्ताम्बरधरां पराम्।।
नानालंकारभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
एवं ध्यात्वा त्वकारं तु मन्त्ररूपं सदा यजेत्।।
तकारं चंचलापांगि स्वयं परमकुण्डली।
पंचदेवात्मकं वर्णं पंचप्राणात्मकं तथा।।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतम्।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम्।।

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के कृपा-कटाक्ष की किरणों के अनुग्रह से साधक की काय-सम्पत्ति बढ़ने का वर्णन—

नरं वर्षीयांसं नयन-विरसं नर्मसु जडं,
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः ।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलश-विस्त्रस्त-सिचया,
हठात् त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलित-दुकूला युवतयः ।।13 ।।

अवतरणिका—जहाँ ब्रह्मादि देवगण भी माता के सौन्दर्य वर्णन में कुण्ठित हैं, वहाँ मैं सौन्दर्य का वर्णन कैसे कर सकता हूँ? तथापि आपकी दयापूर्ण कटाक्ष की कणिका से अनुगृहीत मैं सौन्दर्यादि गुणवर्णन में प्रवृत्त हूँ, ऐसा कहते हुए कटाक्ष-वीक्षण महिमा का निरूपण करते हैं ।

सरलार्थ—हे परमेश्वरी ! आपकी कृपा-परिपूर्ण दृष्टि की हलकी-सी किरण जिस पर पड़ जाती है, वह मनुष्य अतिशय वृद्ध हो, मन्ददृष्ट्य हो अथवा दृष्टि-दोषों से पूर्ण हो तथा शृंगार-क्रीड़ाओं में जड़ हो, तब भी ऐसे गलित यौवन, श्लथेन्द्रिय मनुष्य को आप अपने कटाक्ष-निरीक्षण मात्र से जगन्मोहक रूप प्रदान करती हैं जिसके परिणामस्वरूप अनेक युवतियाँ उसके प्रति आकर्षित होकर उसे प्राप्त करने की इच्छा से दौड़ पड़ती हैं। उस समय उन सुन्दरियों के वेणीबन्ध छूट जाते हैं, कुचों के आवरण-वस्त्र खुल जाते हैं, करधनियाँ बरबस छूट जाती हैं और उस विकलता में साड़ियाँ भी फिसल जाती हैं। यह सब आपके कृपाकटाक्षपात का ही फल है ।

रहस्यार्थ—आकर्षण-शक्ति की वृद्धि के लिए यहाँ कामकला ईं बीज के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। साधक की काय-सम्पत्ति शरीर का लावण्य बल, वज्रवत् सुगठित होना, नीरोग होना काय-सम्पदा है। वह षट्चक्रबेध द्वारा पञ्चभूतजय होने पर होती है। भूतजय से अणिमादि सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। प्रत्येक नाड़ी में अमृतरत्न का सञ्चार होता है। यह काय-सम्पत् का फल है। जीवनशक्ति का सञ्चार स्नायुओं में बढ़ता है। कुण्डलिनी-शक्ति के जागरण से होनेवाला काया-कल्प इस उपासना से होता है ।

इनमें लिपिवर्ण 50 मिलकर 56 होते हैं। ये 56 किरणें शिव-शक्तिरूप हैं। विश्व में पार्थिव तत्त्व कुल 28 हैं जिनमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पाँच तन्मात्राएँ, पाँच महाभूत—पृथिवी, जल, तेज वायु और

आकाश, 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय, 4 अन्तःकरण तथा काल, प्रकृति, पुरुष एवं महत्तत्व—ऐसे 28 तत्त्व शिवशक्ति के योग से 56 बनते हैं।

जलतत्त्व 26 हैं जिनमें 5 महाभूत, 5 ज्ञानेन्द्रिय तथा उनके 5 कार्य, 5 कर्मेन्द्रिय, 5 उनके कार्य तथा मन में 26 तत्त्व शिव-शक्तियोग से 52 होते हैं।

अग्नितत्त्व 31 हैं, जिनमें 5 महाभूत, 5 तन्मात्रा, 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 उनके कार्य, 5 कर्मेन्द्रिय और 5 उनके कार्य तथा मन ये शिवशक्तियोग से 62 होते हैं।

वायुतत्त्व 27 हैं जिनमें महत्तत्व को छोड़कर शेष 28 पार्थिवतत्त्व हैं। ये शिवशक्तियोग से 54 होते हैं।

आकाशतत्त्व 36 हैं जिनमें शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि, मन, 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय, 5 तन्मात्रा, 5 महाभूत ये हैं। ये 36 शिवशक्तियोग से 72 होते हैं। मनस्तत्व 32 हैं। जिनमें आकाशतत्त्व के शिव, शक्ति, सदाशिव और ईश्वर ऐसे 4 तत्त्वों को छोड़कर शेष का समावेश है। ये 32 ही शिवशक्तियोग से 64 बनते हैं। ये सभी मिलकर 360 होते हैं। इन्हीं को भगवती के चरण-कमल की मयूख (किरणें) कहा गया है।

पार्थिव कला में छः बीज ऐं श्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः, जलात्मक कला में दो बीज सौः श्रीं।

अग्न्यात्मक कला में 12 बीज—ॐ हंसः सोहंः ॐ हंसः सोहं हंसः ॐ ह्रीं।

अनित्यात्मक कला में 4 बीज यं रं लं वं।

आकाशात्मक कला में अ से अः (लृ लॄ) को छोड़कर 14 वर्ण बीज सानुस्वार 5 बार 2 बीज ऐं ह्रीं।

यन्त्रादि विवेक

यहाँ बीजाक्षर 'न' है, जिसका पूर्ववत् 1000 जप करना चाहिए। मूलाधार इसका स्थान है।

लाल फूल, बेल, तिल व जौ से 100 या 10 आहुतियाँ, दशांश तर्पण व मार्जन करें। पश्चात् श्लोक की दस आवृत्तियाँ व श्लोकरूपी मन्त्र से एक आहुति दें।

पूजन में यह यन्त्र प्रयुक्त करें। प्रत्येक यन्त्र को शुद्धभूमि पर चावल के

आटे से लिखा जा सकता है, अथवा सोना, चांदी या त्रिधातु के पत्र पर उत्कीर्ण करके प्रयोग में लाया जाना चाहिए। यह बात सब जगह लागू है, अतः सब जगह नहीं बताई जाएगी।

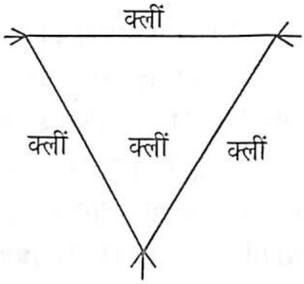

ध्यान विधि

दलिताञ्जनवर्णाभां ललज् जिह्वां सुलोचनाम्।
चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दनचर्चिताम्।।
कृष्णाम्बरपरीधानां ईषद् हास्यमुखीं सदा।
एवं ध्यात्वा नकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।।
नकारं श्रणु चार्वंगि! रक्तविद्युल्लताकृतिः।
पंचदेवमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली।
त्रिगुणा शक्तिसंयुक्तं हृदि भावय पार्वति।।

इ

: 14 :

प्रसङ्ग सङ्गति—अन्तर्याग-क्रम का प्रकाशन करते हुए भगवती के चरण-कमलों की महिमा का वर्णन—

क्षितौ षट्-पञ्चाशद्-द्विसमधिक-पञ्चाशदुदके,
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिक-पञ्चाशदनले।
दिवि द्विष्षट्त्रिंशन्मनसि च चतुष्षष्टिरिति ये,
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुज-युगम्।।14।।

अवतरणिका—भगवती के चरण-कमल ब्रह्मरन्ध्र के अन्तर्गत सहस्रार

में विद्यमान चन्द्रमण्डल में विराजमान हैं तथा इन्हीं चरणों की किरणों से श्रीचक्र की परिवार देवता के रूप में वे व्याप्त हैं, जो श्रीविद्यास्वरूप महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप में ही प्रकट हुई हैं। इस कथन को षट्चक्र-मयूखों के द्वारा आचार्य व्यक्त कर रहे हैं—

सरलार्थ—हे भगवती ! आप कुण्डलिनी शक्ति के रूप में षट्चक्र—मूलाधारादि का वेध करके आज्ञाचक्र से ऊपर विराजमान हैं। अत: आपके चरणकमल पञ्चतत्व और मनोरूप छ: चक्रों की क्रमश: मूलाधार—पृथिवी में 56, स्वाधिष्ठान—जल में 52, मणिपूर अग्नि में 62, अनाहत-वायु में 54, विशुद्ध-आकाश में 72 तथा आज्ञा—मन में 64 (कुल 360) रश्मियों के ऊपर हैं। ऐसे परम महिमामय चरणों की विशिष्टता का वर्णन मैं क्या करूँ ?

रहस्यार्थ—पञ्चतत्त्वात्मक देह की कुल मिलाकर 216 कलाएँ हैं और मन की 64 कलाएँ हैं। ये सब मिलकर 360 कलाएँ हैं। इन्हीं जीवनात्मक एवं सृष्ट्यात्मक विश्वशक्ति कलाओं से भगवती के चरण अत्यन्त परे हैं।

इन कलाओं का विस्तार उत्पत्ति, स्थिति और लयरूप सृष्टिक्रम है। जिसके त्रिगुण सत्, रजस् और तामस् हैं तथा त्रिदैवत ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं।

ये कलाएँ पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश से सम्बद्ध हैं। यथा—

पृथिवीतत्त्व की 56 किरणें हैं। इनमें 6 बीज ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौ: व 50 लिपिवर्ण निहित हैं।

जलात्मक कलाओं में दो बीज **'सौं श्रीं' लिपिवर्णों से युक्त होकर 52 मयूखाएँ हैं।**

अग्न्यात्मक 62 कलाएँ, 50 लिपिवर्ण तथा ॐ हंस: सोऽहं ॐ सोहं हंस: ॐ ह्रीं, कुल 12 बीज मिलने से बनती हैं।

अनिल या वायु मयूखाएँ यं रं लं वं ये 4 बीज संयुक्त लिपिवर्ण कुल 54 हैं।

व्योमात्मक मयूखाएँ 72 हैं—

अं आं इं ईं उं ऊं, ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अ:। (14)

अ: अं औं ओं इत्यादि विपरीत क्रम से ये ही पुन: प्रयुक्त। (14)

ऐं ह्रीं अं आं, इं ईं, उं ऊं, ऋं ॠं, एं ऐं, ओं औं, अं अ: ।(16)

पुन: विपरीत क्रम से अ: अं, औं ओं से.....आं अं। (14)

पुन: सीधे क्रम से अकारादि क्रम 14 स्वर बीज.... ।(14)

इसी विधि से 64 कलात्मक मन हैं। 56 + 52 + 62 + 54 + 72 + 64 = 360 मयूखाएँ केन्द्रबिन्दु या महाकाश की हैं, जो स्वयं भगवंती के चरण-कमल हैं।

बीजमन्त्र 'क्ष' जप पूर्ववत् करें। श्लोकपाठ व हवन तथा सामग्री पहले श्लोक वाली ही है। यन्त्र इस प्रकार है—

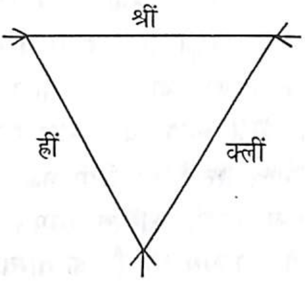

ध्यान—

चतुर्भुजां त्रिनयनां बाहुवल्ली विराजिताम्।
रत्नकंकणकेयूरहारनूपुरभूषिताम् ॥
शुक्लाम्बरां शुक्लवर्णां द्विभुजां रक्तलोचनाम्।
श्वेतचन्दनलिप्तांगीं मुक्ताहारोपशोभिताम्॥
एवं ध्यात्वा क्षकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
क्षकारं श्रणु चार्वंगि कुण्डलीत्रयसंयुतम्।
चतुर्वर्गमयं वर्णं पंचदेवमयं तु तत्।
आघण्टसिंह बीजं च पंचप्राणात्मकं प्रिये॥
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं हृदि भावय सुन्दरि॥

: 15 :

प्रसङ्ग सङ्गति—श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी के महामन्त्रगत प्रथम कूट की ध्यान-महिमा एवं प्रणाम-माहात्म्य-दर्शन—

शरज्ज्योत्सनाशुद्धां शशियुत-जटा-जूट-मुकुटां,
वर-त्रास-त्राण-स्फटिक-घटिका-पुस्तककराम् ।

सकृन्न त्वा नत्वा कथमिव सतां संनिदधते,
मधु-क्षीर-द्राक्षा-मधुरिम-धुरिणाः फणितयः ।।15 ।।

अवतरणिका—'श्रीदेवी सर्वविध अभीष्टप्रदात्री हैं' यह प्रकट करने के लिए अग्रिम सात पद्यों से कुछ ध्यान केन्द्रों का निरूपण करते हुए सात्विक सारस्वत ध्यान बतलाते हैं—

सरलार्थ—शरत् चन्द्रिका के समान शुभ्रवर्णा, चन्द्रमा से युक्त जटाजूट रूपी मुकुट धारण की हुई, दाहिने दो हाथों में वरमुद्रा और भक्तों की भय से रक्षा करने वाली अभयमुद्रा तथा बायें दो हाथों में स्फटिक माला एवं पुस्तक को धारण करने वाली ऐसी हे सरस्वती रूपा माता ! आपको एक बार भी नमन न करने वाला मनुष्य सत्कवियों जैसी मधु, दूध और द्राक्षा की मधुरता से युक्त नानाविध अस्वादवाली कवित्व सम्पन्न वाणी को कैसे प्राप्त कर सकता है, कथमपि नहीं । तात्पर्य यह है कि वाग्वादिनी स्वरूपा आपकी एक बार प्रणति से ही काव्य-सम्पदा मिल सकती है, अन्यथा नहीं ।

रहस्यार्थ—प्रणाम के माहात्म्य को प्रतिपादित करते हुए, इस में सारस्वत प्रयोग अर्थात् सर्वविध ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति का साधन, नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का अङ्कुरण व ब्रह्मा की सृष्टि से अधिक उत्कृष्ट काव्य रचनामयी सरस्वती देवी का कृपाकटाक्ष पाने का साधन बताया गया है ।

शरद् ज्योत्स्ना से अधिक शुद्ध अर्थात् धवल, अतएव विश्व कल्याणकारी, मानवता हितकारी स्वरूप ही स्तुत्य है । सद्विद्या व सज्ज्ञान से, महाशान्तिरूप चन्द्रमा के माध्यम से, परमशान्ति व मनोनैर्मल्य सम्भव है ।

महामाया रूप जटाजूट तथा कर्म व व्याधि से मोक्ष दिलाने वाला वरद रूप वरदान वर्णित है ।

यन्त्रागम

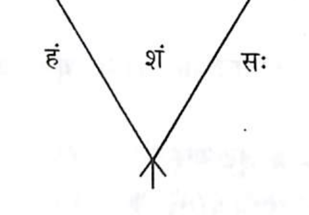

यथापूर्व 1000 जप, 100 या 10 आहुतियाँ, लाल फूल, तिल, बेल व जौ घी की आहुति, तथा श्लोक पाठ 10 व आहुति 1 समझें ।

ध्यान

चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दनचर्चिताम्।
शुक्लवर्णां त्रिनयनां वरदां चक्षुविस्मिताम्।।
रत्नालङ्कारभूषाढ्याम् श्वेतमाल्योपशोभिताम्।
देववृन्दैरभिवन्द्यां सेवितां मोक्षकांक्षिभिः।।
शकारं परमेशानि श्रणुवर्णं शुचिस्मिते।
रक्तवर्णं प्रभाकारं स्वयं परमकुण्डली।।
चतुर्वर्गप्रदं देवि शकारं ब्रह्मविग्रहम्।
पंचदेवमयं वर्गं पंचप्राणात्मकं प्रिये।।
रत्नपञ्चतमोद्युक्तं त्रिकूटसहितं सदा।
त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्वसंयुतम्।।

: **16** :

प्रसङ्ग सङ्गति—श्रीमाता के अरुणवर्ण और 'अरुणा' नाम के आधार पर राजस् रूप द्वितीय काम राजकूट का ध्यान—

कवीन्द्राणां चेतः कमलवन-बालातपरुचिं,
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्। चि।

विरिञ्चि-प्रेयस्यास्तरुणतर-शृङ्गार-लहरी —
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी।।16।।

अवतरणिका—कतिपय सत्पुरुष भगवती का अरुणवर्णवाली 'अरुणा' के रूप में ध्यान करते हैं। ऐसे स्वरूप के ध्यान से भी निरर्गल वाणी के प्रसार द्वारा साधक कविश्रेष्ठ बनकर अपनी रचनाओं से सत्पुरुषों और देवगणों को प्रसन्न करने में समर्थ होते हैं, इस आशय से ध्यान-स्वरूप बतलाते हैं—

सरलार्थ—हे माता! जो सत्पुरुष श्रेष्ठ कवियों के चित्तरूपी कमलवन को विकसित करने के लिए प्रातः उदीयमान बालसूर्य की अरुण कान्तिमयी अरुणा के रूप में ही आपका ध्यान-स्मरण करते हैं, वे ब्रह्माजी की प्रिया सरस्वती के यौवनपूर्ण शृंगार की लहरियों से युक्त गम्भीर वाग्विलास से

सत्पुरुषों-देवगणों का अनुरञ्जन करते हैं। अर्थात् उनकी वाणी अत्यन्त मनोहर तथा गम्भीर भावार्थों से मण्डित हो जाती है, जिससे देवगण भी प्रसन्न होते हैं।

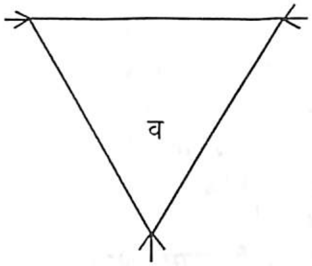

रहस्यार्थ—यहाँ वाग्भवकूट की उपासना कही है। कवित्व शक्ति पाना भगवती की कृपा से ही सम्भव है।

प्रथम तो मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है, तदुपरि विद्यावान् होना व तत्पश्चात् कवित्व शक्ति पाना तपःसाध्य है। कवित्व में सत्कवित्व पाना आपकी कृपा से ही सम्भव है।

इस पूजन यन्त्र में यथासंख्य जप करें। जप-स्थान स्वाधिष्ठान चक्र है। कनेर के फूल, खीर व बेल की 100 या 10 आहुति दें। 10-10 बार तर्पण मार्जन व श्लोक के 10 पाठ करके पुनः श्लोक से 2 आहुति दें।

ध्यान मन्त्र इस प्रकार है—

जवायावकसिन्दूरसदृशीं कामिनीं पराम्।
चतर्भुजां त्रिनेत्रां च बाहुवल्ली विराजिताम्।।1।।
कदम्बकोरकाकारः स्तनयुग्मविराजिताम्।
रत्नकंकणकेयूरहारनूपुरभूषिताम् ।।2।।
एवं ककारं ध्यात्वा तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
शंखकुन्दसमाकीर्तिर्मात्रा साक्षात्सरस्वती ॥3॥
कुण्डली चांकुशाकारा कोटिविद्युल्लताकृतिः।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशो मध्ये शून्यः सदाशिवः ॥4॥
शून्यगर्भस्थिता काली कैवल्यपददायिनी।
अर्थश्च जायते देवि तथा धर्मश्च नान्यथा ॥5॥
ककारः सर्ववर्णानां मूलप्रकृतिरेव च।
कामिनी या महेशानि स्वयं प्रकृतिसुन्दरी ॥6॥
माता सा सर्वदेवानां कैवल्यदायिनी।
उर्ध्वकोणे स्थिता वामा ब्रह्मशक्तिरितीरिता ॥7॥

वामकोणे स्थिता ज्येष्ठा विष्णुशक्तिरितीरिता।
दक्षकोणे स्थिता शक्ती रौद्री संहाररूपिणी ॥8 ॥
ज्ञानात्मा सा तु चार्वंगी चतुष्ट्यात्मकं कुलम्।
इच्छाशक्तिर्भवेद् ब्रह्मा विष्णुश्च ज्ञानशक्तिमान् ॥9 ॥
क्रियाशक्तिर्भवेद् रुद्रः सर्वप्रकृतिमूर्तिमान्।
आत्मविद्याशिवस्तत्त्वैः पूर्णा मात्रा प्रतिष्ठिता ॥10 ॥
आसनं त्रिपुरादएव्याः ककारः पंचदैवतः।
ईश्वरो यस्तु देवेशि त्रिकोणो तस्य संस्थितः ॥11 ॥
त्रिकोणमेतत्कथितं योनिमण्डलमुत्तमम्।
कैवल्यं प्रपदेयस्याः कामिनी सा प्रकीर्तिता ॥12 ॥
एषा सा कादिविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥

: 17 :

प्रसङ्ग सङ्गति—सारस्वत सौभाग्यप्राप्ति का कथन करते हुए भगवती के 'तामस् रूप' तृतीय शक्ति 'कूट' का ध्यान—

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणि-शिला-भंग-रुचिभि—
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति च।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गि-रुचिभि—
र्वचोभिर्वाग्देवी - वदन - कमलामोद - मधुरैः ॥17 ॥

अवतरणिका—भगवती अरुणा के वशिनी आदि वाग्देवियों के साथ ध्यान करने की महिमा को बतलाते हुए आचार्यश्री कहते हैं 'जो वशिनी आदि के साथ आपका हृदय में ध्यान करता है, वह नानाविध शब्दार्थविन्यासों से पूर्ण, वाग्देवी के मुखकमल से निसृतः सुगंध से मधुर काव्यों का रचनाकर्ता होता है।'

सरलार्थ—हे जननि! जो साधक अपने हृदय-कमल में अति धवल वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं सहित आपका ध्यान करता है, वह अष्टादश लक्षणोंवाले, सहृदयों के हृदय को प्रसन्न करनेवाले, अति मधुर एवं साक्षात् वाणी के मुखकमल से निकली हुई सुगन्ध से युक्त मञ्जुल

वचनों से पूर्ण काव्यों/ महाकाव्यों का कर्ता होता है। अर्थात् महाकाव्य की रचना करने की शक्ति चाहनेवाले साधक को ऐसा ध्यान करना चाहिए।

गुह्यार्थ व यन्त्र-स्फोट

श्लोक में भगवती की ज्ञानदा शक्ति का वर्णन है। इसका सब जपादि विधान 'क' बीज के अनुसार ही है। यहाँ बीजाक्षर 'स' है। पूजन-यन्त्र इस प्रकार होगा।

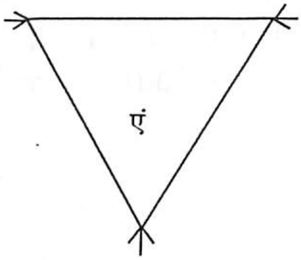

ध्यान-मन्त्र दिया जा रहा है—

करीषभूषितांगीं च साट्टहासां दिगम्बरीम्।
अस्थिमाल्यामष्टभुजां वरदामम्बुजेक्षणाम्।।
नागेन्द्रहारभूषाढ्यां जटामुकुटमण्डिताम्।
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यां धर्मार्थकाममोक्षदाम्।।

एवं ध्यात्वा सकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
सकारं श्रणु चार्वङ्गि! शक्तिबीजं परात्परम्।
कोटिविद्युल्लताकारं कुण्डलीमयसंयुतम्।।
पंचदेवमयं देवि! पंचप्राणात्मकं सदा।
रजःसत्वतमोयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा।।

इस श्लोक का फल सभी प्रकार के ज्ञान व विशेषज्ञता प्राप्ति है।

प्रसङ्ग सङ्गति—चतुर्विध पुरुषार्थों में कामपुरुषार्थ के प्रति आसक्त व्यक्ति के लिए 'तरुणी-वशीकरण-विद्या' रूप मध्यकूट के ध्यान की महिमा—

तनुच्छायाभिस्तेऽतरुण - तरणि - श्रीसरणिभि —
र्दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः ।
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिण - शालीन - नयनाः,
सहोर्वश्या वश्याः कति कति न गीर्वाणगणिकाः ॥18 ॥

अवतरणिका—पूर्वोक्त दो पद्यों से प्रथम वाग्भवकूट का माहात्म्य बतलाकर अग्रिम दो पद्यों से द्वितीय कामराजकूट की महिमा बतलाते हुए वश्यसिद्धि के लिए उपयुक्त ध्यान का वर्णन करते हैं ।

सरलार्थ—हे भगवती ! जो साधक अरुण—बाल सूर्य की अरुण-कान्ति के द्वारा आकाश और पृथ्वी को उसमें निमग्न अर्थात् सम्पूर्ण रूप से पाटलवर्णरूपी आपके अङ्ग-कान्तिरूप समुद्र में डूबी हुई—डुबोती हुई की भावना से आपका ध्यान करता है, उस साधक का अङ्ग भी अत्यन्त मोहक लावण्य से परिपूर्ण हो जाता है तथा उसी के कारण भयभीत वन-विहारिणी हरिणियों के समान नेत्रवाली कितनी ही अप्सराएँ स्वयं उर्वशी के साथ उसके वश में नहीं होतीं ? अर्थात् वे सभी अथवा वैसी ही अन्य स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं ।

गूढ़ार्थ व यन्त्रस्वरूप

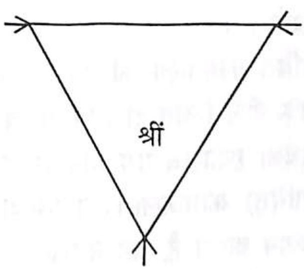

कामराजकूट का इच्छाशक्ति के रूप में यहाँ वर्णन किया गया है । यह वशीकरण सिद्धि का मन्त्र है । इसके प्रयोग में साधक वशीकरण द्वारा असाध्य साधन कर सकता है ।

जपादि 'क' बीजाक्षर विधान की तरह से होगा । श्लोक पाठ 10 व आहुति 2 है । हवन-सामग्री बेल, खीर व कनेर पुष्प है । ध्यान इस प्रकार है—

चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम् ।
सदा षोडशवर्षीयां रक्ताम्बरधरां पराम् ।।

नानालंकारभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा तकारं तु मन्त्ररूपं सदा यजेत्।।
तकारं चंचलापांगि! स्वयं परमकुण्डली।
पंचदेवात्मकं वर्णं पंचप्राणात्मकं तथा।।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतम्।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम्।।

यहाँ पर बीजाक्षर 'त' है। उसका जप 1000 व हवन 100 या 10। तपर्ण मार्जन भी 10-10 बार करें।

: 19 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के ध्यान से न केवल स्त्रीवशीकरण ही होता है, अपितु तीनों लोकों को भी अपनी साधना-शक्ति से साधक वश में कर सकता है। यह बताने के लिए 'कामकला' के ध्यान की महिमा कहते हैं।

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो,
हरार्धं ध्यायेद् यो हर-महिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु,
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्।।19॥

अवतरणिका—पूर्वोक्त पद्धति से जप-ध्यानकर्ता के लावण्य और तेजस्विता से मण्डित होने पर परम-सुन्दरियाँ वश में होती हैं, यह इहलोक की सिद्धि तो सामान्य है। अतः इतना ही नहीं है, अपितु 'कामकला' के ध्यानमात्र से 'विश्ववशीकरण' का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। यह बताने के लिए आचार्यचरण इस पद्य से ध्यान की प्रक्रिया समझाते हैं।

सरलार्थ—हे माता त्रिपुरसुन्दरी ! जो व्यक्ति कामकला की आकृति में सर्वोपरि विराजमान बिन्दु को मुख मानकर, उसके नीचे स्थित दो बिन्दुओं को दोनों स्तन माने और उसके भी नीचे हरार्ध अथवा हकारार्धभाग मानकर इन तीनों से निष्पन्न ('काम'-शिव और 'कला'-शक्ति) कामकला-शिवशक्त्यात्मक आपके बीजमन्त्र 'ईं' का साकार रूपमें ध्यान करता है, वह तत्काल ही स्त्रियों के चित्त में क्षोभ उत्पन्न कर देता है। यह तो अत्यन्त छोटी बात है। किन्तु (इसके ध्यान और जप से उसका सामर्थ्य इतना बढ़ जाता है कि) वह सूर्य तथा चन्द्ररूपी दोनों स्तनवाली त्रिलोकी को भी विचलित कर देता है। अर्थात् तीनों लोक उसके वश में हो जाते हैं।

रहस्यार्थ—यहाँ प्रारम्भिक अक्षर 'मु' होने से बीजाक्षर म और उ दोनों हैं। इन दोनों का ही ध्यान करना चाहिए। 'म' का ध्यान इस प्रकार है—

कृष्णां दशभुजां भीमां पीतलोहितलोचनाम्।
कृष्णाम्बरधरां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदाम्।।
एवं ध्यात्वा मकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
मकारं श्रणु चार्वंगि स्वयं परमकुण्डली।।
तरुणादित्यसकांशं चतुर्वर्गप्रदायकम्।
पंचदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं तथा।।

'म' की जप-संख्या 1000 पूर्ण करके बेल व खीर से 100 या 10 आहुति दें। 10-10 मार्जन तर्पण करें। तब श्लोक पाठ पूर्ववत् 10 व आहुति 2 हैं।

'उ' का ध्यान—

पीतवर्णां त्रिनयनां पीताम्बरधरां पराम्।
द्विभुजां जटिलां भीमां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।।
एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
उकारं परमेशानि! अधः कुण्डलिनी स्वयम्।।
पीतचम्पकसंकाशं पंचदेवमयं सदा।
पंचप्राणमयं देवि! चतुर्वर्गप्रदायकम्।।

जप व होम 'म' की तरह ही करें। दोनों ध्यान एक साथ करके जपोपरान्त श्लोकपाठ भी साथ कर लें। पश्चात् हवन करें।

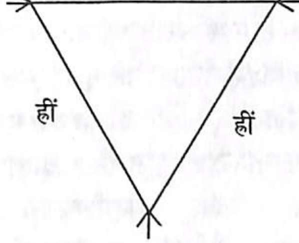

इससे स्त्री-वशीकरण, अपि च सर्ववशीकाकरण शक्ति स्फुट होती है। इसमें चित्त कुण्डलिनी या शिवशक्ति मिलन का भाव है। इसे महाकामबीज या गूढ़सरस्वती बीज भी कहते हैं।

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के महामन्त्रगत तृतीयकूट की महिमा एवं 'गरुड़ध्यानयोग' का निरूपण—

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरण-निकुरुम्बामृतरसं,
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः ।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव,
ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाधारसिरया ।।20 ।।

आतरणिका—महामन्त्र के तृतीयकूट के बाह्य ध्यान और फल का वर्णन करते हुए आचार्यप्रवर भगवती के अमृतेश्वरी-स्वरूप के ध्यान की महिमा का वर्णन करते हैं ।

सरलार्थ—हे परमेश्वरी ! जो साधक अपने हृदय में आपको अपने अङ्ग की सुषमा से अमृतमयी किरणें फैलाती हुई तथा चन्द्रकान्तमणि जैसी श्वेत छवि का ध्यान करता है, वह गरुड़ के समान सर्प के विष का शमन कर उन महाविष-धरों के अभिमान का नाश करता है । वह साधक अपनी सुधामयी दृष्टि से ज्वर आदि रोगों से ग्रस्त व्यक्ति के ज्वर आदि रोगों को नष्ट कर उसे सुखी बनाता है ।

गुह्यार्थ—यह मृतसंजीवनी विद्या है। इसी के बल से दैत्यगुरु शुक्राचार्य मृत राक्षसों को पुनर्जीवित कर देते थे। इसी के दुष्प्रयोग से कुपित होकर भगवान् शङ्कर ने शुक्राचार्य को दण्डित किया था।

हौं, जूँ स: ये क्रमश: शिव, जीवन व शक्ति बीज हैं । अत: यह मृत्युंजय सिद्धि रोगमुक्त होकर चिरजीवी व चिरयुवा होने का रहस्य है ।

जपबीज 'कि' में क और ई दोनों ध्यान होंगे ।

जप-संख्या 1000 व होम में कनेर पुष्प, बेल, व खीर लें । आहुति 100 या 10, श्लोकपाठ 10 व आहुति (श्लोक) 2 हैं । पूजन-यन्त्र व ध्यान इस प्रकार है ।

'क' का ध्यान पीछे लिख चुके हैं । 'ई' का ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

इकारं परमानन्दं सुगन्धं कुंकुमच्छविः ।
हरिब्रह्ममयं वर्णं सदाशिवमयं प्रिये ।।
महाशक्तिमयं देवि ! गुरुब्रह्ममयं तथा ।
विश्वत्रयमयं वर्गं परब्रह्मसमन्वितम् ।।

उर्ध्वाधः कुब्जितामध्ये रेखा तत्संगता भवेत्।
लक्ष्मीर्वाणी तथेन्द्राणी क्रमात्तास्वेव संवसेत्।।
धूम्रवर्णां महारौद्रीं पीताम्बरयुतां पराम्।
कामदां सिद्धिदां सौम्यां नित्योत्साहविवर्धिनीम्।।
चतुर्भुजां च वरदां हरिचन्दनभूषिताम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां मन्त्रं तु दशधा जपेत्।।

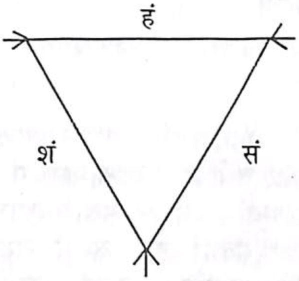

: 21 :

प्रसङ्ग सङ्गति—आनन्दमयी भगवती के पूर्वोक्त 19वें पद्य में 'बाह्यध्यान' का वर्णन करके अब श्रेष्ठ साधकोपयोगी 'आभ्यन्तर ध्यान' का स्वरूप बताते हैं।

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं,
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा,
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लाद-लहरीम्।।21।।

अवतरणिका—'ध्यान-साधना में साधक को स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होना चाहिए', इस दृष्टि से पहले जगन्माता के अङ्ग के ध्यान की विधि बतलाई गई है, तदनन्तर यहाँ सूक्ष्म ध्यान का वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—हे जगज्जनी! दीर्घ, सूक्ष्म, कुटिलाकार, प्रकाशमय तथा क्षणप्रतीति देनेवाली विद्युल्लता के समान अति सूक्ष्म, सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि-रूप एवं मूलाधारादि षट्चक्रों के ऊपर सहस्रार में विराजमान आपकी

कला—कामकला मूर्ति को सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रियानिष्पत्ति रूप माया से मुक्त मन द्वारा देखते हैं—अन्तर्मुख होकर साक्षात्कार करते हैं, वे महायोगीश्वर निर्मल परब्रह्मसुख परम्परा को धारण करते हैं।

रहस्यार्थ—यहाँ भगवती आनन्दमयी का भीतरी ध्यान दिया गया है। सहस्रार के दिव्य-दर्शन का भाव प्रस्फुट है। अग्नि-सूर्य व सोम की स्थिति शान्तिपरा कला का नाम ही योनि है। अर्थात् इस त्रिबिन्दु के आधार-स्थान को योनि कहते हैं। इस प्रसङ्ग में साधक शिव-शक्ति की एकता का भान प्राप्त करता है। इस एकात्म रूप महानन्द में साधक 'अहं' तत्त्व को विस्मृत करके आनन्दमयी के साथ एकात्म भावात्मक समाधि में लीन हो जाता है।

ध्यानमन्त्र—

चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम्।
सदा षोडशवर्षीयां रक्ताम्बरधरां पराम्।।
नानालंकारभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा तकारं तु मन्त्ररूपं सदा यजेत्।।
तकारं चंचलापांगि! स्वयं परमकुण्डली।
पंचदेवात्मकं वर्णं पंचप्राणात्मकं तथा।।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतम्।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम्।।

'त' बीजाक्षर का जप 10000, आहुति 100 या दस, तर्पण मार्जन भी 10-10 है। बेल व खीर व कनेर के फूल की आहुति दें। श्लोक-पाठ 10 तथा हवन आहुति 2 हैं। यन्त्र-स्वरूप यह है।

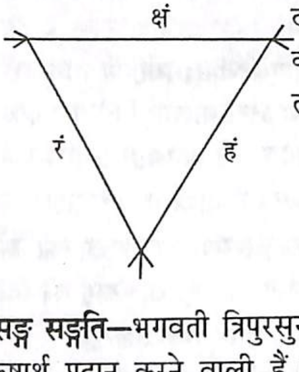

: 22 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती त्रिपुरसुन्दरी परमकरुणामयी, अत्यन्त उदार तथा परम पुरुषार्थ प्रदान करने वाली हैं। इतना ही नहीं, अपितु जो अनन्य भाव से उपासना करता है, उसको तत्काल सायुज्यमुक्ति प्रदान करती हैं। यह यहाँ व्यक्त किया गया है।

भवानि! त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा—
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्य-पदवीं,
मुकुन्द - ब्रह्मेन्द्र - स्फुट - मुकुट - नीराजितपदाम् ॥22॥

अवतरणिका—पहले कहे गए सात पद्यों से धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग का फल देनेवाली भगवती की महिमा का वर्णन करके दयामयी जगन्माता की आवर्ग-मोक्ष-प्रदानरूप उदारता को प्रकट करते हैं।

सरलार्थ—हे त्रिपुरसुन्दरी भवानी! आप वस्तुतः अत्यन्त उदार हैं, क्योंकि जब साधक भक्तिपूर्ण यह निवेदन करने के लिए 'हे भवानी! आप मुझ दास पर कृपापूर्ण दृष्टिपात कीजिए, करुणापूर्ण दृष्टि से मुझ दास को देखिए।' इस प्रकार की इच्छा करके साधक भक्त अपने मुख से 'भवानि त्वम्' इतना ही कह पाता है, तब, उसी समय उसको आप विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र के मुकुटों द्वारा साक्षात् रूप से वन्दन करने से हुई आरती वाले आपके चरणों की निकटतारूप—सायुज्य-पदवी प्रदान कर देती हैं।

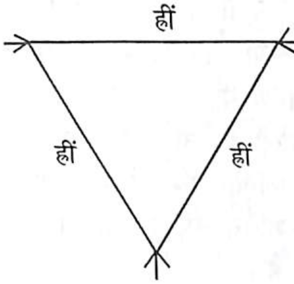

गुह्यार्थ—भक्ति योग के अनुसार सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य व सायुज्य ये 4 अवस्थाएँ भक्ति की हैं। इन्हीं अवस्थाओं का निरूपण यहाँ किया गया है। श्रीचरणों में तल्लीन होने पर, सतत ध्यान के पश्चात् व्यक्ति में आपकी सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं।

इसका बीजाक्षर 'भ' है। जप-संख्या का हवन विधान 'त' के अनुसार ही रहेगा। यन्त्रस्वरूप व ध्यान यहाँ दिया जा रहा है।

ध्यान—

तडित्प्रभां महादेवीं नागकंकणशोभिताम्।
चतुर्वर्गप्रदां देवीं साधकाभीष्टसिद्धिदाम्।
एवं ध्यात्वा भकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
भकारं शृणु चार्वंगि स्वयं परमकुण्डली॥
महामोक्षप्रदं वर्णं तरुणादित्यसमप्रभम्।
पंचप्राणमयं वर्णं पंचदेवमयं प्रिये॥

प्रसङ्ग सङ्गति—पूर्व पद्य में वर्णित विषय को ही पुनः सुपुष्ट करते हुए शिव और शक्ति की अभिन्नता को काव्यशैली से यहाँ व्यक्त करते हैं—

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा,
शरीरार्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत्।
यदेतत् त्वद् रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं,
कुचाभ्यामानम्रं कुटिल-शशि-चूडाल-मुकुटम्।।23 ।।

अवतरणिका—पूर्वोक्त 22वें पद्य में भगवती के सायुज्य-प्रदान को बतलाकर आचार्यश्री अब यह वर्णन करते हैं कि शिवसायुज्य में तथा शक्ति-सायुज्य में कोई अन्तर नहीं है। भगवान् शिव ने भी आपका ही सायुज्य चाहा था, जिसे आपने कृपा-पूर्वक प्रदान किया और उसी कारण आपके श्रीविग्रह में श्रीशिव भी भवदाकार हो गए हैं।

सरलार्थ—हे माता ! (आप कदाचित् यह सोचती होंगी कि सभी लोग शिव-सायुज्य की कामना करते हैं, तब ये मेरे सायुज्य की कामना क्यों करता है, तो इसका उत्तर यह है कि) आप शिव-स्वरूप ही हैं। इस सम्बन्ध में मेरा विचार है कि आपने पहले तो शिव के वाम अंग को अपने में मिला लिया तदनन्तर 'पूर्णसायुज्यदान किए बिना सन्तोष नहीं', ऐसा सोचकर अतृप्त मन से उनका दक्षिण अङ्ग भी अपने विग्रह में समा लिया। इसका प्रमाण यह है कि आपका जो अरुण वर्ण है वह पहले आधा अरुण था, अब पूर्ण अरुण हो गया है। पहले द्विनयन और मुकुटरूप अलङ्कारवाली थीं, अब तीन नेत्रवाली, कुचभार से तनिक झुकी हुई तथा चन्द्रकला से अलंकृत मुकुट ऐसा आपका स्वरूप है। (अतः आप शिवरूपिणी हैं और शिव-शक्ति रूप हैं। आपके भेद नहीं है) इसलिए आपका सायुज्य ही शिव-सायुज्य है।

रहस्यार्थ—शिव-तत्त्व भी शक्ति तत्त्व में ही समाहित हो जाता है, अतःशक्ति तत्त्व ही प्रधान है, यह प्रतिपादित किया गया है।

भगवान् शिव के अलङ्कारों का आपके स्वरूप में इसीलिए प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

यहाँ बीजाक्षर 'त्व' है। जप-संख्या यथापूर्व 10000, आहुति 100 या 10, तर्पण मार्जन 10-10 हैं। बेल, कनेर व खीर की आहुति तथा श्लोक पाठ 10 तथा श्लोक की 2 हवन आहुतियाँ होंगी। पूजन यन्त्र यह है।

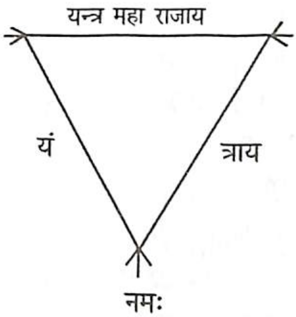

'त' व 'व' दोनों का ध्यान होगा। 'त' का ध्यान पीछे दिया जा चुका है। 'व' ध्यान इस प्रकार है—

कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां पकंजेक्षणाम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरां रत्नहारोज्ज्वलां पराम्।।
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्धसेविताम्।
एवं ध्यात्वा वकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।।
वकारं चंचलापांगि! कुण्डलीमोक्षमव्ययम्।
पंचप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा।।
त्रिबिन्दुसहितं मन्त्रमात्मादितत्त्वसंयुतम्।
पंचदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लतामयम्।।
चतुर्वर्गप्रदं शान्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।

'आकर्षण' सिद्धिप्रयोग प्रयोजन है।

: 24 :

प्रसङ्ग-सङ्गति—सृष्टि, स्थिति और संहार के कर्ता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र द्वारा रचित जगत् का महाप्रलय के समय ईशान—शिव अपने में विलीन कर लेते हैं। तब सदाशिव ही विद्यमान रहते हैं तथा माता के भृकुटिविलास से जगत् पर अनुग्रह करते हैं, तथा पुनः जगत् की सृष्टि करते हैं। अतः माता की आज्ञा

से ही समस्त संसार तथा देवों के कार्य होते हैं। यह व्यक्त करते हैं।

> जगत् सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते,
> तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि वपुरीशस्तिरयति।
> सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिवः,
> तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ।।24 ।।

अवतरणिका—'समस्त संसार सदाशिवमय है' इसका कारण सहित प्रतिपादन करते हुए यहाँ कहते हैं कि—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र क्रमशः सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, तब ईशान—शिव अपने महेश्वरतत्त्व को भी अन्तर्हित कर लेते हैं। तदनन्तर ब्रह्माण्ड के उत्पादन की सदाशिव की इच्छा होती है। उस समय सदाशिव जगदम्बा की आज्ञा का आलम्बन लेकर ही जगत् पर अनुग्रह करते हैं। इस कथन द्वारा जगत् की सृष्टि सदाशिव की कृपा के कारण जगदम्बा के भृकुटिविलास से ही हैं, यह प्रदर्शित करते हैं—

सरलार्थ—हे माता! ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करते हैं, विष्णु जगत् का पालन करते हैं तथा रुद्र जगत् का संहार करते हैं तब ईश्वर सबका तिरस्कार करके स्वयं को तटस्थ रखते हैं। तदनन्तर सदाशिव भगवती के भृकुटि-विलास मात्र से आज्ञा प्राप्त करके पुनः नवीन सृष्टि करके ब्रह्मादि देवों पर अनुग्रह करते हैं।

रहस्यार्थ—भगवान् शिव आपके चलित नेत्रों की भौंहों के संकेत से ही बीज में पुनः सृष्टि की शक्ति का सञ्चार करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र, ईश्वर के लय होने के बाद अकेले भगवान् सदाशिव ईश्वर सहित सम्पूर्ण तत्त्वों का बीज में लय करते हैं। यहीं से पुनः सृष्टि प्रारम्भ होती है।

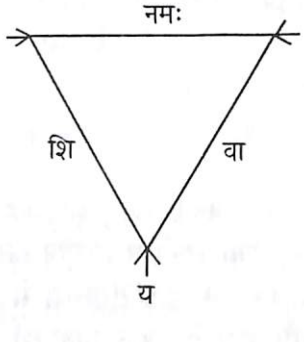

बीजाक्षर 'ज' का 1000 जप, आहुति 100 या 10 व तर्पण मार्जन पूर्ववत् होता है। श्लोक पाठ 10 व आहुति 2 हैं। हवन-सामग्री कनेर पुष्प, बेल व पायस हैं। पूजन-यन्त्र यह रहेगा।

ध्यान-मन्त्र—

नानालङ्कारसंयुक्तैर्भुजैर्द्वादशभिर्युतम्।
रक्तचन्दन दिव्यांगीं चित्राम्बरविधारिणीम्।।
त्रिलोचनां जगद्धात्रीं वरदां भक्तवत्सलाम्।
एवं ध्यात्वा जकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।।
जकारं परमेशानि या स्वयं मध्यकुण्डली।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं दिव्यत्रिमुण्डसंयुतम्।।
पंचदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं प्रिये।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं द्विबिन्दुसहितं भजेत्।।

यह प्रयोग सन्तान-प्राप्ति में सिद्धिदायक है।

: 25 :

प्रसङ्ग सङ्गति—ब्रह्मादिदेव भगवती की आज्ञा के वशवर्ती हैं। अतः भगवती के चरणों की पूजा से उनकी भी पूजा हो जाती है। इस कथन का औचित्य यहाँ प्रतिपादित कर रहे हैं।

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे।
भवेत् पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता।
तथा हि त्वत्पादोद्वहन-मणिपीठस्य निकटे,
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलित-करोत्तंसमुकुटाः।।25।।

अवतरणिका—पूर्वोक्त पद्य में भगवती के सायुज्य की महिमा कही गई है, उसी के आधार पर यदि यह तर्क किया जाए कि 'ब्रह्मादि देवता पूर्ण समर्थ देव हैं, तो उनकी सायुज्य क्यों नहीं चाहते ?' इसके उत्तर में यहाँ 'ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पूजा तो भगवती के सिंहासन के चरणों में स्थित होने से पृथक् पूजा आवश्यक नहीं है क्योंकि आपके चरणों की पूजा से ही उनकी भी पूजा हो जाती है। यह कहकर श्रीमाता के चरणों की विशिष्टता दिखलाते हैं।

सरलार्थ—हे शिवे! आप अनादिकाल से सत्त्वादिगुणत्रयवाली परमेश्वरी हैं। अतः आपके ही गुणों से ब्रह्मादि त्रिदेव उत्पन्न हुए हैं। यही कारण है कि वे आपके मणिपीठ के निकट अपने मुकुट से मिले हुए हाथों को

जोड़कर स्थित हैं। और जब आपके श्रीचरणों की पूजा करते हैं तो उनकी पूजा भी सहज ही हो जाती है। अत: केवल आपके चरण ही सर्वोपरि श्रेष्ठ एवं पूज्य हैं।

रहस्यार्थ—सभी कामनाओं को पूर्ण करने का बीज यहाँ बताया गया है। भगवती का सर्वतोव्यापी तेजस्वी रूप वर्णित है तथा उनकी अपरिमित शक्ति को रेखांकित किया गया है।

बीजाक्षर 'त्र' है। अत: 'त्' व 'र्' दोनों का ध्यान यहाँ आवश्यक है।

'त' का ध्यान पहले श्लोक संख्या 1 में बताया जा चुका है। 'र' का ध्यान इस प्रकार है।

ललज् जिह्वां महारौद्रीं रक्तास्यां रक्तलोचनाम्।
रक्तमाल्यम्बरधरां रक्तालंकारभूषिताम्॥
रक्तवर्णामष्टभुजां रक्तपुष्पोपशोभिताम्।
महामोक्षप्रदां नित्यां अष्टसिद्धिप्रदायिकाम्॥
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
रेफं च चंचलापांगि! कुण्डलीद्वयसंयुताम्॥
रक्तविद्युल्लताकारं पंचदेवात्मकं सदा।
त्रिशक्तिसहितं देवि! आत्मादितत्त्वसंयुतम्॥
सर्वतेजोमयं वर्णं सततं मनसि चिन्तयेत्॥

बीजाक्षर 'त्र' का 1000 जप, हवन 100 या 10 आहुति और श्लोक पाठ 10 व आहुति 2 हैं। तर्पण मार्जन सर्वत्र पूर्ववत् होगा। यन्त्र इस प्रकार है—

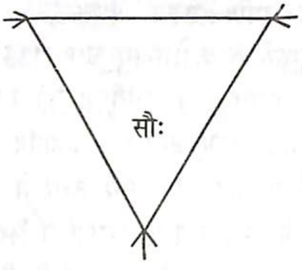

:26 :

प्रसङ्ग सङ्गति—जगन्माता त्रिपुरसुन्दरी के चरणों की पूजा का महत्त्व वर्णित करके उन चरणों के प्रभाव का वर्णन करते हैं।

विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं,
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्।

वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलितदृशा,
महासंहारेऽस्मिन् विहरति सति! त्वत्पतिरसौ।।26।।

अवतरणिका—भगवती की कृपा की महिमा और उनके पातिव्रत्य का प्रभाव बतलाते हुए यहाँ सभी देवों की महासंहारकालीन स्थिति बतलाकर भगवान् शिव ही एकमात्र विहार करते हैं—स्थिर रहते हैं।

सरलार्थ—हे पतिव्रताशिरोमणि भगवती! जब कल्पान्तकाल आता है तब ब्रह्मदेव पञ्चमहाभूतों में विलीन हो जाते हैं, श्रीविष्णु की जीवन-मर्यादा पूर्ण हो जाती है, यमराज का नाश होता है, कुबेर भी विनष्ट हो जाता है, और सदा जाग्रत महेन्द्र के नेत्र बन्द हो जाते हैं। ऐसी महाप्रलयकाल की स्थिति में आप श्री के पतिदेव महाशिव ही अकेले जागते—क्रीड़ा करते रहते हैं। यह आपके पातिव्रत्य की ही महिमा है।

रहस्यार्थ—सौभाग्यवृद्धि व साक्षात्कार प्रयोजन सिद्धि का रहस्य यहाँ बताया गया है।

यहाँ बीजाक्षर 'वि' का जप पूर्ववत् 1000 या आहुति 100 या 10, हवन-सामग्री कनेर पुष्प, बेल व खीर ही है। तर्पण मार्जन के उपरान्त श्लोक पाठ 10 व आहुति-2 रहेगी। पूजन-यन्त्र व ध्यान यहाँ दिया जा रहा है।

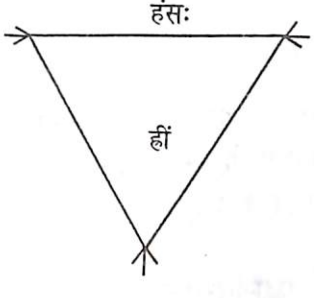

माता के सतीत्व की ही गरिमा है कि प्रलय के पश्चात् जब सभी देव लय को प्राप्त हो जाते हैं, तब भी परम शिव शेष रहते हैं तथा क्रीड़ारत ही होते हैं।

ध्यान में 'व' तथा 'इ' दोनों का मनोयोगपूर्वक स्मरण करें।

व—

कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां पकंजेक्षणाम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरां रत्नहारोज्ज्वलां पराम्।।
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्धसेविताम्।
एवं ध्यात्वा वकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
वकारं चचंलापांगि! कुण्डलीमोक्षमव्ययम्।
पंचप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा।।

त्रिबिन्दुसहितं मन्त्रमात्मादितत्त्वसंयुतम्।
पंचदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लतामयम्।
चतुर्वर्गप्रदं शान्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।

इ—

इकारं परमानन्दं सुगन्धं कुंकुमच्छविः।
हरिब्रह्ममयं वर्णं सदाशिवमयं प्रिये॥
महाशक्तिमयं देवि गुरुब्रह्ममयं तथा।
विश्वत्रयमयं वर्णं परब्रह्मसमन्वितम्॥
उर्ध्वाधः कुब्जितामध्ये रे वा तत्संगता भवेत्।
लक्ष्मीर्वाणी तथेन्द्राणी क्रमात्तास्वेव संवसेत्॥
धूम्रवर्णां महारौद्रीं पीताम्बरयुतां पराम्।
कामदां सिद्धिदां सौम्यां नित्योत्साहविवर्धिनीम्॥
चतुर्भुजां च वरदां हरिचन्दनभूषिताम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां मन्त्रं तु दशधा जपेत्॥

: 27 :

प्रसङ्ग सङ्गति—साधक-जीवन का समग्र कर्म साधनारूप ही होता है। तादात्म्य-प्राप्ति की कोटि में जब साधक पहुँचता है तो उसका दैनिक कर्म भी उपासना का अङ्ग बन जाता है। यह व्यक्त करने के लिए स्तुतिकार आचार्य निवेदन करते हैं—

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्रा-विरचना,
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामः खंवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा,
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।27।।

अवतरणिका—उपासना के समय पूरा कार्यकलाप भगवती की पूजा का ही पर्याय बन जाए। इस भावना से जप, मुद्रा-रचना, प्रदक्षिण, हवन, प्रणाम, आत्मसमर्पण आदि किस रूप में पहुँचे? यह स्पष्ट करते हुए माता से विनम्र निवेदन करते हुए यहाँ कहा गया है कि—

सरलार्थ—हे माता! आपके गुण-कीर्तन के रूप में मेरा परस्पर आलाप ही

आपका जप हो, आपकी सेवा के निमित्त मेरा हस्तशिल्प, कार्य-कलाप सब कुछ आपको प्रदर्शित करनेवाली मुद्राओं के रूप में हो। मेरा इधर-उधर चलना-फिरना आपकी प्रदक्षिणा-रूप बन जाए। मैं जो भोजन में खाना-पीना करता हूँ, वह आपकी आहुति-विधि—होम में दी जानेवाली आहुति का रूप प्राप्त करे। मेरा बैठना और शयन करना आपके चरणों में प्रणाम करना है। इस प्रकार मेरी जो भी प्रवृत्ति, व्यवसाय, बोलना, चलना, बैठना, उठना तथा कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के जो भी क्रिया-कलाप हों, वे सभी पूजा के, सेवा के पर्याय बन जाएँ अर्थात् मन-बुद्धि और देह से होनेवाली सभी क्रियाएँ भगवती की पूजारूप हो जाएँ।

रहस्यार्थ—भगवती त्रिपुरसुन्दरी के उपासकों के सम्प्रदाय-भेदों में 'समयी' और 'कौल' आदि का समावेश होता है। पूज्य आचार्य शङ्कर समयमत के अनुयायी थे। इसी दृष्टि से इस पद्य में समयमत के अनुसार साधना का निर्देश हुआ है। पूजा के 1. बाह्यपूजा और 2. अन्तःपूजा ऐसे दो प्रकार हैं। जो शरीर के अन्दर श्रीचक्र को मानकर उसकी पूजा करते हैं, वे किसी भी प्रकार के भय से ग्रस्त नहीं रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी अमृत पीकर जब भयभीत हो सकते हैं, वहीं भगवान् शिव, विष पीकर भी भयग्रस्त नहीं रहते हैं। यह भगवती के ताटंक की ही महिमा है। यह बात आगे कही जा रही है। यहाँ बीजाक्षर 'ज' है। इसका विधान अन्य बीजाक्षरों के ही समान है। पूजन-यन्त्र इस तरह है।

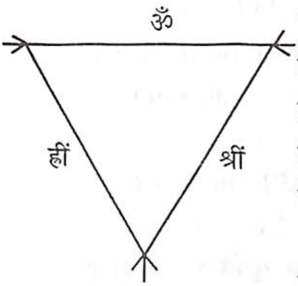

ध्यान मन्त्र श्लोक 23 में दिया जा चुका है। शरीर की सारी क्रियाएँ समर्पण भाव से यदि भगवती को अर्पित होती हैं तो सब कामनाएँ स्वयमेव सफल होती हैं।

: 28 :

प्रसङ्ग सङ्गति—जगज्जननी के पातिव्रत्य के प्रभाव से भगवान् शिव के कालजयी होने में कारणभूत कर्णाभरण ताटङ्क की महिमा यहाँ दर्शित है।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभय-जरा-मृत्यु-हरिणीं,
विपद्यन्ते विश्वे विधि-शतमखाद्या दिविषदः।
करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः काल-कलना,
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि! ताटङ्कमहिमा।।28।।

अवतरणिका—पहले यह व्यक्त किया गया है कि सभी तत्त्व एवं उनकी अधिष्ठात्री देवताओं का सदाशिवतत्त्व में लय होता है, किन्तु सदाशिव तत्त्व कभी किसी में लीन नहीं होते हैं।' इसका मुख्य कारण श्रीत्रिपुरसुन्दरी का प्रभाव ही है। यह अभिप्रायः आचार्यश्री वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—हे जननी! ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवगण भयङ्कर जरा और मृत्यु का हरण करनेवाले अमृत का आस्वादन करके भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अर्थात् उनका अजरत्व-अमरत्व भी काल मर्यादा पूर्ण होने पर काल-कवलित हो जाता है। किन्तु यह काल-बन्धन भगवान् शिव के अत्यन्त भीषण विष के पान कर लेने पर भी उनका मारक नहीं बना, अपितु वे तो अखण्ड अविनाशित्व को प्राप्त हैं। इसका कारण उनकी स्वतः सिद्ध महिमा नहीं है, परन्तु वह आपके सौभाग्यालङ्कार ताटङ्क-कर्णभूषण का ही प्रभाव है। अर्थात् जिसके सौभाग्या- लङ्कार की ही ऐसी महिमा है तो आपकी स्वयं की महिमा कितनी होगी?

रहस्यार्थ—यह मृत्युञ्जय सिद्धि का बीज है। आपके आभूषण रूप ताटङ्क की महिमा से ही शिव का मृत्युञ्जयत्व सिद्ध है।

बीजमन्त्र 'सु' स्पष्ट ही है तथा जपादि विधान सर्वत्र समान ही है। 'स' व 'सु' का ध्यान मिलाकर यहाँ करना चाहिए।

ध्यान—

करीषभूषितांगीं च साट्टहासां दिगम्बरीम्।
अस्थिमाल्यामष्टभुजां वरदामम्बुजेक्षणाम्।।
नागेन्द्रहारभूषाढ्यां जटामुकुटमण्डिताम्।
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदाम्।।
एवं ध्यात्वा सकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
सकारं श्रणु चार्वांगि! शक्तिबीजपरात्परम्।
कोटिविद्युल्लताकारं कुण्डलीमयसंयुतम्।

पञ्चदेवमयं देवि! पञ्चप्राणात्मकं सदा ।।
फरज:सत्त्वतमोयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।।
पीतवर्णां त्रिनयनां पीताम्बरधरां पराम् ।
द्विभुजां जटिलां भीमां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ।।
एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
उकारं परमेशानि! अध:कुण्डलिनी स्वयम् ।।
पीतचम्पकसंकाशं पञ्चदेवमयं सदा ।
पञ्चप्राणमयं देवि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।।

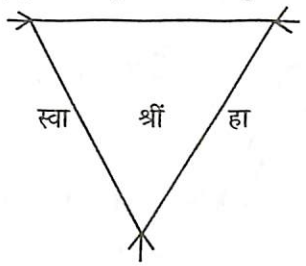

: 29 :

प्रसङ्ग सङ्गति—परमेश्वरी के अनन्त ऐश्वर्य तथा काल से डरे हुए ब्रह्मादि देव भगवती की आराधना के लिए चरणपीठ के समक्ष दण्डवत् प्रणाम हेतु भूमि पर लेटे हैं, उसी समय भगवान् शिव वहाँ भगवती के दर्शनार्थ पधारते हैं ।

किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभभिदः,
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटम् ।
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं,
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ।।29 ।।

अवतरणिका—भगवती स्वाधीन पतिका हैं और भर्तृभक्ति-परायणा हैं, अत: भगवान् शिव के भगवती के भवन में दर्शनार्थ आने पर ताम्बूल, आसन आदि से उनका स्वागत करने के लिए सहसा उठ आगे बढ़ती हैं, उस समय वेत्रधारिणी आदि सेवाओं में नियुक्त वशिन्यादि देवियाँ सविनय कहती हैं ।

सरलार्थ—हे जननी ! (आपके शिरीषपुष्प के समान अति कोमल चरणों को किसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचे, इस दृष्टि से) आपकी परिचारिकाएँ कहती हैं कि—हे राजराजेश्वरी ! आपके कृपाप्रसाद की आकांक्षा से आए ब्रह्मा के किरीट से बचें, कैटभ दानव के नाशक विष्णु के कठोर मुकुट से ठोकर नहीं लग जाए, इंद्र

के मुकुट से बचकर चलें। ये देव आपके चरणों में प्रणाम करने में व्यस्त हैं, इसी समय सहसा भगवान् शिव को अपने भवन में पधारे हुए देखकर आप उनके स्वागतार्थ आगे बढ़ती हैं। उस समय की ये उक्तियाँ विजयिनी हों, उनकी जय हो।

रहस्यार्थ—विजय-प्राप्ति साधक प्रयोजनार्थ प्रयोग प्रतिपादित है। शिवशक्ति के परस्पर दर्शनार्थ का औत्सुक्य विहित है।

बीजाक्षर 'कि' का जप 1000, आहुति 100 या 10, तर्पण मार्जन 10-10 तथा हवन साकल्य बेल, खीर व कनेर पुष्प हैं। श्लोक पाठ 10 व आहुति 2 हैं। पूजन-यन्त्र इस तरह है—

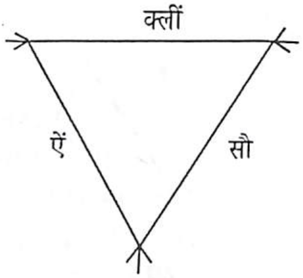

'क' एवं 'इ' का सम्मिलित ध्यान पीछे से देखकर करें। श्लोक 6 का सन्दर्भ देखें।

: 30 :

प्रसङ्ग सङ्गति—तादात्म्य भावना से इष्टदेवता की आराधना करनेवाले साधक को अन्य सभी साधनों की अपेक्षा शीघ्र फलप्राप्ति होती है। इस पद्य में तादात्म्य भावना रूप उपासना की महिमा वर्णित है।

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितो ,
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः।
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो,
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजन-विधिम्॥30॥

अवतरणिका—भगवती-नित्या-आद्यन्तरहित एवं निषेव्या-नित्योपासना-योग्य हैं। जो साधक तादात्म्य भावना से उपासना करता है वह माता की कृपा से शिवजी से भी अधिक समृद्ध होता है।

सरलार्थ—हे षोडशनित्या रूपिणी तथा अपने शरीर से उत्पन्न किरणरूप अणिमादि सिद्धियों द्वारा सेवा के योग्य ! जो साधक आपकी अभेदभावना से 'मैं भगवतीरूप ही हूँ' ऐसा मानकर सदा उपासना करता है, तब भगवान् सदाशिव की समृद्धि को भी तुच्छ माननेवाले उस साधक की यदि प्रलयाग्नि भी आरती उतारती है तो उसमें आश्चर्य क्या है ? अर्थात् अत्यन्त भक्तवत्सला आपकी तादात्म्य भावना प्राप्त समृद्धि के द्वारा शिव के साथ स्पर्धा करनेवाले उस उपासक का कल्पान्त काल की अग्नि भी कुछ न कर सकने की स्थिति में शिव के समान ही उसकी आरती उतार करके स्वयं को कृतार्थ कर लेती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।

रहस्यार्थ—सभी प्रकार की आपत्तियों को दूर करने का अमोघ साधन यहाँ बताया गया है । श्री शक्तियों का विराट व सर्वतोभद्र रूप प्रकट किया गया है । श्रीचक्र यन्त्र साक्षात् श्रीरूप किस तरह होता है, यह स्पष्ट किया है ।

श्रींयन्त्र में आवरण नुपूर में 8 सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व व वशित्व हैं ।

पश्चात् आठ माताएँ—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री अथवा इन्द्राक्षी, चामुण्डा, महालक्ष्मी स्थित हैं ।

सर्वक्षोभिणी, सर्वद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीजा, सर्वयोनि, सर्वत्रिखण्डा ये 10 मुद्राएँ अवस्थित हैं ।

षोडशदल में कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्काराकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, अमृताकर्षिणी, शरीराकर्षिणी ये 16 शक्तियाँ निहित हैं ।

अष्टदल में अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गरेखा, अनङ्गवेगिनी, अनङ्गाकुशा, अनङ्गमालिनी प्रतिष्ठित हैं ।

चतुर्दशार में सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशंकरी, सर्वरंजिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरणी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी हैं ।

बहिर्दशार में—सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियङ्करी, सर्वमंगलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वसौभाग्यदा, सर्वमृत्युप्रशामिनी, सर्वविघ्न-

निवारिणी, सर्वांगसुन्दरी, सर्वदु:खविमोचिनी दृश्य हैं।

अन्तर्दशार में सर्वज्ञा, सर्वशक्तिप्रदा, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वविद्याविकासिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वापहारा, सर्वानन्दमयी, सर्वसत्स्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा स्थित हैं।

अष्टार में वशिनी, कामेशी, मोदिनी, विमला-अरुणा, जयिनी, सर्वेशी कौलिनी।

त्रिकोण में कामेश्वरी वज्रेशी व भगमाला एवं बिन्दु में श्री भगवती त्रिपुरसुन्दरी विराजमान होती हैं। यह श्रीचक्रस्वरूप है। इनका दर्शन, भावना, नमन, पूजन सर्वविधतापोपनाशक है।

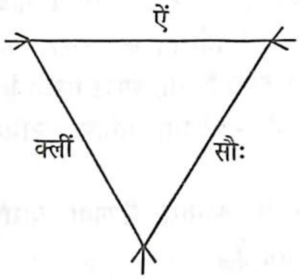

यहाँ बीजाक्षर 'स्व' है। अतः स तथा 'व' दोनों का ध्यान प्रयोज्य है। जपादि विधान पूर्ववत् ही रहेगा। पूजन-यन्त्र यह है।

ध्यान-यन्त्र श्लोक-7 तथा उसे देख लें। पुनरावृत्ति यहाँ अप्रासंगिक होगी।

: 31 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती त्रिपुरसुन्दरी की भक्तवत्सलता के कारण ही पशुपति जब भोगप्रधान एवं वश्याकर्षणादि फलप्रद चौसठ तन्त्रों का निर्माण करके मौन हो गए, तब त्रैपुरदर्शनरूप सर्वार्थप्रद तन्त्र की अवतारणा भगवती के आग्रह से की गई।

चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमभिसन्धाय भुवनं,
स्थितस्तत्तत्सिद्धि-प्रसव-परतन्त्रैः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिल - पुरुषार्थैक - घटना -
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।।31॥

अवतरणिका—भगवती ने शिवजी से प्रार्थना की कि—'हे नाथ! आपने धर्मादि एक-एक पुरुषार्थ के प्रतिपादक तथा एक-दूसरे की अपेक्षा

रखने वाले तन्त्रों का तो उद्घाटन किया, किन्तु अब समस्त पुरुषार्थों को देने में समर्थ हो, ऐसे स्वतन्त्र तन्त्र की अवतारणा कीजिए।' इस प्रार्थना से कृपालु शिवजी ने निखिलतन्त्र-सारभूत स्वतन्त्र कादितन्त्र—श्रीविद्यातन्त्र का प्रकाशन किया।

सरलार्थ—हे त्रिपुरसुन्दरी! आपकी भक्तवत्सलता का कितना वर्णन किया जाए? आपने भक्तजनों के सकल मनोरथ पूर्ण करने के लिए ही भगवान् शिव के द्वारा श्रीविद्यातन्त्र को स्वतन्त्र रूप से साग्रह प्रकट करवाया। क्योंकि समस्त लौकिक पुरुषार्थों की सिद्धि के दाता चौसठ तन्त्रों की अवतारणा करके जगत् को काम्यफलों में प्रवृत्त कर लोकवञ्चनापूर्वक शिवजी मौन हो गए और परम पुरुषार्थ मोक्ष का लाभ करानेवाले तन्त्र को नहीं बतलाया। वह केवल वेदान्त में ही सीमित रहा। तब अपने साधकों और भक्तों के लिए अखिल पुरुषार्थों के साधक तन्त्र के प्रकटन का आपने आग्रह किया और तभी आपके श्रीविद्यारूप स्वतन्त्र तन्त्र को भगवान् ने प्रकट किया।

रहस्यार्थ—सर्वमनोरथसिद्धि का सोपान बताया है। सद्भाव व सद्प्रयोजन, लोक-कल्याणपूर्वक पारलौकिक सुखप्राप्ति ही तन्त्र का परम लक्ष्य है। 64 तन्त्र प्रमुख माने गए हैं। उन्हें भगवती ने अपनी प्रेरणा से भगवान् शिव के स्वरूप से प्रकट करवाया था। शङ्कराचार्यजी ने कौन-से 64 तन्त्रों का उल्लेख उद्भेद यहाँ किया है, यह जानना कठिन है, तथापि वामकेश्वर तन्त्र के प्राचीन टीकाकार लक्ष्मीधर के कथनानुसार 64 तन्त्र इस प्रकार हैं—

1. महामायाशम्बरतन्त्र (दूसरों की बुद्धि बदलना), 2. योगिनीजाल (श्मशान सिद्धि), 3. तत्त्वशम्बर (रूप बदलना), 4. सिद्धभैरव, 5. बटुकभैरव, 6. कंकालभैरव, 7. कालभैरव, 8. कालनेमिभैरव, 9. योगिनीभैरव, 10. महाभैरव, 11. शक्तिभैरव (भूगर्भ पदार्थ ज्ञान), 12. ब्राह्मीतन्त्र, 13. माहेश्वरीतन्त्र, 14. कौमारीतन्त्र, 15. वैष्णवीतन्त्र, 16. वाराहीतन्त्र, 17. माहेन्द्रीतन्त्र, 18. चामुण्डातन्त्र, 19. शिवदूतीतन्त्र (इसमें श्रीविद्या का वेदविरुद्ध वर्णन है), 20. ब्रह्मयामल, 21. विष्णुयामल, 22. रुद्रयामल, 23. लक्ष्मीयामल, 24. उभयामल, 25. स्कन्दयामल, 26. गणेशयामल, 27. जयद्रथयामल, 28. चन्द्रज्ञानतन्त्र, 29. मालिनी विद्या, 30. महासम्मोहन, 31. कापालिक तन्त्र, 32. महादेव अघोरतन्त्र, 33. वातुलतन्त्र, 34. वातुलोत्तरतन्त्र, 35. कामिकातन्त्र, 36. हृद्भेदतन्त्र, 37. तन्त्रभेद,

38. गुह्यतन्त्र, 39. कल्पवादतन्त्र, 40. कलासार, 41. कुण्डिकामत तन्त्र, 42. मतोत्तरतन्त्र, 43. वीणाख्यतन्त्र, 44. भोटल तन्त्र, 45. भोटलोत्तर तन्त्र, 46. पञ्चामृत तन्त्र, 47. रूपभेद तन्त्र, 48. भूतोड्डामरतन्त्र, 49. कुलसारतन्त्र, 50. कुलोड्डीसतन्त्र, 51. कुलचूड़ामणि, 52. सर्वज्ञानोत्तर, 53. महत्कालीतन्त्र, 54. अरुणेशतन्त्र, 55. मोदनीशतन्त्र, 56. विकुण्ठेश्वर तन्त्र, 57. पूर्वाम्नाय तन्त्र, 58. पश्चिमाम्नाय, 59. दक्षिणाम्नाय, 60. उत्तराम्नाय तन्त्र, 61. निरुत्तराम्नाय तन्त्र 62. विमल तन्त्र, 63. विमलोत्तर तन्त्र, 64. देवीमत तन्त्र ।

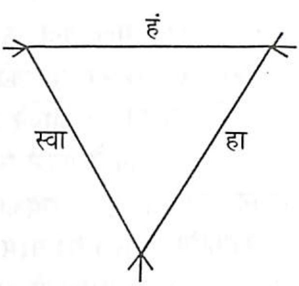

यहाँ बीजाक्षर 'च' है। ध्यानमन्त्र श्लोक 10 में दिया है। हवन जपपाठ पूर्ववत् है। हवन-सामग्री शहद, पंचमेवा व शर्करा है। यन्त्र यहाँ अंकित है—

: 32 :

प्रसङ्ग सङ्गति—देवता मन्त्रमय हैं तथा तन्त्रों में मन्त्र का ही प्राधान्य है। पूर्वोक्त पद्य में भगवती के आग्रह से ही भगवान् शिव ने सभी तन्त्रों में श्रेष्ठ श्रीविद्यातन्त्र की अवतारणा की, यह बतलाया है। अब मन्त्र का निर्देश करते हैं।

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः,
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परा-मार-हरयः।
अमी हल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता,
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि! नामावयवताम्॥32॥

अवतरणिका—मन्त्र एक अत्यन्त गोपनीय तत्त्व है, अतः इसका प्रत्यक्ष कथन न करते हुए आचार्यश्री परोक्षपद्धति से श्रीविद्या-मन्त्र का निर्देश करते हैं।

सरलार्थ—हे जननी, 1. शिव-क, शक्ति-ए, काम-ई, स्थिति-ल,

2. रवि-ह, सोम-स, स्मर-क, हंस-ह, शक्र-ळ; तथा 3. परा-स, मार-क, हरि-ल—इन तीनों के अन्त में हृल्लेखा—ह्रीं के जोड़ने से आपश्री के नामरूप, त्रिकूटात्मक (कादिविद्या) पञ्चदशी-मन्त्र के ये वर्ण हैं। इनका जप करने से साधक का कल्याण होता है।

इसी पद्य के अनुसार 'हादि-विद्या' का उद्धार भी होता है जिसमें शिव-ह, शक्ति-स, काम-क, क्षिति-ल तथा अग्रिम द्वितीय, तृतीय कूटों के अन्त में हृल्लेखा—ह्रीं बीज का योग किया जाता है।

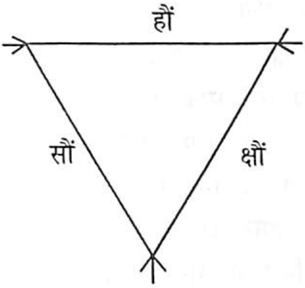

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'शि' है। ध्यान 'श' व 'ई' दोनों का करें। पीछे इनका ध्यान दिया जा चुका है। यन्त्र इस प्रकार है—

श्लोक में पञ्चदशाक्षरी कादिविद्या तथा हादिविद्या का उद्धार बताया है। साथ ही कुम्भक द्वारा कुण्डलिनी जागरण का सङ्केत भी दिया गया है।

कुम्भक द्वारा मूलाधार में इड़ा पिंगला की क्रिया रुकने से अमृतसञ्चय अवरुद्ध होता है तथा कुम्भक की ऊष्मा से त्रिवलयाकारा कुण्डलिनी जागती है। यह सुषुम्णा मार्ग से तीनों ग्रन्थियों को भेदकर सहस्रार तक सीधी अवस्थित हो जाती हैं। तभी परम समाधि की स्थिति आती है।

(क ए ई ल ह्री), (हसकहल ह्री), (सकल ह्री) ये तीन कूटबीज हैं।

क-शिव। ए-शक्ति। ई-काम। ल-क्षिति। ह्री-हृल्लेखा है।

ह-रवि। स-सोम। क-स्मर। ह-हंस। ल-शक्।

ह्री-हृल्लेखा।

स-पराशक्ति। क-मार। ल-हरि। हृल्लेखा ह्रीं है।

ये तीन कूट भगवती श्री के नाम रूप से। यही पञ्चदशाक्षरी विद्या है।

जपबीज 'शि' है। 'श' तथा 'ई' का ध्यान प्रयोज्य है। जपादि पूर्ववत् 1000, 100, 10, 10 रहेगा।

प्रसङ्ग सङ्गति—अक्षरप्रपञ्च और तत्त्वप्रपञ्चों से नामरूपात्मक सर्वविश्वप्रपञ्च का निर्माण होता है। अतः ये अक्षर सर्वविश्व के मूलभूत अक्षर हैं। पूर्वोक्त पन्द्रह अक्षरों में महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप विराजमान है।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो—
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोग-रसिकाः।
भजन्ति त्वां चिन्तामणि-गुण-निबद्धाक्षवलयाः,
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः ।।33 ।।

अवतरणिका—श्रीमन्त्र, श्रीयन्त्र, मातृकाप्रपञ्च, तत्त्वप्रपञ्च, शब्दप्रपञ्च, विश्व-प्रपञ्च, पिण्ड और ब्रह्माण्ड इन सबका परस्पर सम्बन्ध, साम्य तथा ऐक्य पञ्चदशी-मन्त्र के वर्णों में विद्यमान है। इस मन्त्र के जप का फल-निर्देश इस पद्य से दिखलाते हैं। साथ ही मन्त्र के प्रकारान्तर का निर्देश भी करते हैं।

सरलार्थ—हे भगवती! आप अनादि और अनन्त हैं, अतः आपको 'नित्या' कहते हैं। कुछ आपके ज्ञानी भक्त, निःसीम, अनन्त एवं अपरिच्छिन्न निरतिशय आनन्द का रसास्वाद लेने में तत्पर आपके पञ्चदशी महामन्त्र के आरम्भ में स्मर—ऐं, योनि—ह्रीं, तथा लक्ष्मी—श्रीं इन बीजों को पल्लव के रूप में जोड़कर जप करते हैं। अथवा पूर्वोक्त हादि पञ्चदशाक्षरी के आरम्भ में स्मर-क, योनि-ए और लक्ष्मी-ई—इन तीनों अक्षरों को ह-स-क के स्थानों पर रखकर कादि विद्या के रूप में जप करते हैं। इस मन्त्र का जप करनेवाले चिन्तामणि रत्नों से निर्मित माला द्वारा जप करते हुए अपने हृत्कमल रूपी वेदी में स्थापित शिवाग्नि में मन्त्ररूपी कामधेनु के घृत की सैकड़ों धाराओं से आहुति अर्पित करते हैं—आपकी आराधना करते हैं।

यहाँ 'एके' पद से हवनात्मक-जपन का सङ्केत है।

रहस्यार्थ—'स्म' बीजाक्षर है तथा स, म, दोनों का ध्यान योग्य है। श्लोक 8-9 देखें।

श्लोक में 'रसिक' शब्द भगवती के उपासकों के लिए आया है।

र-अग्निबीज, स-शक्तिबीज, **इ-परमानन्दवर्धन,** क-कामबीज, अ-आदिस्वर बीज, विसर्ग-शिवचिद्बीज, तव रसिकाः शब्द निष्पन्न होता है।

कुण्डलिनी के सोते हुए, जिस लक्ष्य में जाग्रत कुण्डलिनी का महानन्द

हो, वह स्थिति **भोगलक्ष्य** है ।

अत: महाभोग रसिका: वे साधक हैं जो प्रसुप्त कुण्डलिनी की अवस्था में ही श्रीशक्ति की कृपा के पात्र होकर महानन्द में मग्न होते हैं ।

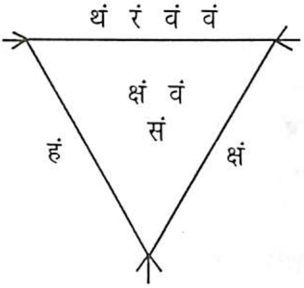

'जुह्वन्त:' इत्यादि से अन्तर्यज्ञ बताया है। सहस्रार की एकाग्रता एकात्मकता से पहले उन्मनी भाव में इसकी पूर्णाहुति होती है।

पूजन-यन्त्र यहाँ अंकित है ।

श्लोकाहुति 3 रहेंगी, यह विशेष है, शेष सब बातें पूर्ववत् ही हैं ।

: 34 :

प्रसङ्ग सङ्गति—नामदृष्टि और रूपदृष्टि से 'परानन्द शिव' और 'परा त्रिपुरसुन्दरी' दोनों पूर्णरूप से समरस हैं। दोनों में मुख्य एवं गौण-भावात्मक सम्बन्ध समान ही है ।

शरीरं त्वं शम्भो: शशि-मिहिर-वक्षोरुहयुगं,
तवात्मानं मन्ये भगवति! नवात्मानमनघम् ।
अत: शेष: शेषीत्ययमुभय-साधारणतया,
स्थित: सम्बन्धो वां समरस-परानन्दपरयो: ।।34 ।।

अवतरणिका—आचार्यश्री भगवती के तथा शिव के एकत्व की पुष्टि करते हुए अपने अभिमत के अनुसार शिवा एवं शिव के ऐक्य को प्रस्तुत करते हैं ।

सरलार्थ—हे सर्वेश्वरी, आप चन्द्र और सूर्यरूप दो स्तनों से मण्डित श्रीशिवदेह ही हो । आपकी दिव्य आत्मा भगवान् शिव की ही आत्मा है, ऐसा मैं मानता हूँ। अत: अत्यन्त शुद्ध एवं प्रतिक्षण नवनवस्वरूपवाले आपके दिव्यदेह में परानन्द-शङ्कर और परा-शक्ति की समरसता है । इस सामरस्य के कारण आप दोनों में कौन गौण है और कौन मुख्य? आप दोनों में परस्पर इतना तादात्म्य है कि आप में वह तादात्म्य-सम्बन्ध समान ही प्रतीत होता है

जोकि अनिर्वचनीय है ।

रहस्यार्थ—श्लोक में भगवान् शिव को 'नवात्मा' कहा गया है। भगवान् शिव का स्वरूप 9 व्यूहरूप है ।

काल, कुल, नाम, ज्ञान, चित्त्, नाद, बिन्दु, कला व जीव ये 9 व्यूह हैं। इसी तरह भगवती भी नवव्यूहात्मिका है । श्रीचक्र में नीचे के त्रिकोणों में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका ये 4 महाशक्तियाँ हैं। ऊपर के त्रिकोणों में इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता, परा ये 5 शक्तियाँ हैं। इस तरह 9 त्रिकोणों के मिलने से शिवशक्त्यात्मक श्रीचक्र (यन्त्र) बनता है। वे दोनों अलग नहीं हैं, पूरक हैं, अपितु समरस ही हैं।

यहाँ बीजाक्षर 'श' है। ध्यान पहले बताया जा चुका है। हवनसामग्री पंचमेवा, शर्करा व मधु हैं। श्लोक आहुति 3 होंगी। शेष जप, हवन पूर्ववत् ही है।

काल—निमेष मात्र से अनन्त काल या महाकाल ।

कुल—इन्द्रधनुष में दृश्य 7 रङ्ग तथा सभी लौकिक रङ्ग ।

नाम—सांसारिक पदार्थों के सभी नाम ।

ज्ञान—स्थूल, सूक्ष्मादि भेद से सभी पदार्थों का ज्ञान ।

पूजन यन्त्र

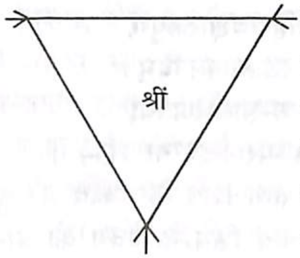

चित्त—अहङ्कार, चित्त्, बुद्धि, महत्, मन ।

नाद—परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी आदि सभी ध्वनियाँ (वाणी) ।

बिन्दु—षट्चक्र मूलाधारादि 6 चक्र ।

कला—सभी विधियाँ व वर्णमाला ।

जीव—जीवात्मा ।

: 35 :

प्रसङ्ग सङ्गति—शिव के साथ समरस होकर परमानन्द का अनुभव करनेवाली भगवती विश्वरूप में कैसे परिणत होती है ? यह अग्रिम पद्य से व्यक्त करते हुए भगवती की अशेष तत्त्वस्वरूपात्मक परिणति को बतलाते हैं।

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे ।।35 ।।

अवतरणिका—'भगवती अष्टमूर्ति स्वरूप हैं तथा किसी अन्य की अपेक्षा के बिना स्वेच्छा से ही वह स्वयं को चिदानन्दाकार में परिणत करती है' इस दृष्टि से उसकी विश्वस्वरूपता प्रकट करते हैं।

सरलार्थ—हे माता शिवयुवति ! आप मन हैं, आप आकाश हैं, आप वायु हैं और आप वायु जिसका सारथि है ऐसी अग्नि हैं, आप जल हैं तथा आप ही पृथ्वी हैं। इस प्रकार आपके परिणत होने पर आप में और विश्व में कुछ भी अन्तर नहीं रहता। इस प्रकार आप विश्वरूप शरीर से परिणत होने के लिए स्वेच्छा से चिद्रूप एवं आनन्दरूप को धारण करती हैं।

रहस्यार्थ—यहाँ भगवती की सर्वव्यापिनी अष्टमूर्तियों का भाव है। सूर्य, चन्द्र, मन, पृथ्वी, तेज, वायु, आकाश इनसे विश्वेश्वरी का चिदानन्दकायक भाव ओतप्रोत है।

यह आज्ञाचक्र में मन व बुद्धिरूप से, विशुद्धचक्र में आकाश व वायुरूप से, अनाहत में अग्नि व लौकिक वायु रूप से, मणिपूर में अग्नि रूप से, स्वाधिष्ठान में जलरूप से तथा मूलाधार में भूरूप से व्याप्त है।

पूजा यन्त्र

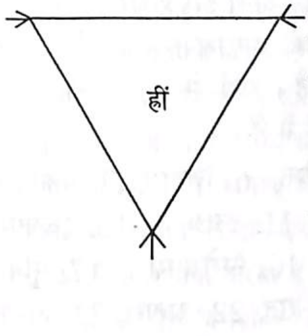

यही शक्ति प्राज्ञ, विराट, विश्वतैजस, हिरण्यगर्भ में व्यापक है। सर्वमयी, सर्वकर्त्री, पालयित्री व संहारिका है।

बीजाक्षर 'म' का ध्यान पहले श्लोक 9 में आ चुका है। शेष सभी विधि पहले श्लोक की तरह ही रहेगी।

: 36 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती विश्व में, षट्तत्त्वों में किस प्रकार परिणत हुई है, यह

स्पष्ट करने की दृष्टि से प्रस्तुत पद्य एवं अग्रिम पाँच पद्यों में वर्णन किया जा रहा है।

तवाज्ञाचक्रस्थं तपन-शशि-कोटिद्युतिधरं,
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।
यमाराध्यन् भक्त्या रवि-शशि-शुचीनामविषये,
निरालोकेऽलोके निवसति हि भालोकभुवने।।36।।

अवतरणिका—शरीरगत मूलाधारादि छः चक्रों को ही षट्तत्त्वरूप माना गया है। उनमें आज्ञाचक्र मनस्तत्त्वात्मक है जोकि सबसे सूक्ष्म है। इस चक्र में भगवती उपासकों के साधन-सौन्दर्य के लिए शम्भु और परचित् रूप में मूलतः शिवशक्तिरूप से स्थित हैं, यह यहाँ व्यक्त किया गया है—

सरलार्थ—हे भगवती, आपके लीलादेह में स्थित आज्ञाचक्र में विराजमान कोटि सूर्य तथा चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, वामपार्श्वगत परचिच्छक्ति सहित उन महाशिव को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ जिनकी भक्तिपूर्वक आराधना करनेवाला भक्त जहाँ सूर्य, चन्द्र और अग्नि के प्रकाश का भी प्रवेश नहीं है ऐसे उत्तम प्रकाश और आनन्दमय लोक में बिना किसी आतङ्क के निवास करता है।

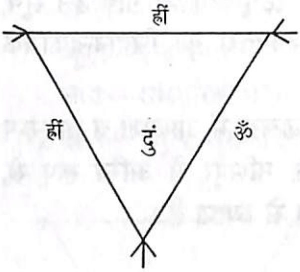

रहस्यार्थ—जपविधान पिछले श्लोक की तरह ही है। अन्य इस प्रकार है।

महाशिव चित्पराम्बापरचिताचित्पराम्बा की आराधना बताई है। इनकी सपर्या 64 मानस मयूखाओं के साथ होती है। यहाँ से 41वें श्लोक तक षट्चक्रों का ध्यानक्रम वर्णित है। 64 मयूखाएँ ये हैं—

1. पर, 2. परा, 3. भर, 4. भरा, 5. चित्त्, 6. चित्परा, 7. महामाया, 8. महामायापरा, 9. सृष्टि, 10. सृष्टिपरा, 11. इच्छा, 12. इच्छापरा, 13. स्थिति, 14. स्थितिपरा, 15. विरोध, 16. निरोधपरा, 17. मुक्ति, 18. मुक्तिपरा, 19. ज्ञान, 20. ज्ञानपरा, 21. सत्, 22. सत्परा, 23. असत्, 24. असत्परा, 25. सदसत्, 26. सदसत्परा, 27. क्रिया, 28. क्रियापरा, 29. आत्मा, 30. आत्मपरा, 31. इन्द्रियाश्रय, 32. इन्द्रियाश्रयपरा, 33. गोचर, 34. गोचरपरा, 35. लोकमुख्या, 36. लोकमुख्यपरा, 37. वेदवत्,

38. वेदवत्परा, 39. संविद्, 40. संवित्परा, 41. कुण्डलिनी, 42. कुण्डलिनीपरा, 43. सौषुम्नी, 44. सौषुम्नीपरा, 45. प्राणसूत्रा, 46. प्राणसूत्रपरा, 47. स्पन्द, 48. स्पन्दपरा, 49. मातृका, 50. मातृकापरा, 51. स्वरोद्‌भवा, 52. स्वरोद्‌भवपरा, 53. वर्णजा, 54. वर्णजापरा, 55. शब्दजा. 56. शब्दजापरा, 57. वर्णज्ञा, 58. वर्णज्ञापरा, 59. वर्गजा, 60. वर्गजापरा, 61. संयोगजा, 62. संयोगजापरा, 63. मन्त्रविग्रहा, 64. मन्त्रविग्रहपरा।

: **37** :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के लीलारूप देह में विशुद्धि-चक्र के अधिष्ठानभूत शिव-शक्ति की स्तुति करते हुए आचार्यश्री आकाशतत्त्व के जनक व्योमेश्वर एवं व्योमेश्वरी की महिमा प्रकट करते हैं।

विशुद्धौ ते शुद्ध-स्फटिक-विशदं व्योम-जनकं,
शिवं सेवे देवीमपि शिव-समान-व्यवसिताम्।
ययोः कान्त्या यान्त्याः शशिकिरण-सारूप्यसरणे—
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ।।37।।

अवतरणिका—सोलह पत्रों से युक्त कमलाकृति कण्ठस्थ विशुद्धिचक्र में स्थित निर्मल आकाश के उत्पादक भगवान् शिव और उनके समान ही सृष्टि स्थिति, संहारादि करनेवाली भगवती की आराधना हेतु भक्ति व्यक्त करके उनके वैशिष्ट्य को परिलक्षित करते हैं।

सरलार्थ—हे माता! आपके कण्ठभाग में विराजमान विशुद्धि चक्र में अति निर्मल स्फटिक के समान विशुद्ध, आकाश के जनक, भगवान् सदाशिव तथा उन्हीं के समान चिदानन्दमहाकाश की परम्परा को प्रसृत करनेवाली भगवती की मैं आराधना करता हूँ। जिन आप दोनों की चन्द्रमा की किरणों के सदृश कान्ति से यह जगती—समस्त पृथिवी आन्तरिक अन्धकार से रहित होकर चकोरी के समान आनन्दित हो रही है।

रहस्यार्थ—विशुद्धि चक्र में आकाश तत्त्व को उत्पन्न करनेवाले भगवान् शिव के साथ अर्धनारीश्वर भाव से आराधना का विषय स्फुट है। व्योमेश्वर

व व्योमेश्वर्यम्बा देवता है। इनकी आराधना 72 नाभस् (आकाशीय) मयूखाओं के साथ की जाती है—

1. हृदया, 2. कौलिनी, 3. धरा, 4. कान्ता, 5. भोगा, 6. विश्वा, 7. भया, 8. योगिनी, 9. महा, 10. ब्रह्मसारा, 11. श्बा, 12. शाबरी, 13. द्रवा, 14. कलिका, 15. रसा, 16. जुष्टाचाण्डाली, 17. मोहा, 18. अघोरेशी, 19. मनोभवा, 20. हेला, 21. केका, 22. महारक्ता, 23. ज्ञानगुह्या, 24. कुब्जिका, 25. खरा, 26. डाकिनी, 27. ज्वलना, 28. शाकिनी, 29. महाकुला, 30. लाबिनी, 31. भिदोज्ज्वला, 32. काकिनी, 33. तेजसा, 34. शाकिनी, 35. मूछ्र्ना, 36. हाकिनी, 37. वामू, 38. पापघ्नी, 39. कुल्य, 40. सिंही, 41. संहारा, 42. कुलाम्बिका, 43. विश्वम्भरा, 44. कामा, 45. कौटिला, 46. कूतमाता, 47. गालवा, 48. ककांटि, 49. व्योमा, 50. व्योमचारा, 51. श्वसना, 52. नादा, 53. खेचरी, 54. महादेवी, 55. बहुला, 56. महत्तरी, 57. तारा, 58. कुण्डलिनी, 59. कुलातीता, 60. कुलेशी, 61. अजा, 62. ईधिका, 63. अनन्ता, 64. दीपिका, 65. एषा, 66. रेचिका, 67. शिखा, 68. मोचिका, 69. परमा, 70. परा, 71. परपरा, 72. चित ।

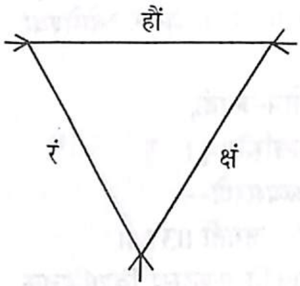

बीजाक्षर 'वि' व ध्यान व+इ का करें। शेषविधि पहले की तरह ही है।

: 38 :

प्रसङ्ग सङ्गति—तृतीय द्वादशदल-कमलात्मक 'अनाहत' चक्र में विराजित हंसेश्वर एवं हंसेश्वरी युगल का स्मरण करते हुए उनके आलाप से उद्भूत अष्टादशविद्याओं तथा नीरक्षीर-विवेकरूप गुण को व्यक्त करते हैं।

समुन्मीलत्संवित्-कमल-मकरन्दैक-रसिकं ,
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।

यदालापादष्टादशगुणित-विद्या-परिणति—
र्यदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्‌भ्यः पय इव।।38॥

अवतरणिका—षट्‌तत्त्वात्मक चक्रों के चिन्तन में विभिन्न नामरूपों से विराजमान परमशिव एवं आदिमात्रा के सामरस्य प्राप्त स्वरूप के प्रति अपनी विनम्र प्रणति अर्पित करते हुए शिवशक्त्यात्मक हंसयुगल की विशिष्टता निरूपित करते हैं।

सरलार्थ—हे शिवशक्तिस्वरूपिणी माता! मैं आपके हृदयस्थल में विकसित होनेवाले, आत्मज्ञानप्रद, महान् उपासकों के मनोरूप मानस सरोवर में विहार करनेवाले तथा संवित्कमल के मकरन्द का आस्वाद लेकर आनन्दित रहनेवाले उस हंसयुगल—शिवशक्तिरूप हंसेश्वर एवं हंसेश्वरी की आराधना करता हूँ—जिन हंसदम्पती के परस्पर आलाप से अठारह विद्याओं की परिणति होती है और जैसे हंस जलमिश्रित दूध से दूध को पृथक् कर देता है उसी प्रकार यह जोड़ा दोष और गुणों के मिश्रण से सभी गुणों को पृथक् कर देता है।

रहस्यार्थ—यहाँ बीजाक्षर 'स', जप 1000, आहुति 100 या 10, तर्पण मार्जन 10-10, श्लोक-पाठ 10, श्लोकाहुति 3 हैं। सामग्री मधु, शर्करा, पंचमेवा व कल्हार पुष्प (जूही, चमेली आदि) है। यन्त्र दिया जा रहा है। ध्यान पीछे आ चुका है।

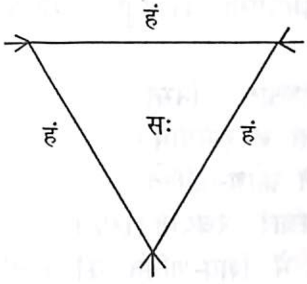

यहाँ अनाहत चक्र का वर्णन किया है। 'हंसद्वन्द्व' में 'हंसः सोहं' से सम्पुट करके त्रिकूट का जप अनाहत चक्र में विहित है।

मानसरूपी सरोवर से शिवशक्ति संवाद रूप आगम प्रकट हुए हैं। 18 विद्याएँ—10 महाविद्या व 8 शक्ति मिलकर होती हैं। लौकिक विद्याएँ—4 वेद, 6 वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष) मीमांसा, न्याय, सांख्य, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, शिल्प, धनुर्वेद (युद्धविद्या) व गान्धर्ववेद (संगीत-विद्या) ये 18 विद्याएँ हैं।

ध्यान में हंसेश्वर व हंसेश्वर्यम्बा का स्मरण करें। इनका स्मरण 54 वायव्य मयूखाओं के साथ होगा। चित्शक्ति के स्पन्दन से इस महाविश्व

में प्रतिक्षण अणुओं में निर्माण क्रिया होती रहती है। उस अवर्णनीय महाशक्ति की स्थिति इस महाविश्व में सर्वत्र है। मयूखाओं के नाम ये हैं—

1. खगेश्वरी, 2. भद्रा, 3. कूर्मा, 4. आधारा, 5. मेषा, 6. कोषा, 7. मीना, 8. मालिका, 9. ज्ञाना, 10. विमला, 11. महानन्दा, 12. शर्वरी, 13. तीव्रा, 14. लीला, 15. प्रिया, 16. कुमुदा, 17. कालिका, 18. मेनका, 19. डामरा, 20. डाकिनी, 21. कामदा, 22. राकिनी, 23. लामरा, 24. लाकिनी, 25. कामरा, 26. काकिणी, 27. सामरा, 28. शाकिनी, 29. हामरा, 30. हाकिनी, 31. आधारेशा, 32. राका, 33. चक्रेशा, 34. बिन्दुस्था, 35. कुकुरा, 36. कुला, 37. मायाश्रीशा, 38. कुब्जिका, 39. हृदीशा, 40. कामकला, 41. शिरसा, 42. कुलदीपिका, 43. शिक्षेशा, 44. सर्वेशा, 45. वरदा, 46. बहुरूपा, 47. अश्लेषा, 48. महत्ता, 49. परहा, 50. मंगला, 51. पराधिष्ठाना, 52. परकर्मिणी, 53. देवपूज्या, 54. रमा।

: 39 :

प्रसङ्ग सङ्गति—स्वाधिष्ठान-चक्र में स्थित अग्नि का आश्रय लेकर भगवान् संवर्तेश्वरनाथ रुद्र एवं महामाया भगवती 'समयाम्बा' की स्तुति करते हुए प्रस्तुत चक्र की महत्ता प्रदर्शित करते हैं—

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं,
तमीडे संवर्तं जननि! महतीं तां च समयाम्।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोध-कलिते,
दयार्द्रा या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति।।39॥

अवतरणिका—प्रत्येक शरीरस्थ चक्र में शिव-शक्ति की स्थिति विभिन्न रूप में विराजमान है। पूर्वोक्त चक्र के अवतरण-क्रम में अनाहत चक्र का स्मरण हुआ है, तदनन्तर प्रचलित-क्रमानुसार 'मणिपूर' चक्र की स्थिति मान्य है, किन्तु यहाँ आचार्यप्रवर ने पहले स्वाधिष्ठान की स्थिति मानी है। तदनुसार उसमें स्थित सामरस्य प्राप्त संवर्तेश्वरनाथ और समयाम्बा की स्तुति करने तथा उनके वैशिष्ट्य का वर्णन यहाँ किया जा रहा है—

सरलार्थ—हे भगवती! आपके स्वाधिष्ठान-चक्र में अग्नितत्त्व को अपने प्रभाव में रखने के लिए जो संवर्ताग्नि रहता है और उसके वामभाग में

जो समयादेवी स्थित है, उन दोनों की मैं स्तुति करता हूँ। जिस समय परम क्रोध से पूर्ण संवर्तेश्वर के तेज से समस्त लोक जल जाते हैं, उस समय आपकी दयापूर्ण दृष्टि उन जले हुए लोकों को शीतल बना देती है। अर्थात् जले हुए जगत् को आपकी दृष्टि पुनः सजीव बना देती है।

रहस्यार्थ—भगवान् संवर्तेश्वर व समयाम्बा की आराधना 62 तैजस् मयूखाओं के साथ होती है।

1. परत्परा, 2. चण्डेशवरा, 3. परमा, 4. चतुष्मती, 5. तत्परा, 6. गुह्यकाली, 7. अपरा, 8. संवर्ता, 9. चिदानन्दा, 10. नीलकुब्जा, 11. अघोरा, 12. गन्धा, 13. समरसा, 14. रसा, 15. ललिता, 16. समरा, 17. स्वच्छा, 18. स्पर्शा, 19. भूतेश्वरा, 20. राका, 21. आनन्दा, 22. डाकिनी, 23. प्रभानन्दा, 24. आलस्या, 25. रत्नडाकिनी, 26. चक्रडाकिनी, 27. योगानन्दा, 28. पद्मडाकिनी, 29. अतीता, 30. कुब्जडाकिनी, 31. स्वादा, 32. प्रकण्डडाकिनी, 33. योगेश्वरा, 34. चण्डा, 35. पीठेश्वरा, 36. कोशला, 37. कुलकौलेश्वरा, 38. पावनी, 39. कुक्षेश्वरा, 40. समया, 41. श्रीकण्ठा, 42. कामा, 43. अनन्ता, 44. रेवती, 45. शांकरा, 46. ज्वाला, 47. पिंगला, 48. कराला, 49. मदाख्या, 50. कुब्जिका, 51. करालरात्रिगुरु, 52. परा, 53. सिद्धागुरु, 54. शान्त्यातीता, 55. रत्नगुरु, 56. शान्ता, 57. शिवागुरु, 58. विद्या, 59. मेलगुरु, 60. प्रतिष्ठा, 61. समयागुरु, 62. निवृत्ति।

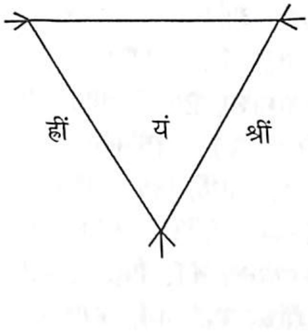

बीजाक्षर 'त' है। जप आहुति पूर्ववत् पिछले श्लोकानुसार करें। पूजन यन्त्र यह है—

:40 :

प्रसङ्ग सङ्गति—'मणिपूर' नामक पाँचवें चक्र में स्थित भवानी सहित श्रीसदाशिव की सौदामिनी और मेघेश्वर के रूप में स्तुति करते हैं—

तडित्त्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थि-स्फुरणया,
स्फुरन्नानारत्नाभरण - परिणद्धेन्द्रधनुषम्।

तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैक-शरणं,
निषेवे वर्षन्तं हर-मिहिरतप्तं त्रिभुवनम्।।40॥

अवतरणिका—आचार्यप्रवर मणिपूर में विराजमान अमृतेश्वर शिव तथा अमृतेश्वरी भगवती के प्रति भक्ति व्यक्त करते हुए उनकी महिमा का वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—भगवती आपके स्वरूप में स्फुरण करती हुई तिमिरहरा विद्युत लसित है, आपके उसी स्वरूप की आराधना करता हूँ, जो मेघवत् श्याम रूप स्वाधिष्ठान चक्र में सदा विराजमान है। आपके दिव्य रत्नजटित मुकुट आदि की प्रभा, वहाँ इन्द्रधनुष के समान चमक रही है और अग्नि व सूर्य से तप्त त्रिभुवन पर वहाँ से अमृतधारा बरसती है।

रहस्यार्थ—देवेश्वर मेघेश्वर व अमृतैश्वर्यम्बा के रूप में भगवान् शिव व भवानी की स्तुति है। इनकी स्तुति 52 जल मयूखाओं के साथ की जाती है।

1. सद्योजाता, 2. माया, 3. वामदेवा, 4. श्री, 5. अघोरा, 6. पद्मा, 7. तत्पुरुषा, 8. अम्बिका, 9. अनन्ता, 10. निवृत्ति, 11. अनाशा, 12. प्रतिष्ठा, 13. जनाश्रिता, 14. विद्या, 15. अचिन्त्या, 16. शान्ता, 17. शशिशेखरा, 18. उमा, 19. तीव्रा, 20. गङ्गा, 21. मणिवाहा, 22. सरस्वती, 23. अम्बुवाहा, 24. कमला, 25. तेजोधीशा, 26. पार्वती, 27. विद्यावागीश्वरा, 28. चित्रा, 29. चतुर्विधेश्वरा, 30. सुकमला, 31. उमागङ्गेश्वरा, 32. मन्मथा, 33. कृष्णेश्वरा, 34. श्रीया, 35. श्रीकान्ता, 36. लया, 37. अनन्ता, 38. सती, 39. शंकरा, 40. रत्नमेखला, 41. पिङ्गला, 42. यथोवती, 43. साध्याख्या, 44. हंसानन्दा, 45. परदिव्यायुगा, 46. वामा, 47. मारदिव्यायुगा, 48. ज्येष्ठा, 49. पीठायुगा, 50. रौद्री, 51. सर्वेश्वरा, 52. सर्वमयी।

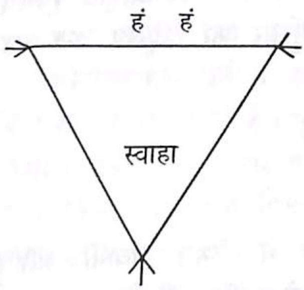

बीजाक्षर 'त' है। सब विधान पिछले श्लोक की तरह है। पूजन-यन्त्र प्रस्तुत है—

प्रसङ्ग सङ्गति—मूलाधार चक्र में ताण्डवपरायण भगवान् नटेश्वर तथा लास्यरत भगवती श्री की आराधना नमस्कारादि किया गया है—

तवाधारे मूले सह समयया लास्य-परया,
नवात्मानं मन्ये नवरस-महाताण्डव-नटम्।
उभाभ्यामेताभ्यामुदय-विधिमुद्दिश्य दयया,
सनाथाभ्यां जज्ञे जनक-जननीमज्जगदिदम्।।41।।

अवतरणिका—भगवत्पाद शङ्कराचार्य शिव-शक्ति की एकता को समस्त भुवनों का उत्पत्ति हेतु प्रतिपादित कर रहे हैं।

सरलार्थ—नवरसमय महाताण्डव करते हुए भगवान् नटेश्वर शिव जो आदिनट हैं व भगवती श्रीसमया जो साथ लास्यरत हैं, उन्हें ऐक्य भाव से ध्यान करता हूँ। नमस्कार करता हूँ। आपसे ही यह जगत् सनाथ, माता-पिता से युक्त है। आपकी विश्वकल्याणकारिणी दया से ही समस्त संसार का अस्तित्व है।

रहस्यार्थ—शिव-शक्ति दोनों ही अधिष्ठान, आस्थान अनुष्ठान, रूप, गुण, नाम सब में एक ही हैं। जब भगवान् आदिनट ताण्डवरत होते हैं तो लास्येश्वरी भगवती महाशक्ति लास्य में रत हो जाती हैं। नृत्य की परमावस्था में आप दोनों समरसता में समा जाते हैं तथा विश्वसृष्टि होती है। उनकी स्तुति आराधना 56 पार्थिव (भूमिमय) मयूखाओं के साथ होती है। 1. उड्डीश्वर, 2. उड्डीश्वरी, 3. जलेश्वर, 4. जलेश्वरी, 5. पूर्णेश्वर, 6. पूर्णेश्वरी, 7. कामेश्वर, 8. कामेश्वरी, 9. श्रीकण्ठ, 10. गङ्गा, 11. अनन्ता, 12. स्वरसा, 13. शङ्करा, 14. मति, 15. पिङ्गला, 16. पातालदेवी, 17. नारदाख्या, 18. नादा, 19. आनन्दा, 20. डाकिनी, 21. आलस्या, 22. शाकिनी, 23. अतीता, 24. साकिनी, 25. त्रिपदा, 26. हाकिनी, 27. आधारेशा, 28. रक्ता, 29. चक्रीशा, 30. चण्डा, 31. कुरंगीशा, 32. कराला, 33. मदछुशा, 34. महोच्छुष्मा, 35. महानन्दा, 36. काकिनी, 37. योग्या, 38. काकिनी, 39. अनादिविमला, 40. मातङ्गी, 41. सर्वज्ञाविमला, 42. पुलिन्दा, 43. योगविमला, 44. शम्बरी, 45. सिद्धविमला, 46. वाचापरा, 47. समयविमला, 48. कुलालिका, 49. मित्रेशा, 50. कुब्जा, 51. उड्डीशा, 52. लब्धा, 53. षष्ठीशा, 54. कुलेश्वरी, 55. चर्याधीश, 56. अजा।

ताण्डव नृत्य लयात्मक व लास्य सृजनात्मक होता है। नृत्य की पराकाष्ठा

शिव-शक्ति के ऐक्य में सम्पन्न होती है। शरीर के 6 चक्रों के अनुसार यह समस्त ब्रह्माण्ड भी षट्चक्र व श्रीचक्र (यन्त्र) रूप में बँटा हुआ है।

लोक	चक्र	ग्रह	श्रीचक्र
भूर्लोक	मूलाधार	पृथ्वी	भूपुर
भुवर्लोक	स्वाधिष्ठान	अन्तरिक्ष	16 दल कमल
स्वर्लोक	मणिपूर	सौरमण्डल केन्द्र	8 दल कमल
महः	अनाहत	तदुपरि गुरु	14 त्रिकोण
जनः	विशुद्ध	शनिलोक	दोनों दशार
तपः	आज्ञा	नक्षत्रलोक	अष्टार
सत्यं	सहस्रार	नक्षत्रोपरिलोक	मूल-त्रिकोण
	बिन्दु	चिच्छक्ति केन्द्र	

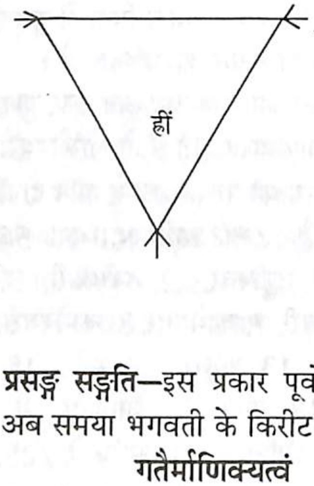

बीजाक्षर 'त' है। ध्यान पीछे श्लोक 2 में है। जपादि विधि पूर्ववत् है।

: 42 :

प्रसङ्ग सङ्गति—इस प्रकार पूर्वोक्त पद्यों में समयमत का विस्तार समझाकर अब समया भगवती के किरीट आदि का क्रमशः वर्णन करते हैं—

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं,
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते! कीर्तयति यः।
स नीडेयच्छायाच्छुरण-शबलं चन्द्रशकलं,
धनुः शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम् ॥42॥

अवतरणिका—भगवती के किरीट की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उस सुन्दर मुकुट में द्वादश सूर्यों के जड़े हुए होने से माणिक्य रत्नों की गोलाकार छाया से मिश्रित, सोने का वह मुकुट चन्द्रकलश की श्वेत छाया से विविध रंग का बन जाता है, जिसे देखकर यह इन्द्रधनुष है, क्या ऐसी बुद्धि

नहीं होती है? इस प्रकार मुकुट में सुवर्ण, माणिक्य, चन्द्रमा और केशों की प्रतिच्छाया से उसे इन्द्रधनुष समझने की मति होने की सभी को आशङ्का होती है, यह व्यक्त करते हैं।

सरलार्थ—हे माता! हिमगिरिसुता! आपके सुवर्ण-निर्मित मुकुट का वर्णन करने की इच्छा से यदि कोई भावना करे तो उसे ऐसा लगेगा कि तारागणरूपी मणियाँ जड़ी हुई हैं और चन्द्रमा के टुकड़ों से बने हुए पक्षी घोंसले के समान प्रतीत होते हैं। यह उषः काल के प्रकाश में रंग-बिरंगा चमक रहा है।

रहस्यार्थ—यहाँ से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के पावन शरीराङ्गों का वर्णन किया जा रहा है। यहाँ भगवती के मुकुट का वर्णन है। नक्षत्रगण उस दिव्य आधिदैविक मुकुट के मणिरूप हैं तथा चन्द्रमा आदि ग्रह उसी में जटित हैं। इन्द्रधनुष के रंगों से रँगा यह दिव्य मुकुट प्रातःकालीन सूर्यातप से सुवर्णाभ ही है। भगवती के विश्वरूप का उपक्रम किया जा रहा है।

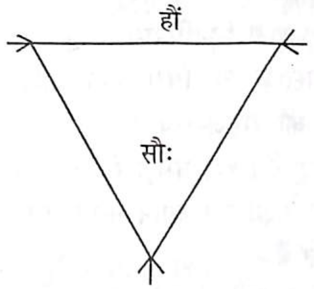

किरीट नमस्कार मन्त्र '**श्रीं ह्रीं श्रीं हिरण्यकिरीटाय, कोट्यादित्यतेजसे नमः**'। यह है।

बीजाक्षर 'ग'। जप-संख्या पूर्ववत्, 1000, आहुति 100 या 10, तर्पण मार्जन 10-10, श्लोक पाठ 10, श्लोक आहुति 3 तथा हवन-सामग्री पंचमेवा, मधु, शर्करा व चमेली हैं। समृद्धि प्राप्ति का वह बीज है।

ध्यान-मन्त्र

दाडिमीपुष्पसंकांशां चतुर्बाहुसमन्विताम्।
रक्ताम्बरधरां नित्यां रक्तालङ्कारभूषिताम्॥
एवं ध्यात्वा गकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
पंचप्राणमयं वर्णं सर्वशक्त्यात्मकं प्रिये॥
तरुणादित्यसंकाशां कुण्डलीं प्रणमाम्यहम्।
अग्राकुञ्चितरेखा या गणेशी सा प्रकीर्तिता॥

ततो दक्षगता या तु कमला तत्र संस्थिता।
अधोगता गता या तु तस्यामीशः सदा वसेत्॥

: 43 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के घने और चिकने केशसमूह का ध्यान करते हुए उनकी घनता, स्निग्धता, अविरलता एवं सहज सुगन्धमयता का वर्णन करते हुए उस केशपाश में नन्दनवन के कल्पवृक्षों के पुष्पों की स्थिति की उत्प्रेक्षा करके अपने आन्तरिक अन्धकार के नाश की कामना करते हैं—

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलित-दलितेन्दीवर-वनं,
घनस्निग्धं-श्लक्ष्णं चिकुर-निकुरम्बं तव शिवे !
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो
वसन्त्यस्मिन् मन्ये बलमथन-वाटी-विटपिनाम्।।43 ।।

अवतरणिका—भगवती के भव्य मस्तक पर विराजमान केश-समूह नील-कमल के समान हैं। उसकी सुगन्ध को सहज-रूप से प्राप्त करने के लिए इन्द्र के नन्दनवन के पुष्प वहाँ आ गए हैं। इस प्रसङ्ग से माता के घने, काले, चिकने और पुष्पों के साथ गुँथे हुए केशों का ध्यान करते हुए अपने अज्ञानान्धकार को दूर हटाने की प्रार्थना करते हैं—

सरलार्थ—हे माता ! आपके विशाल मस्तक पर शोभायमान केशों का समूह ऐसा प्रतीत होता है कि वह घना, स्निग्ध और चिक्कण और खिले हुए नीलकमलों का वन हो जिसकी सुगन्ध को सहजरूप से प्राप्त करने के लिए इन्द्र की वाटिका के पुष्प स्वयं को सुगन्धित बनाने के लिए वहाँ आकर बस गए हों। ऐसा परम सुगन्धयुक्त आपका घना केशपाश हमारे अज्ञान अन्धकार को दूर हटा दे।

रहस्यार्थ—भगवती के केशपाश, चिकुरनिकर का वर्णन किया गया है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार के माध्यम से घने काले केशपाश से अज्ञानान्धकार को दूर करने की प्रार्थना की गई है। यह विरोध भी रम्य है। काले केशपाश जो स्वयं अन्धकार प्रतिम हैं, वे अज्ञान के अँधेरे को दूर करने में सक्षम हैं। विरोधी धर्म भी जहाँ एकरूपता व भेद को छोड़ देते हैं, यही भगवती का परमहात्म्य है।

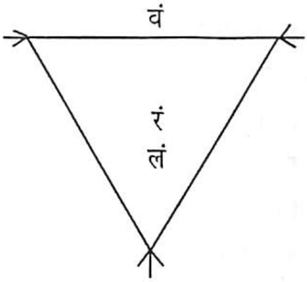

बीजाक्षर 'धु' है। ध्+उ का सम्मिलित ध्यान करें। जपादि विधान सब पूर्ववत् है।

ध्यान

षड्भुजां मेघवर्णां च रक्ताम्बरधरां पराम्।
वरदां शुभदां रम्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्॥
एवं ध्यात्वा धकारं तु मन्त्रं च दशधा जपेत्।
त्रिकोणरूपरेखायां त्रयो देवा वसन्ति च॥
विश्वेश्वरी विख्याता विश्वधारिणीति च॥

'उ' का ध्यान श्लोक 8 के सन्दर्भ में देख लें।

: 44 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता त्रिपुरसुन्दरी के केशों में बँधे हुए जूड़े और मध्य में निकली हुई माँग के सिन्दूर एवं प्रदीप्त मुखकान्ति का चित्रण प्रस्तुत करते हुए आचार्य अपने कुशल-क्षेम की कामना करते हैं—

वहन्ती सिन्दूरं प्रबल-कबरीभार-तिमिर—
द्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्क-किरणम्॥
तनोतु क्षेमं नस्तव वदन-सौन्दर्य-लहरी—
परीवाह-स्रोतः सरणिरिव सीमन्त-सरणिः ॥44 ॥

अवतरणिका—जगदम्बा त्रिपुर-सुन्दरी के केश-समूह की सुन्दरता और मुख-कमल की रुचिरता से बहती हुई सौन्दर्य-लहरी के प्रवाह एवं केशों में बनी हुई सिन्दूरभरी माँग की अनुपमता की उत्प्रेक्षा करते हुए अपने कुशल-क्षेम की कामना करते हैं—

सरलार्थ—हे माता ! आपके मुख-कमल के सौन्दर्य से बहनेवाली सौन्दर्य की तरङ्गों का प्रवाह तथा सीमन्त-केशों के मध्य बनी हुई सिन्दूरपूरित माँग की श्रेणी अत्यधिक केशसमूह के भार से युक्त है। वह सिन्दूरलेखा केशों के अन्धकार के समूहरूपी शत्रुओं के झुण्ड में ऐसी प्रतीत होती है, जैसे वह कोई नवीन बाल-सूर्य की लाल किरण को बन्दी बना लिया हो, ऐसी वह अरुणारुण आपकी सीमन्त-सरणि हमारा कल्याण करे।

रहस्यार्थ—यहाँ बीजाक्षर 'व' है। इसका ध्यान पहले आ चुका है। जप 10000, हवन 100 या 10 आहुति/तर्पण मार्जन 10-10। श्लोक पाठ 10 व श्लोक आहुति 3 हैं। यन्त्र इस प्रकार है।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार द्वारा सिन्दूर की तुलना नवीन सूर्य की किरणों से की गई है तथा उत्प्रेक्षा है, मानों शत्रु द्वारा कैद किया गया सूर्य बाहर आ रहा हो।

किसी प्रति में यह श्लोक '**तनोतु क्षेत्रं नः**' से शुरू होता है, लेकिन वह प्रथा अशुद्ध है। **दिव्य शताक्षरी मन्त्र** के प्रत्येक अक्षर से यहाँ क्रमशः श्लोक शुरू हुए हैं। तद्नुसार 44वें श्लोक का प्रथमाक्षर 'व' ही सिद्ध होता है। दिव्य शताक्षरी मन्त्र इस प्रकार है, श्लोक क्रम साथ दिखाया जा रहा है। ह्रीं श्रीं ॐ 1-शिं, 2-तं, 3-अं, 4-त्वं, 5-हं, 6-धं, 7-क्वं, 8-सुं, 9-मं, 10-सुं, 11-चं, 12-त्वं, 13-नं, 14-सिं, 15-शं, 16-कं, 17-सं, 18-तं, 19-मुं, 20-किं, 21-तं, 22, भं, 23-त्वं, 24-जं, 25-त्रं, 26-विं, 27-जं, 28-सुं, 29-किं, 30-स्वं, 31-चं, 32-शिं, 33-स्म, 34-शं, 35-मं, 36-तं, 37-विं, 38-सं, 39-तं, 40-तं, 41-तं, 42-गं, 43-धुं, 44-वं, 45-अं, 46-लं, 47-भ्रुं, 48-अं, 49-विं, 50-कं, 51-शिं, 52-गं, 53-विं, 54-पं, 55-निं, 56-तं, 57-दृं, 58-अं, 59-स्फुं, 60-सं, 61-अ, 62-प्न, 63-स्मिं, 64-अं, 65-रं, 66-विं, 67-कं, 68-भुं, 69-गं, 70-मृं, 71-नं, 72-सं, 73-अं, 74-वं, 75-तं, 76-हं, 77-यं, 78-स्थिं, 79-निं, 80-कुं, 81-गुं, 82-कं, 83-पं, 84-श्नुं, 85-नं- 86-मृं, 87-हिं, 88-पं, 89-नं, 90-दं, 91-पं, 91-गं, 93-अं, 94-सं, 95-कं, 96-पुं, 97-कं, 98-गिं, 99-सं, 100-कं-, 101-सं ऐं क्लीं सौं क ए इ ल ह्रीं, हलकहल ह्रीं, सकल ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं ॥

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती की मुख कान्ति के प्रसंग में ही आचार्य श्री जगदम्बा के दाँतों की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

अरालैः स्वाभाव्यादलि[1]कलभसश्रीभिरलकैः,
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पङ्केरुहरुचिम्।
दरस्मेरे यस्मिन् दशन-रुचि-किञ्जल्करुचिरे,
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मर-दहन-चक्षुर्मधुलिहः ॥45 ॥

अवतरणिका—भगवती के मुख-कमल की सुन्दरता का वैशिष्ट्य बतलाते हुए माता के दाँतों की कान्ति से भगवान् शिव के नेत्ररूपी भँवरों को मदमत्त बनानेवाली शोभा का आचार्य वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—हे भगवती! आपकी सहज कुटिल अलकावलि भ्रमर-शावकों के समान शोभावाली हैं, और उनसे बिखरती हुई लटों से व्याप्त आपका मुख कमलों की सुषमा की हँसी उड़ाता है, अर्थात् आपके मुख की शोभा के सामने मँडराते हुए भँवरों से युक्त कमल भी श्रीहीन दिखाई देते हैं। इसी प्रकार उस मुख में मन्द मुस्कान से युक्त दाँतों की कान्ति केशर-पराग से सुरभित होने के कारण कामदेव का दहन करनेवाले भगवान् स्मरहर शिव के नेत्ररूपी भँवरों को भी मदमत्त बना रही है। ऐसे अलौकिक सौन्दर्य से कामदेव को जलानेवाले शिवजी के नेत्र भी भगवती के मन्द हास्य से मोहित हो रहे हैं।

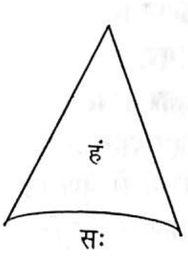

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'अ' है। जपादि विधान पिछले श्लोक की तरह ही रहेगा।

यन्त्र इस प्रकार है—

ध्यान—

केतकीपुष्पगर्भाभां द्विभुजां हंसलोचनाम्।
शुक्लपट्टाम्बरधरां पद्ममालविभूषिताम्।।

1. कुलइसश्रीभिः—पाठान्तर, 2. परीतं मद्वक्त्रंतावहसति पङ्केरुहरुचिं पाठां०।

चतुर्वर्गप्रदां नित्यं नित्यानन्दमयी पराम्।
वराभय करां देवीं नागपाशसमन्विताम्।।
श्रणु तत्त्वम् अकारस्य अतिगोप्यं वरानने।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पंचकोणमयं सदा।।
पंचदेवमयं वर्णं शक्तिद्वयसमन्वितम्।
निर्गुणं सगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्तिमान्।।
बिन्दुद्वयमयं वर्णं स्वयं प्रकृतिरूपिणीम्।।

: 46 :

प्रसङ्ग सङ्गति—कान्ति से निर्मल एवं चन्द्रखण्ड से आभासित भगवती के ललाट पर विराजित मुकुट में शोभित चन्द्रकला के द्वारा पूर्णिमा के ललाट पर विराजित मुकुट में शोभित चन्द्रकला के द्वारा पूर्णिमा के चन्द्र की कल्पना करके उसी को पूर्णचन्द्र सिद्ध करते हैं—

ललाटं लावण्य-द्युतिविमलमाभाति तव यद्—
द्वितीयं तन्मन्ये मकुट-घटितं चन्द्रशकलम्।
विपर्यास-न्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः,
सुधालेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः ।।46 ।।

आतरणिका—श्रीजगदम्बा के ललाट की उत्प्रेक्षा, एवं ललाट-पटल पर विराजमान सौन्दर्यसार-सर्वस्वरूप चन्द्रकला के परस्पर-मेलन से पूर्णचन्द्र की परिणति का वर्णन करते हुए आचार्यवर्य भगवती के ललाट की स्तुति करते हैं।

सरलार्थ—हे माता! आपका ललाट स्वयमेव लावण्य और कान्ति से भासित हो रहा है, वह तथा आपके मुकुट के एक भाग में जो चन्द्रकला विराजमान है उन दोनों चन्द्र-खण्डों (कान्तिमय ललाट और मुकुट-मण्डित चन्द्रकला) को यदि उलट-पलट कर अमृतरस से जोड़ दिया जाए तो वह शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा की पूर्णता को प्राप्त हो जाता है, ऐसा मैं मानता हूँ। अर्थात् भगवती का ललाट मुकुट में स्थित चन्द्रकला का द्वितीय खण्ड है। ललाट रूप चन्द्रकला और मुकुट स्थित चन्द्रकला के मेलन से शरद पूर्णिमा

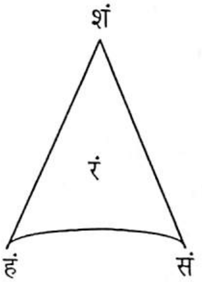

के चन्द्र का स्वरूप भगवती के मुखमण्डल का स्वरूप है, यह कल्पना है।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'ल' है। जपादि विधान पूर्ववत् ही है। हवन में अनार की कली, पकाए गए दूध-चावल व मधु, शर्करा, घी मिलाएँ। श्लोक आहुति 4 होंगी।

ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

चतुर्भुजां पीतवस्त्रां रक्तपंकजलोचनाम्।
सर्वदा वरदां भीमां सर्वालङ्कारभूषिताम्।।
योगीन्द्रसेवितां नित्यां योगिनीं योगरूपिणीम्।
चतुर्वर्गप्रदां देवीं नागहारोपशोभिताम्।।
एवं ध्यात्वां लकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
लकारं चञ्चलापांगि! कुण्डलीत्रयसंयुतम्।।
पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकम्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा।।
त्रिशक्तिसहितं देवि! त्रिबिन्दुसहितं परम्।
आत्मादितत्त्वसहितं हृदि भावय पार्वति।।

: 47 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती की भौंहों का वर्णन करते हुए उन्हें कामदेव के बाँये हाथ में लिए हुए धनुष के रूप में वर्णित करते हैं—

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद् भुवनभयभङ्ग व्यसनिनि,
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणम्।
धनुर्मन्ये सव्येतर-कर-गृहीतं रतिपतेः,
प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे।।47।।

अवतरणिका—भगवती की तिरछी चितवनों को कामदेव के बाँए हाथ

में लिए हुए धनुष की कल्पना से मण्डित करते हुए अतिशयोक्ति द्वारा भौंहों के मध्यभाग और नासिका के मध्यभाग को मुष्टि-प्रकोष्ठ—कलाई की कल्पना स्पष्ट की है ।

सरलार्थ—त्रिभुवनवासी जनों के उपद्रव का नाश करने के लिए तत्पर हे भगवति ! आपके नेत्र भ्रमरों की कान्ति के समान एवं कुछ झुके हुए होने से ऐसे लगते हैं, जैसे कामदेव के बाँए हाथ में लिए हुए धनुष की डोरी का स्वरूप धारण करते हैं और उस धनुष की मूठ—मध्यभाग पहुँचे से आच्छादित है, ऐसा मैं मानता हूँ ।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'भ्रु' है । भ+र+उ तीनों का ध्यान होगा । जबकि विधान पूर्ववत् ही है । यन्त्र दिया जा रहा है—

ध्यान पीछे 22, 25, 8 श्लोकों में आ चुके हैं ।

: 48 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती की भृकुटिद्वय को कामदेव का धनुष सिद्ध करके अब उनके तीनों नेत्रों को सूर्य, चन्द्र और सन्ध्यारूप होने का वर्णन करते हैं—

अहः सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया,
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया ।
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलित-हेमाम्बुजरुचिः,
समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम् ।।48 ।।

अवतरणिका—भगवती के तीनों नेत्रों के सम्बन्ध में कल्पना करते हुए आचार्य भगवान् ने उनके दक्षिण-नेत्र को सूर्य, वामनेत्र को चन्द्र रूप तथा तृतीय ललाटस्थ नेत्र स्वर्ण-कमल रूप बतलाकर उनके द्वारा दिन, रात्रि और सन्ध्या की सृष्टि एवं भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों काल की स्वामिनी सूचित किया है जबकि भगवती स्वयं कालातीत हैं, यह व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे माता ! आपका दक्षिणनेत्र सूर्यरूप होने से वह दिन का

निर्माण करता है, वामनेत्र चन्द्ररूप होने से रात्रि को प्रकाशित करता है। तथा आपका तीसरा नेत्र किञ्चिद् विकसित होने से सुवर्णकमल की शोभा देता है, अतः वह दिन और रात्रि के बीच सन्ध्या का निर्माण करता है। अतः यह समग्र कालसृष्टि विराटरूपा माता के द्वारा ही निर्मित है, यह स्पष्ट है।

रहस्यार्थ—महाकाल की नियन्त्रिणी शक्ति का उल्लेख है। सूर्य भगवती का दक्षिण नेत्र है तथा वाम चन्द्रात्मक है। तृतीय नेत्र उभय सन्ध्यात्मक है।

'चक्षोः सूर्य अजायत।' ऐसा वेदवाक्य भी है।

बीजाक्षर 'अ' है। ध्यान पहले आ चुका है। जपादि विधान पूर्ववत् है।

: 49 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता त्रिपुरसुन्दरी की दृष्टियां विविधरूपों में व्याप्त होकर अपने भक्तसाधकों का कल्याण करने से 'विशाला' आदि नगरियों के नाम से व्यवहृत होती हुई सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो रही हैं।

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः,
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुराऽऽभोगवतिका।
अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगर-विस्तार-विजया,
ध्रुवं तत्तन्नाम-व्यवहरणयोग्या विजयते॥49॥

अवतरणिका—पहले भगवती के तीनों नेत्रों की विशेषता का वर्णन करके अब उन नेत्रों से कल्याणकारी दृष्टियों का वैशिष्ट्य प्रकट करते हुए उनके नाम-व्यवहार से विशाला आदि पुरियों के रूप में व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे माता ! आपकी लोक-कल्याणकारिणी दृष्टियाँ विशाला—विस्तारवाली, कल्याणी—मङ्गलकारिणी, स्फुटरुचि—स्फुटकान्ति से रम्य, कमलों के द्वारा अयोध्या—युद्ध करने में असमर्थ, करुणाप्रवाह की आधारभूत धारा, अव्यक्त मधुरा तथा आभोगवती—शिव के सम्बन्ध में परम प्रेमपूर्ण

अवलोकनवती और भक्तजनों का रक्षण करने से अवन्ती बहुत से नगरों के विस्तारवाली विजय को प्राप्त हो रही हैं। ये दृष्टियाँ क्रमशः 1. संक्षोभण, 2. आकर्षण, 3. द्रावण, 4. उन्माद, 5. वश्य, 6. उच्चाटन, 7. विद्वेषण और 8. मारण क्रियाओं की प्रतीक होकर—1. विशाला, 2. कल्याणी, 3. अयोध्या, 4. धारा, 5. मधुरा (मथुरा), 6. भोगवती, 7. अवन्ती एवं 8. विजया नामक नगरियों के नाम से व्यवहृत हुई हैं।

रहस्यार्थ—भगवती की 8 दिव्य दृष्टियों की क्रियारूप 8 नगरियों का उल्लेख किया गया है।

1. विशाला; अर्थात् अन्तर्दृष्टि शक्ति विश्वव्यापिनी है। लोक में उज्जयिनी नाम से व्यवहृत है।

2. कल्याणी; आकर्षणकारिणी, ऐश्वर्यमयी तथा आश्चर्यमयी है।

3. अयोध्या; फैली हुई पुतलियों से देखना, द्रावण करना, तन्नाम से व्यवहृत पौराणिक नगरी की प्रतीक है।

4. धारा; उन्मादकारक, आलस्यमयी है। इसी नाम से लोकप्रसिद्ध है।

5. मधुरा या मथुरा; शान्तिमयी वशीकरणात्मक दृष्टि है। लोकप्रसिद्ध नगरी भी सङ्केतित है।

6. भोगवती; मैत्री दृष्टि, उच्चाटनकरी

7. अवन्ती; विशेष शान्त, विद्वेषणकारिका,

8. विजया; प्रसन्न, मारणक्रिया सम्पादिका है।

बीजक्षर 'वि' है। व + इ का ध्यान पूर्वोक्त है। जपादि विधि पूर्ववत् है।

: 50 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के ललाटवर्ती तृतीयनेत्र के लाल वर्ण की कान्ति होने का कारण बतलाते हुए सूर्यचन्द्रात्मक, दोनों नेत्रों की दीर्घता और काव्यप्रबन्ध श्रवण-प्रवणता से ईर्ष्या को व्यक्त किया है—

कवीनां सन्दर्भ-स्तबक-मकरन्दैकरसिकं,
कटाक्ष-व्याक्षेप-भ्रमर-कलभौ कर्णयुगलम्।
अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नवरसास्वाद-तरला-,
वसूया-संसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणम्।।50 ॥

अवतरणिका—परमेश्वरी के सोम-सूर्यात्मक दो नेत्र नीचे हैं और एक ललाट में अग्निरूप है, इस कारण उसकी अरुणिमा अधिक है। इस अरुणिमा का कारण बतलाते हुए तर्क दिया है कि—

सरलार्थ—हे माता! आपका ललाट में स्थित तृतीय नेत्र कुछ अरुण-लाल वर्ण का है, उसका कारण दूसरे के उत्कर्ष को सहन न करने से उत्पन्न असूया—ईर्ष्या है, ऐसा मैं मानता हूँ। क्योंकि आपके कर्णयुगल वाल्मीकि, व्यास, पराशर आदि के गद्य-पद्यात्मक काव्य-प्रबन्धों के शृंगारादि रसों के आस्वादन में रसिक हैं। उस रस-मकरन्द का आस्वाद लेने में रसिक सूर्य-चन्द्र रूप दोनों नेत्र भ्रमरशिशु कर्णप्रान्त तक पहुँचकर आनन्द को निरन्तर प्राप्त कर रहे हैं, जबकि तृतीय नेत्र ललाट में स्थित होने के कारण कर्णप्रान्त तक नहीं पहुँच पाने से ईर्ष्या कर रहा है। वही ईर्ष्या तीसरे नेत्र के अरुणवर्णी होने में हेतु है।

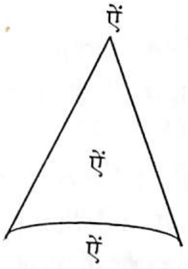

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'क' है। ध्यान पहले लिख चुके हैं। जपादि विधान पूर्ववत् है। हवन-सामग्री पिछले श्लोकानुसार ही है। श्लोक आहुति 4 रहेंगी।

विद्वेषण सिद्धि का मन्त्र दिया गया है। एतदर्थ प्रयोज्य विधान बताया है।

: 51 :

प्रसङ्ग सङ्गति—'माता की दृष्टि की विशेषता नौ रसों से परिपूर्ण है' और उसके आलम्बन भिन्न-भिन्न निषगों—वस्तुओं से सम्बद्ध हैं, यह व्यक्त करके मुझ जैसे पर वह करुणामयी हो। यह प्रार्थना करते हैं—

शिवे श्रृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सन-परा,
सरोषा गङ्गायां गिरिश-चरिते[1] विस्मयवती।
हराहिभ्यो भीता सरसिरुह-सौभाग्यजननी[2],
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि! दृष्टिः सकरुणा।।51 ॥

अवन्तरणिका—भगवती भवानी की दृष्टि श्रृङ्गारादि रसों से परिपूर्ण है, यह व्यक्त करते हुए उस दृष्टि के सर्वोत्कृष्ट विजयी स्वरूप को प्रकट करते हुए आचार्य स्तुति करते हैं।

सरलार्थ—हे जननि! आपकी दृष्टि विजय को प्राप्त हो रही है, क्योंकि वह एक साथ ही समस्त रसों से परिपूर्ण होने से शिव के प्रति शृंगार रस से युक्त है, शिव से अतिरिक्त ब्रह्मा, इन्द्रादि के प्रति बीभत्स भाववाली, गङ्गा के प्रति रोषवती, गिरिश—महादेव के चरित् श्मशानवासादि के प्रति विस्मयवाली, शिव के भूषणरूप सर्पादि से भयवती, कमलों के सौन्दर्य को जीतनेवाली, विजयशीला, पति के प्रेम आदि के प्रश्न करनेवाली सखियों के प्रति मन्द हास्यवाली तथा मुझ जैसे अति दीन भक्तों के प्रति करुणा से युक्त है। अर्थात् ऐसी आपकी दृष्टि मेरे प्रति करुणापूर्ण बनी रहे।

रहस्यार्थ—साहित्य शास्त्रोक्त 9 रसों से युक्त भगवती की दृष्टि का कमनीय वर्णन है। अथवा भगवती की विविध दृष्टियों से ही 9 रस उद्‌भूत हैं।

1. भगवान् शिव के प्रति शृंगार या रतिभाव, 2. अन्य जनों के प्रति कुत्सा वीभत्स रस, 3. गङ्गा के प्रति क्रोध रौद्र रस, 4. भगवान् शिव की लीलाओं के प्रति विस्मयभाव, अद्‌भुत रस, 5. शिवालङ्कारों के प्रति भय या भयानक रस, 6. कमल सौभाग्य विजय में वीर रस, 7. सखीजनों के प्रति हास या हास्यरस, 8. भक्त के प्रति करुणापूर्ण करुण रस तथा संसार के प्रति सदा शान्त रसमयी दृष्टि का सङ्केत दिया है। अतः काव्यास्वाद, गीत, उपन्यास, कथा, आख्यायिका आदि में आत्मा रूप से व्याप्त रस तत्त्व स्वयं श्री तत्त्व ही है, तथा सभी साहित्यिक कृतियों की चरमावस्था भगवती की स्तुति ही है। पुराणों में कहा गया है—

1. नयने—इति पाठान्तर। 2. जयिनी—इति पाठान्तर।

काव्यालापांश्च ये केचित् गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशाः महात्मनः ।।

अतः शब्दमयी, अखण्ड, आनन्दघन, स्वयंप्रकाश, निर्विकल्पक समाधिगम्य, अनन्य, आत्मरूप, परमात्मरूप, शक्ति की स्तुति यहाँ की गई है।

बीजाक्षर 'शि' है। श+इ का ध्यान पूर्वोक्त है। जपादिविधान पूर्ववत् है। यन्त्र इस प्रकार है—

: 52 :

प्रसङ्ग सङ्गति—पुनः नेत्रद्वय की विशेषता बतलाते हुए उन्हें कामदेव के कानों तक खींचे हुए बाणों से भगवान् शिव के चित्त में स्थित शान्ति को भङ्ग करनेवाले कामदेव के बाण निरूपित करते हैं—

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती,
पुरां भेत्तुश्चित्त-प्रशमरस-विद्रावण-फले।
इमे नेत्रे गोत्राधरपति-कुलोत्तंस-कलिके,
तवाकर्णाकृष्ट-स्मरशरविलासं कलयतः ।।52 ।।

अवतरणिका—भगवती के कानों के निकट तक पहुँचे हुए दोनों नेत्र मानों शिवजी के चित्त में स्थित शान्ति को भग्न करने के लिए कङ्कपत्ररूप पत्रों— पलकों से युक्त कानों तक खींचे कामदेव के बाणों की शोभा को प्राप्त हो रहे हैं।

सरलार्थ—हे हिमालय के वंशरूप कल्पवृक्ष के पुष्प की कलिकारूप शोभा वाली माता! आपके कानों के निकट भाग तक पहुँचे हुए आपके ये दोनों नेत्र पुरत्रय का भेदन करनेवाले शिवजी के चित्त में स्थित शान्तरस को अपने शृंगारपूर्ण कटाक्ष से द्रवित करनेवाले कंकपत्र रूप बरौनियों से सजे हुए तथा कानों तक खींचे हुए कामदेव के बाणों से युक्त अनुपम शोभा को दर्शाते हैं।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'ग' है। जपादि विधान यथावत् रहेगा। पूजनयन्त्र यह है—

ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है।

दाडिमीपुष्प संकाशां चतुर्बाहुसमन्विताम्।
रक्ताम्बरधरां नित्यां रक्तालंकारभूषिताम्॥
एवं ध्यात्वा गकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
पञ्चप्राणमयं वर्णं सर्वशक्त्यात्मकं प्रिये॥
तरुणादित्य संकाशां कुण्डलीं प्रणमाम्यहम्।
अग्राकुंचितरेखा या गणेशी सा प्रकीर्तिता॥
ततो दक्षगता या तु कमला यत्र संस्थिता।
अधोगता गता यातु तस्यामीशः सदा वसेत्॥

: 53 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता के तीनों नेत्रों की महिमा बहुत ही विशिष्ट है और वे श्वेत, नील और अरुण वर्णों की छटा से ऐसे प्रतीत होते हैं कि जैसे वे प्रलय के पश्चात् विलीन हुए ब्रह्मा, विष्णु और शिव को पुनः जीवित करनेवाले सत्त्व, रज एवं तमोरूप त्रिगुणों से सृष्टि-कार्य करनेवाले हों।

विभक्त-त्रैवर्ण्यं व्यतिकरित-लीलाञ्जनतया,
विभाति त्वन्नेत्र-त्रितयमिदमीशानदयिते।
पुनः स्रष्टुं देवान् द्रुहिण-हरि-रुद्रानुपरतान्,
रजः सत्त्वं बिभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव।।53॥

अवतरणिका—भगवती के तीनों नेत्रों की काजल से युक्त शोभा का वर्णन करते हुए उन्हें प्रलय के अनन्तर विलीन हुए ब्रह्मा, विष्णु और शिव को पुनः उज्जीवित करनेवाले त्रिगुणरूप सृष्टि के निर्माता के रूप में वर्णित करते हैं।

सरलार्थ—हे शिवप्रिये भगवती ! आपके तीनों नेत्र काजल से परस्पर पूर्वोक्त वर्णों के मिश्रण से सत्त्व, रज और तमरूप तीन गुणों के द्योतक हैं। अर्थात् सूर्य, चन्द्र और अग्नि-रूप भगवती के तीनों नेत्र इन्हीं तीनों नेत्रों से क्रमशः रजोगुण से ब्रह्मा, सत्त्वगुण से विष्णु और तमोगुण से शिव को उत्पन्न करने के लिए ही आपने तीन गुणवाले अग्नि, चन्द्र एवं सूर्यमय तीन नेत्र धारण किए हैं। शास्त्रीय मान्यता प्रसिद्ध है कि—प्रलयकाल में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों अपने मूल कारण जो शिव है, उसमें विलीन हो जाते हैं, अतः उनकी पुनः उत्पत्ति का वर्णन किया है।

रहस्यार्थ—भगवती के नेत्रों के तीनों वर्ण श्वेत रक्त, श्याम, क्रमशः सत्त्व, रजस्, तम के द्योतक हैं अथवा अमृत, विष व मद तीनों विरोधी तत्त्व एक साथ अपने विरुद्ध धर्मों को छोड़कर स्थित हैं अथवा भगवान् शङ्कर के त्रिशूल की तरह तीनों वर्ण सुशोभित होते हैं।

यहाँ बीजाक्षर 'वि' है। अतः व+इ का संयुक्त ध्यान समुचित है। ये ध्यानमन्त्र पीछे आ चुके हैं। जपादि विधान पूर्ववत् है।

: 54 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के कृपा-कटाक्ष से उपासक पवित्र होते हैं। अतः माता के दयापूर्ण तीनों नेत्रों को तीर्थों की उपमा देते हुए उन नेत्रों की रक्त, कृष्ण और शुक्लवर्णरूपता को शोण, यमुना और गङ्गारूप व्यक्त करते हैं—

पवित्रीकर्तुं नः पशुपति - पराधीन - हृदये,
दयामित्रैर्नेत्रैररुण - धवल - श्याम - रुचिभिः।
नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममुं,
त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि सम्भेदमनघम्[1]॥54॥

अवतरणिका—भगवती का मुखकमल तीन नेत्रों (तीन वर्णों) से युक्त होने के कारण वे तीर्थ-त्रिवेणी से पूर्ण हैं। वे सदय नेत्र हम उपासकों को

1. अनथ—इति पाठान्तर।

पवित्र करने के लिए ही हैं, इस दृढ़ता के साथ आचार्यप्रवर कहते हैं।

सरलार्थ—पशुपति के परतन्त्र हृदयवाली हे माता! आप दया भाव से पूर्ण अरुण, श्वेत और श्याम कान्तिवाले विभक्त तीन नेत्रों से हम उपासकों के पाप को दूर करने के लिए ही शोणनद अथवा सरस्वती, यमुना और गङ्गा के सङ्गमरूप तीर्थों को धारण करती हो, यह ध्रुव सत्य है। अर्थात् भगवती अपने भक्तों को प्रयागरूपी तीनों दयापूर्ण नेत्रों के तीर्थ में स्नान कराकर उनकी जन्म-मरण सम्बन्धी, अन्धकार एवं सांसारिक बन्धनों से बनी मलिनता को दूर करने के लिए कृपा-कटाक्ष से परम उपकार करती हैं।

रहस्यार्थ—पुनः नेत्रवर्णों में उत्प्रेक्षा दी गई है, मानों वे तीनों वर्ण सोन, गङ्गा व सरस्वती की त्रिवेणी रूप हैं अथवा सूर्य, चन्द्र, अग्नि रूप तीनों तेज पदार्थ आपके नेत्ररूप में स्थित हैं। ये तीनों वर्ण तीर्थरूप हैं।

यहाँ बीजाक्षर 'प' है। जपादि विधान पिछले श्लोक की तरह ही रहेगा। यन्त्र यहाँ दिया जा रहा है—

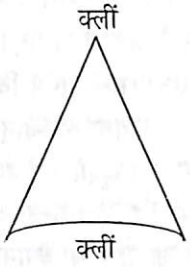

ध्यान-मन्त्र—

विचित्रवसनां देवीं द्विभुजां पंकजेक्षणाम्।
रक्तचन्दनलिप्तांगीं पद्ममालाविभूषिताम्।।
मणिरत्नादिकेयूर-हार-केयूर-विग्रहाम।
चतुर्वर्गप्रदां नित्यां नित्यानन्दमयीं पराम्।।
एवं ध्यात्वा पकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि पकाराक्षरमव्ययम्।।
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं त्रिशक्तिसहितं प्रिये।।
पंचदेवमयं वर्णं शरच्चन्द्रमयप्रभम्।
पंचप्राणमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली।।
त्रिगुणसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतम्।
महामोक्षप्रदं देवि! हृदि भावय पार्वति!।।

: 55 :

प्रसङ्ग सङ्गति—नेत्रवर्णन के प्रसङ्ग को ही आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि हे शैलराज हिमालय की तनया, 'आपके नेत्रों की पलकों के मुँदने से प्रलय और खुलने से सृष्टि होती है' यह उचित नहीं लगता। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस समस्त जगत् की प्रलय से रक्षा करने के लिए ही निमीलन और उन्मीलन से रहित आपके नेत्र हैं।

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं पाति जगती,
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधर-राजन्यतनये।
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः,
परित्रातुं शङ्के परिहृत-निमेषास्तव दृशः ॥55॥

अवतरणिका—पर्वतराज की पुत्री के नेत्रों के सम्बन्ध में व्यासादि पूर्व सन्तों की उक्ति को असत्य सिद्ध करते हुए आचार्यवर अपनी मान्यता को प्रकट करते हुए देवताओं के नेत्रों की पलकों के नहीं गिरने की सुदृढ़ धारणा को बल देते हुए तर्क प्रस्तुत करते हैं—

सरलार्थ—हे पर्वतराज की पुत्री जगदम्बा ! व्यास आदि पूर्व महर्षियों ने आपके नेत्रों के सम्बन्ध में यह कहा है कि—'जगदम्बा के नेत्रों की पलकें मुँदने से और खुलने से इस जगत् का प्रलय और सर्जन होता है, यह मुझे सत्य नहीं प्रतीत होता है।' क्योंकि आपके नेत्र तो सदैव निर्निमेष—पलकों के मुँदने और गिरने की क्रिया से शून्य, केवल उद्घाटित ही रहते हैं। इस कारण मेरी तो यह मान्यता है कि 'आपके ये नेत्र अपने उन्मेष से उत्पन्न इस जगत की रक्षा करने के लिए सदैव खुले रहते हैं। यह आपकी परमार्थ भावना है।'

रहस्यार्थ—सतत जाग्रत अवस्था का भाव प्रकट किया गया है। आपके नेत्रोन्मेष से उत्पन्न यह जगत सदैव सुरक्षित रहे, इसी करुणावत्सलता के कारण आपके नेत्र निमेषहीन हैं।

बीजाक्षर 'नि' है तथा ध्यान न+इ का संयुक्त रूप से लगेगा। दोनों ध्यान पीछे आ चुके हैं। पूजन-यन्त्र इस प्रकार है—

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के नेत्र मछली के समान चञ्चल और नीलकमल के समान सुन्दर हैं, यह बतलाने के लिए आलङ्कारिक पद्धति से नेत्रों की शोभा का दिग्दर्शन कराते हैं—

तवापर्णे कर्णेजप-नयन-पैशुन्य-चकिता,
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः।
इयं च श्रीर्बद्धच्छद-पुट-कवाटं कुवलयं,
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति।।56।।

अवतरणिका—माता के दोनों नेत्र कानों के समीप तक फैले हुए हैं तथा वे मछली और नीलकमल के समान हैं, यह कथन पुष्ट करते हुए आचार्य चरण उनसे भी अधिक सौन्दर्यशालिता प्रकट करते हुए कहते हैं—

सरलार्थ—हे अपर्णा भगवती! कानों तक पहुँचते हुए आपके दोनों नेत्रों की पिशुनता—निन्दावचन कहने की प्रवृत्ति से डरी हुई मछलियाँ नेत्र मुँदे बिना ही पानी में छिपी रहती हैं तथा नीलकमल अपने पत्तों-सदृश किवाड़ों को बन्द करके दिन में मौन रहते हैं। अर्थात् मछली और नीलकमल दोनों ही भगवती के नेत्रों द्वारा कानों के पास जाकर यह कहते हैं कि—'अनुपम सौन्दर्य से पूर्ण हम दोनों नेत्रों की शोभा की विडम्बना करनेवाली ये मछलियाँ और नीलकमलों में जो शोभा है, वह हमारी शत्रु है। हम आपके आश्रित हैं, अतः आप ही इन्हें दण्ड दें।' इस प्रकार के नेत्रों के वचनों से डरकर वे दोनों— मछलियाँ तो बिना नेत्र बन्द किए पानी में छिप जाती हैं और नीलकमल दिन में पत्ररूप किवाड़ बन्द करके स्वयं को छिपाए रहते हैं। इस कथन से यह भी व्यक्त किया है कि—"माता की नेत्र-लक्ष्मी कमलकर्णिका में विराजमान महासिंहासन स्थित राजराजेश्वरी के भय से मछली और कमल का आश्रय लेकर निश्चित रूप से उनमें छिप रही है।

रहस्यार्थ—उत्प्रेक्षा की अनुपम छटा देखते ही बनती है। भगवती अपर्णा के दोनों नेत्र कमलिनी व मछली को भी पीछे छोड़ रहे हैं। इनकी शोभा से पराजित होकर मछली की आँखें निर्निमेष हो गई हैं तथा वे जल में डूब गई हैं या छिपी हैं। कमलिनी रात्रि में ही खिलती है। जब भगवती के

नेत्र निद्रामग्न होने से बन्द हो जाते हैं। भगवान् भूतभावन को वरण करने के लिए तपस्या के दौरान उग्र तपोनिरत भगवती ने जब पत्ता खाना भी छोड़ दिया था, उसी घटना को दृष्टि में रखकर आपका 'अपर्णा' नाम सार्थक है।

बीजाक्षर 'त' है। जप पूर्ववत् ही रहेगा। ध्यान पीछे दिया जा चुका है। यन्त्र इस प्रकार है—

: 57 :

प्रसङ्ग सङ्गति—उपर्युक्त विशिष्ट गुणों से परिपूर्ण भगवती के नेत्रों के कटाक्ष से अपने दीन भक्त को अनुग्रहीत करने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

दृशा द्राघीयस्या दरदलित-नीलोत्पल-रुचा,
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता,
वने वा हर्म्ये वा समकर-निपातो हिमकरः ।।57 ।।

अवतरणिका—स्वभक्तजनों पर अपार करुणा बरसानेवाली माता से दूरस्थ दीनभक्त के रूप में अर्थान्तरन्यास द्वारा अपनी अपेक्षा की पुष्टि करते हैं तथा इस करुणावृष्टि से स्वयं के धन्य होने के साथ ही माता की कोई हानि नहीं होने का कथन करते हैं।

सरलार्थ—हे शिवे! आप अपनी अल्पविकसित नीलकमल की कान्तिवाली सुदीर्घ कटाक्षदृष्टि से दूरवर्ती दरिद्रभक्त को—जिस प्रकार अन्य साधारण जनों के समान मुझको भी अभिषिक्त करो। मात्र इतना करने से मैं तो धन्य हो जाऊँगा और आपकी कोई हानि नहीं होगी। क्योंकि हिमकर-चन्द्रमा वन में और भवन पर समान रूप से ही छटा बरसाता है। अर्थात् जो स्वच्छ अन्तःकरण है, वह निर्गुण, सगुण का विचार किए बिना ही रक्षणात्मक सत्कर्म में प्रवृत्त होता है। वैसे ही आप भी अकारण

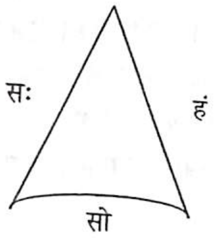

करुणा-परायण हैं, अतः मुझ पर करुणा करो।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर द + ऋ = दृ है। अतः संयुक्त ध्यानयुक्त है। जपादि विधान पूर्ववत् है। हवन-सामग्री में दूध मिश्रित पके चावल, घी, शहद, शक्कर मिलाकर, अनार के फूल भी मिलाएँ। यन्त्र व ध्यान दिया जा रहा है—

ध्यान—

चतुर्भुजां पीतवस्त्रां नवयौवनसंस्थिताम्।
अनेकरत्नघटितहारनूपुरशोभिताम्। ।
एवं ध्यात्वा दकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
त्रिशक्तिसहितं देवि! त्रिबिन्दुसहितं प्रिये॥
आत्मादि तत्त्व संयुक्तं दकारं प्रणमाम्यहम्।
दकारं शृणु चार्वंगि! चतुर्वर्गप्रदायकम्॥
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा।
षड्भुजां नीलवर्णां च नीलाम्बरधरां पराम्।
ननालङ्कारभूषाढ्यां सर्वालंकृतमस्तकाम्॥
भक्तिप्रदां भगवतीं भोगमोक्षप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
पञ्चप्राणमयं वर्णं चतुर्ज्ञानमयं तथा।
रक्तविद्युल्लताकारं ऋकारं प्रणमाम्यहम्॥

ऋकारः परमेशानि कुण्डली मूर्तिमान् स्वयम्।
अत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव वरानने॥
सदाशिवयुतं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतम्।
उर्ध्वादिशगता वक्रा त्रिकोणावामतस्ततः॥
पुनस्त्वधोदक्षगता मात्रा शक्तिः परा स्मृता।
मात्रा तु ब्रह्मविष्णवीशाः तिष्ठन्ति क्रमतो परा॥

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के कर्ण और नयनों के मध्यभाग-पाली युगल और कटाक्ष की अत्यन्त सुन्दरता को कामदेव के धनुष पर चढ़ाए हुए बाण की उपमा देते हुए उनका वर्णन करते हैं—

अरालं ते पाली-युगलमगराजन्य-तनये !
न केषामाधत्ते कुसुमशर-कोदण्ड-कुतुकम् ।
तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लङ्घ्य विलस—
न्नपाङ्ग-व्यासङ्गो दिशति शरसन्धान-धिषणाम् ।।58 ।।

अवतरणिका—नगेन्द्रकन्या भगवती पार्वती के उत्तमाङ्ग का वर्णन करते हुए नेत्रों एवं कर्णों के मध्यवर्ती पालीयुगल और कटाक्षों का सौन्दर्य साक्षात् कामदेव के धनुष पर चढ़ाए हुए बाणों के समान प्रतीत होता है। इस विशिष्टता को देखकर किस भावुक के मन में कौतुक उत्पन्न नहीं होता है ? इस कौतुक का सकारण निर्देश करते हुए कहते हैं।

सरलार्थ—हे पर्वतराजपुत्री ! आपका जो यह पालीयुगल नेत्र और कानों के बीच का भाग, कनपटी का भाग है, यह कानों के मार्ग को पार करके तिरछी दृष्टि से छूटकर कनखियों से कटाक्ष के रूप में दिखती है, जिसे देखकर भावुक के मन में कामदेव के धनुष पर बाण चढ़ाने की बुद्धि को उत्पन्न करता है। अर्थात् तिरछे कटाक्ष नेत्रों से निकलकर कनपटियों से आगे कानों के पास पहुँचकर स्फुरित होते हुए कटाक्षों की दीर्घता को व्यक्त करते हैं जिससे कानों तक खींचे हुए धनुष तथा उस पर कटाक्षरूप बाणों के सन्धान की स्थिति बन जाती है, वह किसके हृदय में कौतुक उत्पन्न नहीं करती है ? सभी उससे आश्चर्यान्वित हो जाते हैं।

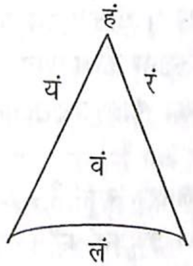

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'अ' है, जिसका ध्यान पहले आ चुका है। जपविधान सब पूर्ववत् रहेगा। यन्त्र इस प्रकार है—

प्रसङ्ग सङ्गति—अनिन्द्य सौन्दर्य की मूर्ति जगदम्बा के पालीयुगल का सौन्दर्य वर्णित करके आगे उनके कपोलों की कमनीयता का निरूण करते हैं।

स्फुरद्गण्डाभोग-प्रतिफलित-ताटङ्क-युगलं,
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथम्।
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दु-चरणं,
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते।।59।।

अवतरणिका—भगवती का प्रत्येक अङ्ग अपूर्व सौन्दर्य का सार है। यह प्रतिपादित करने के लिए मुखारविन्द के अवयवों की सुन्दरता को आचार्य ने अनेकविध कल्पनाओं से प्रस्तुत किया है। उसी क्रम में माता के कपोलस्थल की दर्पण के समान निर्मलता में प्रतिबिम्बित होनेवाले ताटङ्क-युगल-कर्णफूलों की शोभा से कामदेव के चार पहियोंवाले रथ की कल्पना को साकार किया है, और उस रथ पर महावीर कामदेव के आरूढ़ होने से शिव के साथ युद्ध करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने की भावना को व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे माता! अनेक रत्नों की चमक से दैदीप्यमान आपका कपोलस्थल निर्मल दर्पण के समान है तथा उनमें आपके कर्णयुगल में धारण किए हुए कर्णफूल (जो गोलाकार होने से) ऐसे लगते हैं कि वे कर्णाभरण न होकर चार पहिए हों! और उन पहियों पर मुखकमल रथ हो। इस स्वरूप का ध्यान करने से मुझे ऐसा लगता है कि स्वयं महावीर कामदेव ही आपके इस मुखरूपी रथ पर चढ़कर सूर्यचन्द्र रूप दो पहियोंवाले पृथ्वीरूप रथ पर बैठे हुए शिवजी के प्रति अपना क्रोध व्यक्त करके उन्हें पराजित करने का भाव प्रकट कर रहा है।

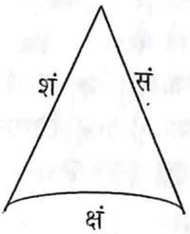

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स्फु' है। ध्यान में स्+फ्+उ तीनों वर्ण प्रयुक्त करें। 'स' 'व' 'उ' का ध्यान पहले बता चुके हैं। 'फ' का ध्यान दिया जा रहा है। जपादि विधान व सामग्री पिछले श्लोक वाली ही रहेगी।

• ध्यान 'फ'

प्रलयाम्बुदवर्णाभां ललज्जिह्वां चतुर्भुजाम्।
भक्ताभयप्रदां नित्यां नानालङ्कारभूषिताम्।।
एवं ध्यात्वा फकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
फकारं श्रणु चार्वंगि! रक्तविद्युल्लतासमम्।।
चतुर्वर्गप्रदं देवि! पञ्चदेवमयं तथा।
पञ्चप्राणमयं वर्णं सदा त्रिगुण संयुतम्।।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये।।

: 60 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के कर्णयुगल में पहने हुए कुण्डलों की विशेषता का वर्णन करते हुए उनके हिलने से निकलनेवाली मणिगणों की ध्वनि के माधुर्य की अमृतमयता का निरूपण करते हैं—

सरस्वत्याः सूक्तीरमृत-लहरी-कौशलहरीः,
पिबन्त्याः शर्वाणि श्रवण-चुलुकाभ्यामविरलम्।
चमत्कार-श्लाघा-चलितशिरसः कुण्डलगणो,
झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते।।60।।

अवतरणिका—जगदम्बा के कर्णसम्पुट में धारण किए हुए कुण्डलों का वर्णन करते हुए श्रीभवानी की स्तुति करते हैं।

सरलार्थ—हे शिवपत्नी भगवती! गद्य-पद्यरूप स्तुतियों को जो कि देवी सरस्वती की शोभन वाणी तथा अमृतलहरी के कौशल को दूर करनेवाली है, उसको आप निरन्तर अपने कर्णरूप चषकों से सादर सुनती हैं, उसके चमत्कारपूर्ण एवं माधुर्य से आनन्दित होकर जब आप उसकी प्रशंसा में अपना मस्तक हिलाती हैं, तब वे कुण्डलगण भी उस स्तुतिवाणी के श्रवण से चमत्कृत होकर हिलते हैं, जिससे मणिगणों की जो झंकार-ध्वनि होती है, उससे ऐसा लगता है कि वे कुण्डल भी उस माधुर्यपूर्ण, अमृतमय वाणी की प्रशंसा का अनुमोदन कर रहे हों। अर्थात् भगवती के कानों में अमृत से भी मधुर एवं चमत्कारपूर्ण स्तुतिवचनों के श्रवण से विस्मयभाव तथा प्रशंसाभाव

उदित होता है उसी के प्रति अपनी सहमति देने के लिए विविध मणियों के परस्पर टकराने से उत्पन्न शब्द अनुमोदन करते हैं। यह उनका प्रतिवचन है।

रहस्यार्थ—यहाँ बीजाक्षर 'स' है। इसका फल कवित्व सिद्धि है। बीजाक्षर का 1000 जप करके घी, शहद व शक्कर, अनार के फल से हवन करें। यह हवन-सामग्री पके दूधमिश्रित सूखे चावलों में मिलाएँ।

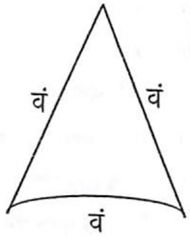

बीजाक्षर की 100 या 10 आहुति दें। तर्पण मार्जन 10-10 बार करें। पश्चात् श्लोक-पाठ तथा आहुति 4 दें। पूजन-यन्त्र दिया जा रहा है—

'स' का ध्यान पीछे श्लोक 8 में आ चुका है।

: 61 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के मुखारविन्द के वर्णन प्रसङ्ग में ही नासिका का वर्णन करते हुए उसके शीतल निश्वास से सम्पन्न मोतियों की समृद्धि को बतलाते हैं और अपने लिए धर्मार्थ काम मोक्ष रूप फल की प्रार्थना करते हैं—

असौ नासावंशस्तुहिनगिरि-वंशध्वज-पटि!
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम्।
वहत्यन्तर्मुक्ताः शिशिरकर-निश्वास-गलितं,
समृद्ध्या यत्तांसा बहिरपि च मुक्तामणिधरः ।।61 ।।

अवतरणिका—भगवती हिमगिरि की पुत्री होकर उनके वंश की पताका के रूप में सर्वोच्च स्थानीय है। माता को सम्बोधित करते हुए आचार्यश्री माता की नासिका के सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए अपने कल्याण की कामना करते हैं।

सरलार्थ—हिमालय के वंश की पताकारूप हे माता! आपका यह नासिकारूपी वंश—बाँस हमारे लिए शीघ्र ही उचित फल प्रदान करनेवाला हो। अर्थात् उस बाँस में उचित फल लगें। क्योंकि उस नासिकारूप बाँस में

आपके अति शीतल निश्वासों से मोती बन रहे हैं। और आपके बाँए नथने में उन मोतियों की इतनी समृद्धि है कि नासिका के बाहर भी एक मुक्तामणि दिख रही है।

रहस्यार्थ—ऐश्वर्यप्राप्ति का साधन बताया गया है। बीजाक्षर 'अ' है, इसका ध्यान पीछे शुरू के श्लोकों में ही आ चुका है। जपसंख्या पूर्ववत् 1000 व आहुति 100 या 10 हैं। तर्पण मार्जन 10-10 करें तथा श्लोकपाठ 10 व आहुति 5 हैं। हवन में तिल, शर्करा व जवाकुसुम (जूही) प्रयोग करें। यन्त्र इस प्रकार है—

: 62 :

प्रसङ्ग सङ्गति—स्वभाव से ही समग्र ताम्रवर्णी ओष्ठों की समानता वाले पदार्थों की गवेषणा में प्रवाल की लता और बिम्बफल—कुंदरू के फल भी शून्य प्रतीत होते हैं क्योंकि आपके लाल होंठ तो अद्वितीय कान्ति से शोभायमान हैं—

प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदन्ति दन्तच्छदरुचेः,
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता।
न बिम्बं तद्बिम्ब-प्रतिफलन-रागादरुणितं,
तुलामध्यारोढुं कथमिव विलज्जेत कलया।।62।।

अवतरणिका—सुन्दर दाँतों वाली माता के दोनों ओष्ठों की समानता न तो प्रवाल की लतिका से उत्पन्न फल से हो सकती है, क्योंकि वह पहले तो लाल रङ्ग का होता है तथा कालान्तर में मिश्रित वर्ण का हो जाता है। और न ही वे बिम्बाफल से तुलना को प्राप्त होते हैं। क्योंकि वह कटुफल प्रारम्भ में हरा होता है और पकने पर लाल रङ्ग का होता है। इसलिए मैं—स्तोता आपके ओष्ठों की तुलना करने के लिए प्रवाल और बिम्बाफल का विचार करता हूँ तो दोनों ही तुच्छ प्रतीत हैं। यह कहते हुए आपके ओष्ठों की तीनों

भुवनों में उपमा दुर्लभ हैं, अतः वे अनुपम हैं, यह स्तुति द्वारा व्यक्त करते हैं।

सरलार्थ—हे सुन्दर दाँतोंवाली माँ, आपके स्वभावतः लाल ओष्ठों की कान्ति की समानता का कथन मैं तभी कर सकता हूँ, जबकि विद्रुमलता में फल लगें! क्योंकि प्रवालमणि स्वभाव से ही लाल नहीं होती; किन्तु उसकी लता में जब अत्यन्त लाल रङ्ग का फल लगे तब उपमा हो सकती है, इसी प्रकार बिम्बाफल भी आपके ओष्ठों की तुलना में लज्जित क्यों नहीं हो? अर्थात् वह लज्जित होगा ही। इसमें हेतु यह है कि उस फल में आपके शरीर की कान्ति का ही योग रहता है। अतः वह आपके शक्तिपात मात्र से लाल रङ्ग का बनता है, इसलिए वह आपके शक्तिपातरूप शरीर की सुन्दरता से सम्पन्न होने से वह लेशमात्र भी समानता में लज्जित क्यों नहीं होगा?

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'प्र' है। अतः प+र का ध्यान करें। ध्यान-मन्त्र पीछे आ चुके हैं। शेष विधि पिछले श्लोक की तरह ही है।

: 63 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के मुखचन्द्र की चाँदनी का निरन्तर पान करने से चकोर-पक्षियों की चोंच में जड़ता आ जाने से वे रात्रि में कांजी की बुद्धि से चन्द्रमा की अमृत-लहरी का खटाई की इच्छा से बार-बार पान करते हैं।

स्मित-ज्योत्स्ना-जालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां,
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चु-जडिमा।
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमाम्लरुचयः,
पिबन्ति स्वच्छन्दं निशि निशि भृशं काञ्जिकधिया ॥63 ॥

अर्थात् माता के मुखचन्द्र की ज्योत्स्ना के समक्ष चन्द्रमा की ज्योत्स्ना खट्टी है, तुच्छ है। यह बतलाते हैं—

अवतरणिका—जगन्माता त्रिपुरसुन्दरी के चन्द्रमुख की मुस्कराहट चाँद की चाँदनी की मधुरता के सामने काँजी (खट्टा पानी) के समान है, चकोर-पक्षी

अपनी चोंच की जड़ता मिटाने के लिए रात्रियों में चन्द्रमा की चाँदनी को खटाई वाली काँजी मानकर बार-बार पीते हैं। इस कथन से चन्द्रमुख की अनुपमता और मुस्कराहट की अति मधुरता को वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—हे माता! आपके चन्द्रमुख की मुस्कराहट से निकलती हुई चाँदनी का पान करके, उसके अति मधुर होने से (निरन्तर पीने के कारण) चोंच में जड़ता आ गई। अतः वे चकोर चन्द्रमा की अमृत-लहरी रूप चाँदनी को खट्टी लगने पर खटाई की भावना से (अपनी चोंचों की जड़ता मिटाने के लिए) स्वच्छन्द रूप से प्रत्येक रात्रि में बार-बार काँजी की इच्छा से पी रहे हैं। अर्थात् भगवती के चन्द्रमुख की मुस्कराहट के समक्ष चन्द्रमा की चाँदनी जो अति मधुर है उसे भी अत्यन्त खट्टी मानकर बार-बार पीते हैं।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स्मि' है। अतः स्+म्+इ का ध्यान होगा। शेष समस्त विधि पूर्ववत् ही है। ध्यान भी पीछे आ चुके हैं। यन्त्र प्रस्तुत है—

: 64 :

प्रसङ्ग सङ्गति—जगदम्बा के चन्द्रमुख का ध्यान वर्णित करके आगे उनकी जिह्वा का ध्यान वर्णित करते हुए उसकी अरुणिमा की सर्वोत्कृष्टता एवं उस पर विराजमान स्फटिक सदृश कान्तिवाली सरस्वती की स्थिति का निरूपण करते हैं—

अविश्रान्तं पत्युर्गुण-गण-कथाम्रेडन-जपा,
जपापुष्पच्छाया तव जननि! जिह्वा जयति सा।
यदग्रासीनायाः स्फटिक-दृषदच्छच्छविमयी,
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा।।64।।

अवतरणिका—विश्वात्मा जगदम्बा की जिह्वा सर्वोत्कर्षशालिनी है। वह जपापुष्प के रङ्ग की है, जिससे भगवती निरन्तर अपने पतिदेव सदाशिव के

गुणगणों का जप करती हैं तथा उस जिह्वा के अग्रभाग में स्फटिक वर्णवाली सरस्वती देवी विराजमान है, वह भी अपनी निर्मलता-स्वच्छता के कारण जिह्वा के वर्ण के कारण माणिक्य-सदृश लाल वर्ण की हो जाती है। इस कथन से आचार्यवर्य जिह्वा के द्वारा पति के गुण-स्मरण और उसके अग्रभाग पर सरस्वती के निवास का वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—हे माता ! आपकी जिह्वा सदा विजय को प्राप्त हो रही है। वह जिह्वा जपापुष्प के समान लालवर्ण की है, जिससे आप सदैव अपने स्वामी भगवान् शिव के गुण-गणों की कथा का स्मरण-जप करती रहती हैं और आपकी उस जिह्वा के अग्रभाग पर विराजित स्फटिक के समान अति स्वच्छ कान्तिवाली भगवती सरस्वती के शरीर का वर्ण माणिक्य के सदृश रक्त वर्ण का हो गया है। ऐसी आपकी जिह्वा की जय हो।

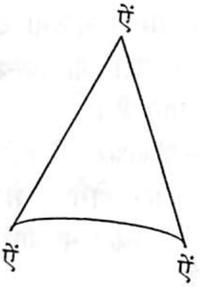

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'अ' है। ध्यान पूर्वोक्त है। जपादि विधान पूर्ववत् रहेगा।

: 65 :

प्रसङ्ग सङ्गति—कार्तिकेय, इन्द्र एवं विष्णु आदि देव युद्ध में राक्षसों को परास्त करके उनसे छीने हुए मुकुट सहित कवच पहने हुए अपने लोक को लौटते हुए शिवजी के निर्माल्य से विमुख होकर माता के मुख से ताम्बूल-खण्ड प्राप्त करके उन्हें खा रहे हैं। इस कथन से शिव निर्माल्य के समान ताम्बूलखण्डों की महिमा कहते हैं—

रणे जित्वा दैत्यानपहृत-शिरस्त्रैः कवचिभि—
निवृत्तैश्चण्डांश - त्रिपुरहर - निर्माल्य - विमुखैः।
विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशि-विशद-कर्पूर-शकला,
विलीयन्ते मातस्तव वदन-ताम्बूल-कवलाः ।।65 ।।

अवतरणिका—माता का अपने स्कन्द, इन्द्र और विष्णु रूप पुत्रों के प्रति अगाध वात्सल्य का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए मातृप्रेम के कारण मुख में खाए हुए

पान के खण्ड जो कर्पूरखण्ड से सुगन्धित हैं उन्हें पुरस्काररूप में प्राप्त करके वे देव अपने शरीर में चर्चित करके स्वयं को धन्य मानते हैं। यह कहते हैं—

सरलार्थ—हे माता! (आपकी आज्ञा से) रण में राक्षसों को परास्त करके तथा प्रमाण-स्वरूप उन राक्षसों से छीने हुए मुकुट लेकर जब कवच पहने और थके हुए-से आपके पास उपस्थित होते हैं, तब आप उन पुत्रों के प्रति अपार वात्सल्य होने के कारण अपने मुख में रखे हुए ताम्बूल के कर्पूरखण्डों को देती हैं जिन्हें पुरस्कार के रूप में प्राप्त करके वे अपना अहोभाग्य मानते हुए उन ताम्बूलखण्डों को अपने शरीर में लगा लेते हैं।

अर्थात् भगवान् शिव का प्रसाद तो चण्ड-नामक गण का अंश होने से उन्हें (स्कन्द आदि को) प्राप्तव्य नहीं है, अत: वे स्वयं मातृकृपा से प्राप्त प्रसाद से अति प्रसन्न होकर शरीर में पोत लेते हैं।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'र' है। ध्यान पहले दिया जा चुका है। सब विधि पूर्ववत् ही है।

: 66 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवान् शिव के विविध-चरित्रों के गान करना जब भगवती प्रारम्भ करती है, तब माता की वाणी सरस्वती की वीणा से भी इतनी अधिक मनोहर होती है कि उस वाणी की मधुरता के सामने वीणा के स्वर फीके लगते हैं। अत: सरस्वती अपनी वीणा को आँचल से छिपा लेती है।

विपञ्च्या गायन्ती विविधमपदानं पशुपते—
स्त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलित-शिरसा साधुवचने।
तदीयैर्माधुर्यैरपलपित - तन्त्री - कलरवां,
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥66॥

अवतरणिका—भगवती की वाणी के माधुर्य की स्तुति करते हुए सरस्वती की वीणा के स्वर का फीका लगना तथा उस लज्जा के कारण

सरस्वती द्वारा वीणा को आँचल में छिपाने का कथन करते हुए कहते हैं।

सरलार्थ—हे माता ! सरस्वती द्वारा भगवान् शिव के 'त्रिपुरविजय, दक्षयज्ञ-विध्वंस, विषपान, जलन्धरवध, गजासुरवध' आदि चरित्रों का गान आरम्भ करने पर आप सन्तुष्ट होकर जब अपने मस्तक को हिलाती हुई कुछ प्रशंसा-वचन कहना प्रारम्भ करती हैं, तब आपकी वाणी के माधुर्य के समक्ष अपनी वीणा के स्वरों को फीका समझकर उस वीणा को अपने आँचल में चुपके से छिपा लेती है। अर्थात् वीणा के स्वर से भी अत्यन्त मधुर भगवती की वाणी है, जिससे सरस्वती लज्जा का अनुभव करती है।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'वि' है। व+इ का ध्यान पहले दिया जा चुका है। शेषविधि पूर्ववत् है। यन्त्र इस तरह होगा।

: 67 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता के मुख के वर्णन-प्रसङ्ग को ही आगे बढ़ाते हुए अब माता की ठोड़ी का वैशिष्ट्य बतलाते हुए मुख को दर्पण-जैसा धवल तथा ठोढ़ी को अति-वात्सल्य से हिमालय द्वारा स्पर्श की गई तथा अधरपान के लिए आकुल शिव के द्वारा बार-बार स्वहस्त से उठाई हुई कहकर उसके वर्णन में अपनी अक्षमता बतलाते हैं—

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिन-गिरिणा वत्सलतया,
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधर-पानाकुलतया।
करग्राह्यं शम्भोर्मुख-मुकुर-वृन्तं गिरिसुते।
कथङ्कारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्य-रहितम् ॥67॥

अवतरणिका—माता की ठोड़ी-चिबुक के वर्णन के स्तोता आचार्य अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि आपकी ठोड़ी की उपमा मैं कैसे दे सकता हूँ, वह तो वात्सल्य भाव से आपके पिता हिमाचल द्वारा लालित एवं अधरामृतपान के लिए आकुल पतिदेव भगवान् शिव के द्वारा

ऊपर उठाई गई और मुखरूपी दर्पण में माता के शरीर का गोल प्रतिबिम्ब परिलक्षित होने से अनुपमेय है। इन वचनों से ठोड़ी को दैदीप्यमान, सुकुमार तथा अनुपमेय व्यक्त करते हैं।

सरलार्थ—हे माता! आपकी ठोड़ी वस्तुतः अनुपमेय है, क्योंकि वह आपके पिताजी हिमालय द्वारा वात्सल्यवश बार-बार स्पर्श को प्राप्त हुई है तथा आपके पतिदेव भगवान् शिव द्वारा अधरामृत पान करने की लालसा में हाथों से ऊँची उठाई गई है। साथ ही वह अत्यन्त निर्मल दर्पण के समान है जिसमें आपका सम्पूर्ण शरीर प्रतिबिम्बित होता है। ऐसी उपमारहित ठोड़ी-चिबुक का वर्णन मैं स्तोता कैसे कर सकता हूँ। क्योंकि अनुपम का वर्णन दुष्कर ही है।

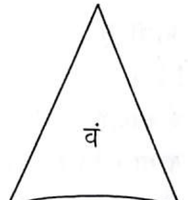

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'क' का विधान पूर्ववत् है। यन्त्र प्रस्तुत है—

: 68 :

प्रसङ्ग सङ्गति—जगदम्बा की ग्रीवा को मुख-कमल को धारण करती हुई कमलनाल के समान सुन्दर, गौरवर्णी तथा अगरु के लेप से मलिन बनी हुई बतलाते हुए हार से सुशोभित कहकर कमलिनी के समान ललित और सौन्दर्य से पूर्ण निरूपण करते हैं।

भुजाश्लेषान्नित्यं पुर-दमयितुः कण्टकवती,
तव ग्रीवा धत्ते मुख-कमल-नाल-श्रियमियम्।
स्वतः श्वेता कालागुरु-बहुल-जम्बाल-मलिना,
मृणाली-लालित्यं वहति यदधो हार-ललिता।।68॥

अवतरणिका—जगदम्बा के कण्ठ का ध्यान प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि हे माता! आपकी ग्रीवा भगवान् शिव की भुजाओं के आलिङ्गन से सदा रोमाञ्चित है, वह स्वतः श्वेत है; किन्तु काले अगर के लेपन से मलिन बनी हुई है, वह हारधारण से युक्त होने के कारण कमलिनी की

नाल के लालित्य को प्राप्त हो रही है। अर्थात् मुखकमल को धारण करनेवाली आपकी ग्रीवा कमलनाल जैसी सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

सरलार्थ—हे भगवती! भगवान् शङ्कर के द्वारा सदा भुजालिङ्गन से रोमाञ्चित बनी हुई आपकी ग्रीवा मुखकमल को धारण करनेवाली कमलनाल की शोभा को धारण कर रही है। क्योंकि वह ग्रीवा स्वयं गौरवर्णवाली है। किन्तु उस पर काले अगर का लेप होने से वह पङ्किल हो रही है, तथा उसके नीचे हारलता भी शोभित हो रही है। इन सबके साम्य से आपकी ग्रीवा मृणालिनी की शोभा को धारणा कर रही है।

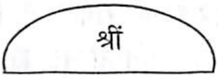

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'भु' है। अतः भ+उ का ध्यान होगा। विधान पूर्ववत् है। यन्त्र दिया जा रहा है—

: 69 :

प्रसङ्ग सङ्गति—ग्रीवा के स्वरूप का तथा उससे निकलनेवाली ध्वनि-स्वर लहरी का वर्णन करते हुए उसमें दिखाई देनेवाली तीन रेखाओं के सम्बन्ध में कल्पना प्रस्तुत करते हैं—

गले रेखास्तिस्रो गति-गमक-गीतैक-निपुणे!
विवाह-व्यानद्ध-प्रगुण-गुणसंख्या-प्रतिभुवः ।
विराजन्ते नानाविध-मधुर-रागाकरभुवां,
त्रयाणां ग्रामाणां स्थिति-नियम-सीमान इव ते।।69॥

अवतरणिका—भगवती के गले में शोभायमान तीन रेखाओं के सम्बन्ध में कल्पना करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि उन तीनों रेखाओं से रागों के विवाद से निश्चित किए गए अनेक गुण और स्वरों की संख्या का प्रतिनिधित्व ज्ञात होता है अथवा आपके विवाह के समय गले में पहनाई गई मांगल्यसूत्र की लड़ियों से (तीन रेखाएँ) पड़ गई हैं। इन रेखाओं को सौभाग्यसूचक बतलाते हुए कल्पना की गई है—

सरलार्थ—हे गति, गमक और गीत में निपुण भगवती ! आपके गले में पड़ी हुई तीन रेखाएँ, ऐसी प्रतीत हो रही हैं, मानो वे आपके विवाह के समय मङ्गलसूत्र के रूप में पहनाए गए सूत्र की तीन लड़ियों से चिह्नरूप बनी हुई हैं। अथवा राग-रागिनियों के विवाद में निर्धारित किए गए अनेक गुण और स्वरादि की संख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं। किंवा ये तीनों रेखाएँ रागों के उत्पत्ति केन्द्र—षड्ज, मध्यम, गान्धार नामक तीन ग्रामों की स्थिति एवं नियमों की मर्यादा के समान सुशोभित हो रही हैं।

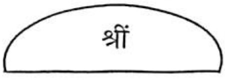

यन्त्र-सूचना—बीजाक्षर 'ग' का ध्यान पूर्वोक्त है। विधान सब पूर्ववत् है।

: 70 :

प्रसङ्ग सङ्गति—जगदम्बा की चार भुजाओं की महिमा से सम्बद्ध कथानक का स्मरण कराते हुए उनकी अतिशय कोमलता और ब्रह्मा के द्वारा अपने चारों मुखों से स्तुति करने का वर्णन करते हैं—

मृणाली-मृद्वीनां तव भुज-लतानां चतसृणां,
चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः।
नखेभ्यः सन्त्रस्यन् प्रथम-मथनादन्धकरिपो—
श्चतुर्णां शीर्षाणां सममभय-हस्तार्पण-धिया ।।70 ।।

अवतरणिका—भगवती की चारों भुजाएँ अत्यन्त कोमल तथा अपने भक्तों को अभय देनेवाली हैं। इस कथन की पुष्टि में पौराणिक आख्यान को प्रस्तुत करते हुए उनकी महिमा की स्तुति ब्रह्माजी भी अपने चारों मुखों से सदैव करते हैं, यह वर्णन करते हैं—

सरलार्थ—हे माता ! अन्धकरिपु भगवान् शिव के नखों द्वारा अपने पाँचवें मस्तक का मंन्थन होने से भयभीत, ब्रह्माजी ने आपकी चारों भुजाओं के कोमल स्पर्श से अभय प्राप्त किया था। उसी प्रसङ्ग का स्मरण करते

हुए वे आपकी कमलिनी के समान सुकोमल चारों भुजलताओं की स्तुति करते हैं। यहाँ ब्रह्माजी के चारों मुखों से स्तुति का अभिप्राय चारों वेदों के द्वारा स्तुति का वर्णित है।

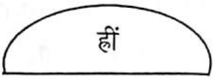

प्रयोगसौविध्य—बीजाक्षर 'मृ' है। ध्यान म+ऋ का होगा। जपविधान पूर्ववत् है।

: 71 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के हाथों की कान्ति का वर्णन करने में अपनी अक्षमता दिखाते हुए उनकी अपूर्व शोभा की अनुपमता बतलाते हैं—

नखानामुद्योतैर्नव-नलिन-रागं विहसतां,
कराणां ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे!।
कयाचिद् वा साम्यं भजतु कलया हन्त! कमलं,
यदि क्रीडल्लक्ष्मी-चरण-तल-लाक्षारस-चणम्॥71॥

अवतरणिका—भगवती के हाथों की उपमा सर्वथा आर्णनीय है। हस्तपल्लव में नखों की कान्ति कमलों की लालिमा का उपहास करनेवाली है। वह अरुणिमा स्वाभाविक भी है, जबकि कमलों में जो अरुणिमा है, वह तो लक्ष्मी के चरणों में लगे हुए लाक्षारस से प्राप्त है। अतः उसकी विशिष्टता का वर्णन असम्भव है। यह कहते हुए हाथों की महिमा का कथन करते हैं।

सरलार्थ—हे उमे! आपके हाथों की कान्ति का मैं स्तोता कैसे वर्णन करूँ? (आप ही कहिए) जिन हाथों के नखों की कान्ति नए खिले हुए कमलों की अरुणिमा का उपहास कर रही है तथा किसी अंश में किसी प्रकार कमल की पत्रिकाओं की अरुणिमा से उनकी समानता की जाए तो वह तो क्रीड़ा करती हुई लक्ष्मी के चरणों के लाक्षारस के स्पर्श से प्राप्त

है। अतः वह उपमेय नहीं है। जबकि आपके नखों की अरुणिम-कान्ति तो स्वाभाविक है।

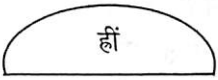

प्रयोगसौविध्य—जपादि विधान पूर्ववत् ही रहेगा। बीजाक्षर 'न' है। इसका ध्यान पीछे आ चुका है।

: 72 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता के दोनों स्तनों का ध्यान प्रस्तुत करते हुए बालरूप कार्तिकेय एवं गणेश के एक साथ दूध पीने की स्थिति में टपकते दूध और गणेश के मस्तक के समान स्तनों की समानता के कारण भ्रमवश गणेश द्वारा दोनों स्तनों को टटोलना परिहास का कारण बतलाते हैं।

समं देवि! स्कन्द-द्विप-वदनपीतं स्तनयुगं,
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम्।
यदालोक्याशङ्काकुलित-हृदयो हासजनकः,
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति।।72।।

अवतरणिका—माता के अङ्ग के अवयवों का वर्णन करते हुए प्रसङ्ग प्राप्त स्तनों की महिमा एवं गणेश-गजानन के उभरे हुए मस्तक और स्तनों में साम्य आदि का दिग्दर्शन कराते हुए अपने स्वेद-निवारण की कामना करते हैं—

सरलार्थ—हे देवी! स्कन्द और गणेशजी के द्वारा पान किए हुए आपके दोनों स्तन, जिनके मुख से दूध टपक रहा है, वे हमारे स्वेद का निवारण करें। उन स्तनों से दुग्धपान करते समय गणेशजी शङ्का से आकुल-हृदय होकर शीघ्र ही अपने ही मस्तक के कुम्भ-सदृश भाग को टटोलकर हास्यजनक चेष्टा करते हैं।

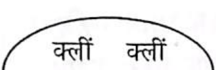

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स' है। ध्यान आदि पूर्वोक्त है। जपादि विधान पिछले श्लोक की तरह से रहेगा।

प्रसङ्ग सङ्गति—श्रीमाता के स्तनयुगल को कलशरूप कहने में अपनी निश्चित भावना की पुष्टि करते हुए उनका पान करनेवाले स्कन्द और गणेश की कुमाररूपता आज भी बनी हुई है—यह व्यक्त करते हुए कहते हैं—

अमू ते वक्षोजावमृत-रस-माणिक्य-कुतुपौ,
न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः ।
पिबन्तौ तौ सस्मादविदित-वधूसङ्गरसिकौ,
कुमारावद्यापि द्विरदवदन-क्रौञ्चदलनौ ।।73 ।।

अवतरणिका—स्तन-वर्णन के सन्दर्भ में आचार्यश्री पुनः स्वकथन को पुष्ट करते हैं तथा अपने कथन में दोनों स्कन्द और गणपति के आज भी कुमार होने की बात कहते हैं—

सरलार्थ—हिमालय के सौभाग्य को इङ्गित करनेवाली पताकारूप हे माता ! आपके ये दोनों स्तन माणिक्य से निर्मित कलश अमृतरस से भरे हुए हैं, इस कथन में हमारे मन में तनिक भी सन्देह नहीं है । जिन स्तन-कलशों से दूध पीते हुए स्कन्द और गणेश वधूसङ्गम के रस से अनभिज्ञ ही हैं वे आज भी कुमारावस्था में ही बने हुए हैं । अर्थात् बाल्यावस्था के कारण दुग्धपान के लिए लालायित रहते हैं । वे दोनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं ।

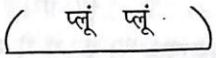

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'ऊ' है । ध्यान पीछे आ चुका है । जपविधान पिछले श्लोक की तरह है । यन्त्र दिया जा रहा है ।

प्रसङ्ग सङ्गति—स्तन-कलशों की कमनीयता के वर्णन को और आगे बढ़ाते हुए उनकी हाथी के कुम्भस्थल जैसी विशालता और उन पर मुक्ता एवं मणियों के हार धारण से विभिन्न प्रकार की मिश्रित कान्ति वाली शिवजी की कीर्ति की समानता प्रदर्शित करते हैं—

वहत्यम्ब ! स्तम्बेरम-दनुज-कुम्भ-प्रकृतिभिः,
समारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकाम्।
कुचाभोगो बिम्बाधर-रुचिभिरन्तः शबलितां,
प्रताप-व्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव ते।।74।।

अवतरणिका—श्रीमाता के स्तनकलश हस्तिकुम्भ के समान हैं और उन पर मोती और मणियों के हार सुशोभित हो रहे हैं। उन हारों की मणियों पर माता के ओष्ठों की लालवर्णी कान्ति पड़ने से वे हार भी अरुण वर्ण के कारण भगवान् शिवजी के प्रताप से मिश्रित कीर्ति के समान बतलाते हैं।

सरलार्थ—हे माता! गजासुर के गण्डस्थल से निकलने वाली मुक्ता-मणियों की यह हारलता जो आपके स्तनों के मध्यस्थल में है वह आपके बिम्बफल जैसे अधर की अरुणिम कान्ति से वैसी ही अरुण वर्ण की बन गई है। वह विमल हारलता ऐसी प्रतीत हो रही है, जो प्रताप-मिश्रित शिवजी की कीर्ति का कथन कर रही है। अर्थात् प्रताप का लाल वर्ण और कीर्ति का श्वेतवर्ण दोनों ही माता के वक्षःस्थल पर सुशोभित हारलता की मणियाँ हैं।

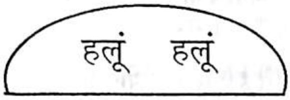

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'व' है। ध्यान पूर्वोक्त है। जपविधान पिछले श्लोक की तरह होगा। यन्त्र प्रस्तुत है—

: 75 :

प्रसङ्ग सङ्गति—पर्वतराज की पुत्री माता त्रिपुरसुन्दरी के स्तन से निःसृत दूध की महिमा वर्णित करते हुए उसे माधुर्यसुधारूप साक्षात् सरस्वतीरूप कहते हैं तथा जिस दूध को कृपापूर्वक द्रविड शिशु को देने और उसके आस्वाद से उस शिशु का प्रौढ कवि बन जाना प्रसङ्गतः व्यक्त करते हैं—

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधर-कन्ये हृदयतः,
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव।

दयावत्या दत्तं द्रविड-शिशुरास्वाद्य तव यत्,
कवीनां प्रौढानांमजनि कमनीयः कवयिता।।75।।

अवतरणिका—हे पर्वतराज पुत्री ! आपके स्तनों से निकला हुआ दूध आपके हृदय में बहनेवाले ज्ञान के सदृश है, ऐसा मैं मानता हूँ। क्योंकि कृपापूर्वक आपके द्वारा प्रदत्त उस अमृतसाररूप दूध का पान करके द्रविड शिशु प्रौढ कवियों की श्रेणी में कमनीय कवि बन गया।

सरलार्थ—हे मातः। आपके स्तनों से बहनेवाला दूध वास्तव में उत्तम काव्यधारा है। आपने इस द्रविड़ बालक (शङ्कराचार्य) को जो अपना दूध पिलाया था, वही आज इस बालक की कवित्व शक्ति का स्रोत है। तभी तो यह बालक आज प्रौढ़ कवित्वशक्ति से युक्त है।

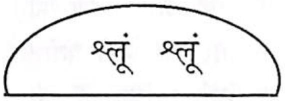

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'त' है। ध्यान पीछे आ चुका है। जपविधान पिछले श्लोक की तरह है।

ऐतिहासिक सूचना—आदि शङ्कराचार्य द्रविड़ थे। आपके पिता अपने गाँव के पास स्थित भगवती मन्दिर में नित्य पूजन हेतु जाते थे, तथा वहाँ से शेष पञ्चामृत घर लाकर बालक शङ्कर को पिलाते थे। एक बार उन्हें कार्यवशात् बाहर जाना पड़ा तो वे पूजन हेतु अपनी पत्नी को नियुक्त कर गए। लेकिन मासिक चक्र के दिनों में प्रथानुसार जब बालक शङ्कर की माता मन्दिर में न जा सकी तो उन्होंने बालक को ही समझाया कि यह पञ्चामृत घर ले आना। बालक शङ्कर, स्वच्छ निर्मल मनवाले, समस्त सांसारिक व्यामोह से परे, जब उन्होंने पञ्चामृत प्रस्तुत किया और भगवती द्वारा पीने की प्रतीक्षा करने लगे। भगवती द्वारा न पीने पर वे हठ करने लगे। हारकर भगवती स्वयं प्रकट हुईं तथा सर्व दूध आदि पी लिया। यह देखकर बालक रोने लगा, क्योंकि उसके लिए आज कुछ भी नहीं बचा था। तब भगवती ने उस शुद्ध हृदय द्रविड़ बालक भगवत्पाद शङ्कराचार्य को अपने स्तनों से दूध पिलाया। तभी से अल्पावस्था में ही बालक के मुख से स्वयं सरस्वती फूट पड़ी थी।

इसी घटना का स्मरण भगवत्पाद ने उक्त श्लोक में किया है।

: 76 :

प्रसङ्ग सङ्गति—आगे क्रमप्राप्त भगवती की नाभि का ध्यान प्रस्तुत करते हुए उसे सरोवर-स्वरूप और उसके ऊपरी भाग में विराजमान रोमावली के सम्बन्ध में तर्क देते हैं—

हर-क्रोध-ज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा,
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गो मनसिजः।
समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये! धूम-लतिका,
जनस्तां जानीते तव जननि! रोमावलिरिति।।76।।

अवतरणिका—आचार्यश्री माता की नाभि को सरोवर की संज्ञा देते हुए शिवजी के क्रोध की ज्वालाओं से जलते हुए कामदेव के द्वारा उसमें जलन बुझाने की भावना से डुबकी लगाने और उसी कारण वहाँ से धुँआ निकलने से रोमावली की रचना को व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे जननी! आपके नाभिरूप गहरे सरोवर में भगवान् हर के क्रोध की ज्वालाओं से जलते हुए कामदेव ने अपनी जलन मिटाने के लिए गोता लगाया, उससे (आग बुझने पर) लता के समान जो धुएँ की रेखा बनी, उसे जनसाधारण आपकी नाभि से ऊपर उठने वाली रोमावली समझते हैं।

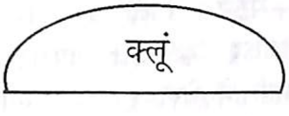

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'ह' का ध्यान पहले दिया जा चुका है। जपविधान पूर्ववत् है। लेकिन श्लोक आहुति 6 होंगी। यन्त्र प्रस्तुत है—

आख्यान—भगवान् शङ्कर द्वारा कामदेव को नेत्राग्नि से भस्म करने की घटना की ओर सङ्केत किया है। शङ्कर के तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि से कामदेव भस्म हो गया था, जब देवताओं की प्रेरणा से, देव सेनापति कुमार कार्तिकेय के सम्भवहेतु वे भगवान् शङ्कर के हृदय में कामभाव उत्पन्न कराना चाहते थे।

: 77 :

प्रसङ्ग सङ्गति—रोमावली-वर्णन को ही पुनः नाभि से सम्बद्ध वर्णन से समन्वित करते हुए उत्प्रेक्षा-पूर्वक प्रस्तुत करते हैं—

यदेतत् कालिन्दी-तनुतर-तरङ्गाकृति शिवे!
कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव यद्भाति सुधियाम्।
विमर्दादन्योन्यं कुच-कलशयोरन्तरगतं,
तनूभूतं व्योम प्रविशदिव नाभिं कुहरिणीम्॥77॥

अवतरणिका—रोमावली का ध्यान वर्णित करते हुए 'अखिल विश्व भगवती के शरीर का एक अत्यन्त सूक्ष्म अंश है' यह व्यक्त करने के लिए रोमावली की क्षीणता को कारण सहित प्रतिपादित करते हैं—

सरलार्थ—हे शिवे! आपके कृश कटिभाग में यमुना की क्षीण तरङ्ग जैसी आकृतिवाली जो रोमावली कुछ-कुछ दिखाई दे रही है, वह सुधीजनों को ऐसी प्रतीत होती है कि वह आपके कुचकलशों के मध्य में आकार दोनों स्तनों की परस्पर रगड़ से पिस जाने के कारण अत्यन्त क्षीण होकर गम्भीर नाभिरूप बिल में प्रवेश कर रही है।

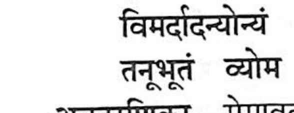

रहस्यार्थ—सङ्कट निवारण इसका प्रयोग है। बीजाक्षर 'य' है। जपसंख्या पूर्ववत् है। सामग्री में बेलपत्र, शहद, खीर और फूल लें। श्लोक-पाठ की 6 आहुति लगेंगी।

ध्यान—

धूम्रवर्णां महारौद्रीं षड्भुजां रक्तलोचनाम्।
रक्ताम्बरपराधीनां नानालङ्कारभूषिताम्॥
महामोक्षप्रदां नित्यामष्टसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा यकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये।

प्रणमामि सदा दिव्यं शक्ति श्रीमोक्षमव्ययम् ॥
यकारं श्रणु चार्वंगि। चतुर्वर्गमयं सदा।
पलालधूम संकाशं स्वयं परमकुण्डली ॥
पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं तथा ॥

: 78 :

प्रसङ्ग सङ्गति—पूर्वोक्त विशिष्ट गुणोंवाली नाभि के सौन्दर्य की अपूर्वता सदा विजयिनी हो। इस आशय से नाभि की सर्वोत्कृष्टता का विविध उपमानों से पोषण करते हैं—

स्थिरो गङ्गावर्तः स्तन-मुकुल-रोमावलि-लता-
कलावालं कुण्डं कुसुमशर-तेजो-हुतभुजः ।
रतेर्लीलागारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते !
बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिश-नयनानां विजयते ।।78 ॥

अवतरणिका—भगवती गिरिजा की नाभि की सर्वोत्कृष्टता का कथन करते हुए आचार्यप्रवर उसे पुनः समाहाररूप में विविध उपमानों से उसे भगवान् शिव के नेत्रों की सिद्धि का बिलद्वार व्यक्त करते हैं—

सरलार्थ—हे गिरिराज सुता भगवती! आप की नाभि की सदा जय हो। जिसकी उपमा प्रस्तुत उपमानों से दी जा सकती है—1. जिस नाभि के ऊपरी भाग में विराजित दोनों स्तन श्रीगङ्गाजी के स्थिर भँवर, 2. कलिकायुक्त नीचे की ओर फैली हुई रोमावली-रूप लता की क्यारी, 3. श्री कामदेव के तेजोरूप अग्नि का कुण्ड, 4. भगवती रति का क्रीडामन्दिर, तथा 5. श्रीयोगेश शिव के नेत्रों को परमानन्दरूप योगसिद्धि देनेवाली गिरि-गुहा, जिसमें बैठकर आराधना करते हुए शिव के नेत्र शान्ति चाहते हैं। इन सभी उपमानों से नाभि एक गमले के रूप में है, जिसमें रोमावली रूप लता में कलिकारूप स्तन लगे हैं। अथवा कामदेव की तेजोमय अग्नि का कुण्ड है, किंवा रति का लीलागार है, अथवा शिवजी के नेत्रों को शान्ति पहुँचाने वाली गुहा है। अतः इस सर्वोत्कृष्टता के कारण यह विजय को प्राप्त हो रही है।

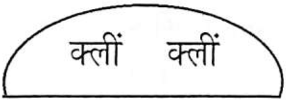

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स्थि' है। **अतः** स्+इ+थ् का सम्मिलित ध्यान करें। स तथा इ का ध्यान पूर्वोक्त है। 'थ' का ध्यान दिया जा रहा है।

जपादि विधान बिल्कुल पिछले श्लोक की तरह होगा। यन्त्रस्वरूप स्फुट है—

नीलवर्णां त्रिनयनां षड्भुजां वरदां पराम्।
पीतवस्त्रपराधीनां सदासिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा थकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं शिवे।।
तरुणादित्यसंकाशं थकारं प्रणमाम्यहम्।
थकारं चंचलापांगि! कुण्डली मोक्षरूपिणी।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये।।

: 79 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती की स्वाभाविक रूप से क्षीण कटि का ध्यान वर्णित करते हुए अनेक प्रकार से उसके कुशल की कामना-पूर्वक उसकी स्थिति पर अपनी शङ्काओं को प्रस्तुत करते हैं।

निसर्ग-क्षीणस्य स्तन-तट-भरेण क्लमजुषो,
नमन्मूर्तेर्नारी-तिलक! शनकैस्त्रुट्यत इव।
चिरं ते मध्यस्य त्रुटित-तटिनी-तीर-तरुणा,
समावस्था-स्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये!।।79।।

अवतरणिका—भगवती का कटि-प्रदेश अत्यन्त क्षीण है तथा वह स्तन-तट के भार से बोझिल और झुकी हुई है। वह ऐसी लगती है मानो अब टूटने वाली हो। साथ ही वह नदी के किनारे पर लगे हुए वृक्ष की स्थिति को भी प्राप्त है, इससे भी ऐसा प्रतीत होता है कि वह आपकी कटि उसके समान

अवस्था को प्राप्त हो रही है, ऐसी शरीर के मध्यभाग में स्थित उस कटि का कुशल हो। अर्थात् वह उपर्युक्त कठिनाइयों से सुरक्षित रहे। ऐसी मङ्गलभावना से कटि के लावण्य का वर्णन करते हैं—

सरलार्थ—हे शैलतनया भगवती! सहजरूप से कृश, स्तनों और उनके दोनों ओर के पुष्ट भागों के भार से बोझिल है, एवं नाभिप्रदेश में पड़ी हुई त्रिवलियों से उदरभाग संकुचित हो गया है तथा नदी के तट की ओर झुके हुए वृक्ष की भाँति दिखाई देनेवाले उस मध्यभाग का सदैव कुशल हो। अर्थात् वह उपर्युक्त विषम स्थिति के कारण टूटता हुआ लग रहा है, वह टूटे नहीं। क्योंकि उसके टूटने से सारे जगत् का विलय हो जाएगा। उसके स्थिर बने रहने से सारे विश्व का कल्याण होगा। वह क्षीण होते हुए अत्यन्त सारभूत है।

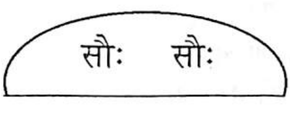

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'नि' है। न्+इ का संयुक्त ध्यान प्रयुक्त होगा, जो पीछे आ चुका है। जपादि विधान पूर्वोक्त प्रकार से ही होगा।

: 80 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के कुचकलशों, कंचुक, उदर और त्रिवली-आदि का सामूहिक ध्यान प्रस्तुत करते हुए आचार्य पूर्वोक्त भाव को ही पुनः अन्य प्रकार से प्रकट करते हैं—

कुचौ सद्यः स्विद्यत्तट-घटित-कूर्पास-भिदुरौ,
कषन्तौ दोर्मूले कनक-कलशाभौ कलयता।
तव त्रातुं भङ्गादलमिति वलग्नं तनुभुवा,
त्रिधा नद्धं देवि! त्रिवलि लवली-वल्लिभिरिव।।80।।

अवतरणिका—पूर्व में कहे गए भाव को ही पुनः अन्य अभिप्राय से उत्प्रेक्षा करते हुए स्तोता—आचार्य स्तनों की शोभा को कामदेव से व्याप्त,

तीन सलवटों से युक्त उदर कहीं भङ्ग न हो जाए, इस आशङ्का से उसकी रक्षा के लिए वासन्तीलता से बँधे हुए मानते हैं—

सरलार्थ—हे माता ! पर्याप्त कसी हुई चोली पहनने के कारण आपके स्तन बाँहों के ऊपरी भाग को खींचते हुए तथा पसीने से भीगे हुए, कञ्चुक का प्रतिक्षण भेदन कर उभरे हुए कुच-कलश सुवर्ण-कलश के समान शोभित हैं । वहीं आपके उदर में त्रिवली के बहाने निरन्तर बढ़नेवाले कामदेव से बचने के लिए आपका मध्यभाग-कटिप्रदेश स्तनभार से भङ्ग नहीं हो जाए, इस आशङ्का से विधाता ने त्रिवलीरूप लवलीलता के तन्तुओं से बाँध रखा हो, ऐसा प्रतीत होता है ।

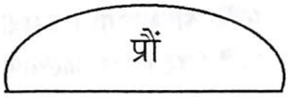

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'कु' है । क् + उ का ध्यान पीछे दिया जा चुका है । शेष सब विधि पिछले श्लोक की तरह ही है ।

: 81 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता पार्वती की कटि के अधोभाग का ध्यान प्रस्तुत करते हुए उसके भारीपन और विस्तार के सम्बन्ध में वर्णन करके पृथ्वी के विस्तार को लघु बनानेवाला कहते हैं—

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति ! निजात्
नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे ।
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं,
नितम्ब-प्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च ।।81 ।।

आतरणिका—भगवती के नितम्ब भाग की प्रपुष्टता एवं अतिशय विस्तारशीलता के सम्बन्ध में कल्पना द्वारा पार्वती के पिता हिमालय द्वारा उन्हें दहेज में दिया हुआ बतलाते हैं तथा उसकी गुरुता और विस्तार के सामने पृथिवी का गुरुत्व और विस्तार भी न्यून प्रतीत होता है, यह प्रकट करते हैं—

सरलार्थ—हे पार्वती माता ! आपकी कमर के नीचे का भाग—

कटिप्रदेश भारी-प्रपुष्ट और विस्तारवाला है। इसके सम्बन्ध में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह गुरुता और विस्तार आपके पिताजी पर्वतराज हिमालय ने अपने ढलाव से निकालकर कन्या के विवाह में दिए जानेवाले दहेज के रूप में आपको अर्पित किए हैं। यही कारण है कि आपके नितम्बभाग की विशालता और गुरुता समस्त पृथ्वी को भी आच्छादित कर देती है तथा उसे लघु बना देती है। अर्थात् आपके नितम्ब भाग के समक्ष पृथ्वी भी कुछ नहीं है, ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है।

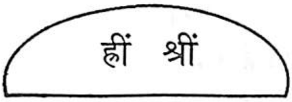

रहस्यार्थ—बीजाक्षर ग्+उ=गु है। दोनों का ध्यान पीछे आ चुका है। जपविधान पूर्ववत् है—

: 82 :

प्रसङ्ग सङ्गति—गिरिराज कन्या भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अपूर्व सौन्दर्य का क्रमशः ध्यान करते हुए उनकी जङ्घाओं तथा घुटनों के बारे में आचार्य अपना मन्तव्य उपस्थित करते हैं—

करीन्द्राणां शुण्डान् कनक-कदली-काण्ड-पटली—
मुभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवति!।
सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणति-कठिनाभ्यां गिरिसुते!,
विधिज्ञे! जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि ॥82॥

अवतरणिका—हे जगदम्बे! हे सर्वज्ञानवती, गिरिसुते! आपकी सुरम्य जङ्घाओं ने हाथियों की सूँड तथा सुवर्ण केले के स्तम्भ इन दोनों को अपने गोलाकार एवं रमणीयता से जीत लिया है, तथा आपके घुटनों में जो कठिनता और गोल आकार है, वे भगवान् शिव को प्रणाम करने से कठिन हो गए हैं। इस प्रकार उन घुटनों ने, अपने इन्द्रादि देवों के ऐरावत आदि दिग्गजों के दोनों कुम्भस्थलों को भी जीत लिया है। इस प्रकार जङ्घा की पिण्डलियों और घुटनों के माध्यम से उनके शौर्य और बल के समक्ष बड़े-बड़े गजराजों के पराक्रम

को तुच्छ बतलाते हुए कहते हैं—

सरलार्थ—हे सर्वज्ञा भगवती ! आप अपने दोनों उरुओं से गजराजों की सूँडों को और सुवर्णनिर्मित कदली-स्तम्भों (दोनों) को एक साथ जीतकर, अपने पतिदेव भगवान् शिव को प्रतिदिन शिवपूजा के पश्चात् प्रणाम करने से कठिन बने हुए घुटनों से दिग्गजों के कुम्भस्थलों को जीत लिया है। अर्थात् आपकी दोनों जंघाएँ तथा दोनों घुटनों के सामने गजेन्द्रों की सूँडें तथा दिग्गजों के कुम्भस्थल तुच्छ प्रतीत होते हैं।

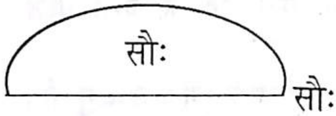

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'क' का ध्यान पूर्वोक्त है। जपादि पूर्व श्लोक के अनुसार होगा।

: 83 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती की जङ्घाओं के ध्यान को ही अन्य कल्पना द्वारा पुनः प्रस्तुत करते हुए आचार्यचरण उन्हें कामदेव के तरकस और चरणों के नखाग्र से उसके बाणों का आभास कराते हैं।

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते,
निषङ्गौ जङ्घे ते विषम-विशिखो बाढमकृत।
यदग्रे दृश्यन्ते दश-शर-फलाः पादयुगली—
नखाग्रच्छद्मानः सुरमुकुटशाणैक-निशिताः ।।83 ।।

आतरणिका—जङ्घाओं की विशिष्टता प्रदर्शित करने की दृष्टि से पुनः आचार्यश्री कहते हैं कि माता की पिण्डलियाँ भगवान् रुद्र को जीतने के लिए दुगुने बाणों से भरे हुए दो तरकसों के समान हैं जिनमें चरणों की दसों अँगुलियों के नखों के अग्रफल लगे हुए हैं। इन बाणों के फल भी देवताओं के मुकुटरूपी सान पर पैनाए हुए हैं—अत्यन्त तीक्ष्ण हैं। इन उपमाओं से अलंकृत वर्णन करते हैं—

सरलार्थ—हे गिरिसुते ! आपकी दोनों पिण्डलियाँ रुद्र को पराजित

करने के लिए दुगुने बाणों से भरे हुए कामदेव के तरकसों के समान हैं। यह सुनिश्चित है। जिन तरकसों के आगे आपके चरणों की अँगुलियों के बहाने से नखों के अग्रभाग, जोकि देवगणों के द्वारा प्रणाम करते समय उनके मुकुटों की मणियों से घिस जाने के कारण सान पर पैनाए हुए फल वाले दस बाण दिखाई देते हैं।

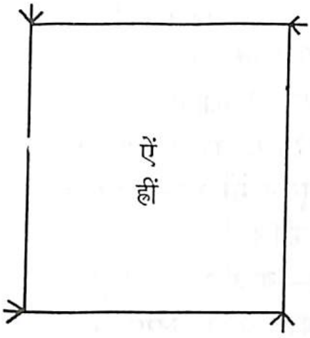

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'प' है। ध्यान पहले आ चुका है। शेष सब विधान पूर्वोक्त है।

: 84 :

प्रसङ्ग सङ्गति—विश्वमूर्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चरण-युगलों का ध्यान प्रस्तुत करते हुए चरणों को देवों के मस्तक पर शिखर के समान विराजमान एवं चरणोदक को गङ्गारूप तथा चरणतल की लाख की कान्ति को हरि की चूडामणि के समान व्यक्त करने के विनम्र-भाव से अपने मस्तक पर रखने की प्रार्थना करते हैं।

श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया,
ममाप्येतौ मातः! शिरसि दयया धेहि चरणौ।
ययोः पाद्यं पाथः पशुपति-जटाजूट-तटिनी,
ययोर्लाक्षा-लक्ष्मीररुण-हरि-चूडामणि-रुचिः ॥84॥

अवतरणिका—श्रुतियों की शिरोरूप उपनिषद् जिन भगवती के चरणों को शिरोभूषण के रूप में धारण करते हैं और जिनका पाद्य शिवजी ने गङ्गा के रूप में मस्तक पर धारण किया है, और जिन चरणों में लगा हुआ अलक्तक रस—महावर श्रीहरि के मुकुट में कौस्तुभमणि के समान चमकता है, ऐसा परम महिमाशाली चरण भक्त-स्तोता अपने मस्तक पर दयापूर्वक स्थापित करने की विनम्र प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

सरलार्थ—हे माता! श्रुतियों के मस्तकरूप, वेदान्त-सिद्धान्त प्रतिपादक

उपनिषद्, आपके जिन चरण-युगल को शिरोभूषण के रूप में धारण करते हैं,

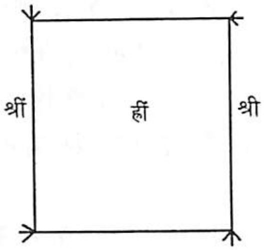

जिनके पाद्यजल को पशुपति शिव अपने जटाजूट में धारण किए हुए हैं तथा जिनमें लगे हुए महावर की कान्ति भगवान् श्रीहरि के मुकुट में जटित रत्नकान्ति बनी हुई है, ऐसे आपके चरण-युगल मेरे मस्तक पर भी कृपा करके स्थापित कीजिए।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'श्रु' है। श्+र+उ का ध्यान लगेगा। जपादि पूर्ववत् हैं। ध्यान पहले बताया जा चुका है।

: 85 :

प्रसङ्ग सङ्गति—चरण-युगल की नयन-रमणीयता, महावर से सुशोभित एवं प्रमद-वन के अशोक-वृक्ष को दोहद के लिए पादाघात से अनुगृहीत करने के कारण शिवजी की ईर्ष्या के हेतुभूत मातृचरणों को वन्दन करते हुए कहते हैं—

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो
स्तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिर-सालक्तकवते।
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते,
पशूनामीशानः प्रमदवन-कङ्केलि-तरवे ।।85 ।।

अवतरणिका—दयामयी देवी के दिव्य चरणों की दिव्यता का वर्णन करते हुए, प्रमद वन के अशोक वृक्ष को अपने पादाघात से कृतार्थ करनेवाले, अति सुन्दर चरणों के प्रति स्वयं पशुपति शिव के मन में ईर्ष्या होने का सङ्केत देते हुए आचार्य कवि विनम्र-प्रणति करते हैं—

सरलार्थ—हे दयामयी माता! आपके नयन मनोहर अलत्ते से शोभित स्फुट कान्तिवाले उन चरण-युगलों के लिए हम-स्तोता प्रणाम करते हैं जो चरण प्रमदवन में लगे हुए अशोकवृक्ष को अनुग्रहवश उसके विकास के लिए पादाघात करते हैं। ऐसे अनुग्रहकारी चरणों का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए स्वयं

भगवान् शिव भी ईर्ष्या करते हैं कि ऐसे पादाघात का सौभाग्य इस वृक्ष को क्यों प्राप्त होता है? मुझे अ-शोक = शोकरहित करने के लिए भगवती के चरणों की ठोकर क्यों नहीं लगती? (अर्थात् अन्य कोई वर्णन और स्तवन की असमर्थता के कारण नमस्कार ही सब की पूर्ति करता है, जिसे हम कर रहे हैं)।

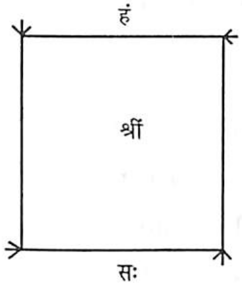

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'न' है। ध्यान पीछे आ चुका है। जपविधान पूर्ववत् ही है।

: 86 :

प्रसङ्ग सङ्गति—पूर्वोक्त पद्य में अशोक के दोहद के लिए भगवती के पादाधात के प्रति शिवजी की ईर्ष्या का वर्णन किया है, उसी सन्दर्भ में अग्रिम पद्य में उस ईर्ष्या को शान्त करने के लिए भगवती ने शिव के कपाल पर पाद-प्रहार किया। उस प्रहार के समय चरण के नुपूर की ध्वनि कामदेव की हँसी की द्योतक है। यह व्यक्त करते हैं—

मृषा कृत्वा गोत्र-स्खलनमथ वैलक्ष्य-नमितं,
ललाटे भर्तारं चरण-कमले ताडयति ते।
चिरादन्तःशल्यं दहन-कृतमुन्मूलितवता,
तुला कोटि-क्वाणैः किलि-किलितमीशान-रिपुणा ॥86॥

अवतरणिका—भगवान् शिव के द्वारा भगवती के प्रति अकस्मात् गोत्र-स्खलन (अन्य नायिका में अनुराग को प्रकट करते हुए प्रमाद से अन्य नामोच्चारण हो जाने) से शिवजी, मिथ्याभाव से सौत का नामस्मरण हो जाने से, लज्जित होकर नेत्र झुका लेते हैं, तभी भगवती उनके ललाट पर अपने चरण से ताड़न कर देती हैं। उस समय चिरकाल के अपने हृदय में वैर रखा हुआ कामदेव, नेत्राग्नि से जलाने के कारण अपने शत्रुरूप नेत्रस्थानीय ललाट पर पादताडना से बजते हुए नुपूर की ध्वनि के बहाने किलकिलाहट भरी हँसी करता है। ऐसी उक्ति द्वारा शिव की

पादप्रहाररूप इच्छा की पूर्ति का दिग्दर्शन कराते हैं—

सरलार्थ—हे भगवती ! आपके नाम का उल्लेख करने में त्रुटि हो जाने से (अन्य नायिका का नामस्मरण हो जाने से) लज्जित भगवान् शिव अपने नेत्र जब झुका लेते हैं, तब आप अपने चरण से उनके ललाट पर प्रहार करके उनकी (पादाघात की) इच्छा को पूर्ण करती हैं। तभी आपके चरणों में विराजित नूपुर का जो शब्द होता है वह चिरकाल से अपने तृतीय नेत्र से जलाने की बात को मन में रखे हुए वैर भाव के कारण किलकिल शब्दरूप में कामदेव अपनी हँसी को प्रकट करता है।

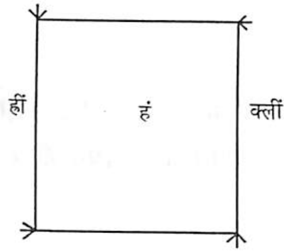

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'मृ' है। म् + ऋ का ध्यान करें। शेष विधान पूर्ववत् हैं।

: 87 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के दिव्य चरणकमलों की उपर्युक्त महिमा का स्मरण दिलाते हुए पुनः उनके विभिन्न गुणों का कथन करते हुए उनकी सर्वोत्कृष्टता में आश्चर्य क्या है ? यह मनस्तोष व्यक्त करते हैं—

हिमानीहन्तव्यं हिमगिरि-निवासैक-चतुरौ,
निशायां निद्राणं निशि चरमभागे च विशदौ।
वरं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां,
सरोजं त्वत्पादौ जननि ! जयतश्चित्रमिह किम् ? ॥87॥

अवतरणिका—श्रीमाता के चरण कमल पर जय प्राप्त कर रहे हैं, कमल उन चरणों के समक्ष अति तुच्छ हैं, इसमें आश्चर्य क्या है ? क्योंकि वे कमल तो हिम की अधिकता से गल जाते हैं, रात्रि में मुँदे रहते हैं, प्रातः खिलते हैं और उन्हें लक्ष्मीजी की कृपा का सौभाग्य भी कम मिलता है। जबकि आपके चरण-कमल तो हिमभरे हिमालय में रहने के अभ्यासी हैं, दिन-रात दिव्यरूप से खिले रहते हैं तथा आपके चरण-कमल अपने भक्तों को लक्ष्मी का पात्र बनाते हैं। अतः निश्चय ही आपके चरण-कमल कमल पर जय प्राप्त करते

हैं। इसमें आश्चर्य क्या है? इस प्रकार सामान्य कमल और चरण-कमल की तुलना करते हुए कहते हैं—

सरलार्थ—हे जननी! आपके चरण-कमल हिम से पूर्ण हिमालय में रहने के अभ्यासी हैं, दिन-रात खिले रहते हैं तथा अपने समयाचारी साधकों को लक्ष्मीपात्र बनाते हैं। अत: सामान्य कमलों से, जोकि हिम से गल जाते हैं, रात्रि में मुँदे रहते हैं, प्रात: होने पर खिलते हैं और उन्हें लक्ष्मीजी की कृपा-दृष्टि पाने का सौभाग्य भी कम मिलता है। अत: उन सामान्य कमलों से आपके चरण-कमल सर्वोत्कृष्ट बनकर जय प्राप्त कर रहे हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है? यह उत्कृष्टता तो स्वयंसिद्ध है।

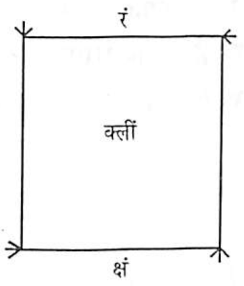

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'हि' है। ह्+इ का ध्यान पीछे आ चुका है। शेष विधान पिछले श्लोक की तरह ही है।

: 88 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता के चरणों के अग्रभाग 'प्रपद' की महिमा का वर्णन करते हुए चरणों की कोमलता एवं पूर्वकवियों द्वारा कच्छप की पीठ के समान किए गए वर्णन के प्रति आक्षेप व्यक्त करते हुए कहते हैं—

पदं ते कीर्तीनां प्रपदमपदं देवि! विपदां,
कथं नीतं सद्भि: कठिन-कमठीर्परतुलाम्।।
कथं वा बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरभिदा,
यदादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा।।88।।

अवतरणिका—माता के चरणों के ध्यान की परम्परा को ही आगे बढ़ाते हुए आचार्य-प्रवर उनके चरणों के अग्रभाग का ध्यान प्रस्तुत करते हैं।

सरलार्थ—हे दयामयी माता! आपके चरणों का अग्रभाग प्रपद कीर्तियों का स्थान है तथा विपत्तियों का स्थान नहीं है, अर्थात् विपत्तियों का निवारक है। ऐसे महनीय प्रपद की पूर्वकवियों ने कछुए की पीठ से तुलना

की है ? यह उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि वह तो अतुलनीय है। भगवान् शिव ने विवाह के समय होने वाले 'अश्वारोहण' विधान में दोनों हाथों से उस प्रपद को दयार्द्रभाव से यह सोचकर कि आपके कोमल चरणों के तलवों को

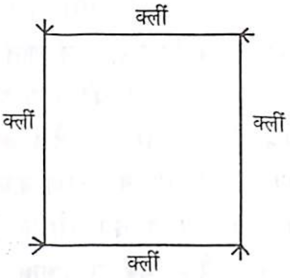

पत्थर पर रखने से कष्ट न हो, इसलिए उन्होंने अपनी दोनों हथेलियाँ फैलाकर आपके चरणों को उठाकर शिला पर रखा था। यही आपके प्रपद की कठोरता का निषेधक प्रमाण है।

रहस्यार्थ—'प' बीजाक्षर का ध्यान पीछे दिया जा चुका है। जपविधान पूर्ववत् है।

: 89 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के चरण भक्तजनों को अभीष्ट प्रदान करने में तत्पर हैं, उनकी ऐसी दानशीलता के समक्ष कल्पतरु भी उपहास के पात्र हैं, तथा देवाङ्गनाएँ आपके चरणों में जब प्रणाम करती हैं तो उनके कर-कमल आपके चरण-नखों की चन्द्र-ज्योत्स्ना के कारण मुँद जाते हैं। अतः उन चरणों के नख-चन्द्र की प्रभा चन्द्र-ज्योत्स्ना से भी अधिक प्रभामय है। यह प्रकट करते हैं।

नखैर्नाकस्त्रीणां कर-कमल-सङ्कोच-शशिभि—
स्तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि ! चरणौ।
फलानि स्वस्थेभ्यः किसलय-कराग्रेण ददतां,
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ।।89।।

अवतरणिका—भगवती के चरणों की महिमा के सामने कल्पवृक्ष और चरण नखों की कान्ति के समक्ष चन्द्रमा की सदृशता को प्रकट करते हुए स्तुतिकार आचार्य माता के चरणों को उनका तिरस्कार-उपहास करनेवाले सिद्ध करते हैं।

सरलार्थ—हे चण्डी माँ ! आपके दोनों चरणों के नख देवाङ्गनाओं के करकमलों को (हाथ जोड़ते समय) बन्द करने के लिए दस चन्द्रमा के तुल्य

हैं। वे चरण अपने नखों से कल्पवृक्षों का परिहास कर रहे हैं। क्योंकि कल्पवृक्ष तो स्वर्ग में रहनेवाले स्वावलम्बी देवताओं को ही अपने पल्लवरूपी कराग्र-भागों से फल देते हैं, परन्तु आपके चरण तो दरिद्रों को निरन्तर एवं तत्काल बहुत-सी सम्पत्ति प्रदान करते रहे हैं।

सरलार्थ—हे मातः ! आपके अंगूठे के नखों में चन्द्रमाओं का सद्भाव है। जिस प्रकार चन्द्रमा के उगने पर कमल बन्द हो जाते हैं, मानो उसी स्थिति को द्योतित करते हुए, सैकड़ों देवस्त्रियों के कर-कमल भी आपके चरणों में नमस्कार करने के लिए बन्द हो जाते हैं, जुड़ जाते हैं। अपि च स्वर्ग का कल्पवृक्ष भी आपके चरणों के समक्ष तुच्छ है। कल्पवृक्ष तो अपनी कोंपल रूपी अंगुलियों से देवों की इच्छा पूर्ण करता है, जबकि देवलोग स्वयंसिद्ध काम होते हैं। इसके विपरीत आपके चरण, अपने नखोद्योत से ही उन भक्तों, दरिद्रों, दीनों का कल्याण करते हैं, जो असमर्थ हैं। अतः आपके चरणों द्वारा मानो कल्पवृक्ष का उपहास किया जाता हो।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'न' है। ध्यान पीछे आ चुका है। शेष-विधान पूर्ववत् है।

: 90 :

प्रसङ्ग सङ्गति—परमेश्वरी के चरणों में अपारभक्ति बनी रहे, इस भावना से पुनः चरण-महिमा का आख्यान करते हुए अपने जीव को भँवरे के समान तल्लीन बने रहने की प्रार्थना करते हैं—

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशानुसदृशीं—
ममन्दं सौन्दर्य-प्रकर-मकरन्दं विकिरति।
तवास्मिन् मन्दार-स्तबक-सुभगे यातु चरणे,
निमज्जन् मज्जीवः करचरणः षट्चरणताम्॥90॥

अवतरणिका—मन्दार-वृक्ष के पुष्पों के गुच्छ के समान सौन्दर्यराशि के

मकरन्द को वितरित करनेवाले तथा दीन भक्तजनों को उनकी आशा के अनुसार लक्ष्मी प्रदान करनेवाले भगवती के अत्यन्त रमणीय चरण-कमलों में ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण रूप छः चरणों में अपने जीव को मधुकर बनकर सदा डूबा रहने की कामना से प्रार्थना करते हैं—

सरलार्थ—हे जगज्जननी ! मन्दारवृक्ष के पुष्पों के गुच्छे के समान अतीव सुन्दर और अत्यधिक सौन्दर्यसमूह के मकरन्द को फैलानेवाले भगवती के चरण-कमल हैं। उस सुन्दरतम एवं सुगन्धमय माता के दिव्य चरणों पर मेरा यह जीव छः चरणों वाला (5 ज्ञानेन्द्रिय और एक अन्तःकरण वाला) भँवरा बनकर मँडराता रहे। अर्थात् मन, वचन और कर्म सहित सभी इन्द्रियाँ और मन आपके चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। ऐसी भक्ति मुझे प्रदान करें।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'द' है। इसका ध्यान पीछे दिया जा चुका है। जपादि विधान पिछले श्लोक की तरह होगा। यन्त्रस्वरूप प्रस्तुत है—

: 91 :

प्रसङ्ग सङ्गति—उत्तम चरितसम्पन्ना भगवती के दिव्य चरणों की गति का ध्यान प्रस्तुत करते हुए आचार्य चरण उनकी गति से राजभवन के राजहंसों को गति की शिक्षा का उपदेश देनेवाले के रूप में वर्णित करते हैं—

पद - न्यास - क्रीडा - परिचयमिवारब्धुमनसः,
स्खलन्तस्ते खेलं भवन-कलहंसा न जहति।
अतस्तेषां शिक्षां सुभग-मणि-मञ्जीर-रणित-
च्छलादाचक्षाणं चरण-कमलं चारु-चरिते ।।91 ।।

अवतरणिका—हे चारुचरिते भगवती ! आपके चरण-न्यास की क्रीड़ा का परिचय प्राप्त करने की इच्छावाले, राजभवन में पोषित कलहंस स्खलित गतिवाले वे हंस माता के अनुसरण का तनिक भी त्याग नहीं करते हैं। इसलिए

उन राजहंसों की शिक्षा का उपदेश भगवती के रमणीय मणि-मञ्जीर-मणियों के नुपूरों के शब्द के बहाने उपदेश करते हुए से प्रतीत होते हैं।

प्रयोग सौविध्य—बीजाक्षर 'प' का ध्यान पहले लिखा जा चुका है। जपादि विधान पूर्ववत् है। पूजन-यन्त्र इस तरह है—

: 92 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती की अत्यन्त निकटता से सेवा करने की भावना से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं ईश्वर सेवक के रूप में सिंहासन के चार पात्रों में विद्यमान हैं जिस पर माया की स्वच्छ चादर बिछी हुई है वह शिवरूप है। उसमें माता के शरीर की कान्ति झलकने से वह अरुण दीखती है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शृंगाररस स्वयं शरीरवाला बन गया हो? ऐसी सम्भावना करते हुए सिंहासन का ध्यान प्रस्तुत करते हैं—

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिण-हरि-रुद्रेश्वरभृतः,
शिवः स्वच्छच्छाया-घटित-कपट-प्रच्छदपटः।
त्वदीयानां भासां प्रतिफलन-रागारुणतया,
शरीरी शृंगारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम्॥92॥

अवतरणिका—इस प्रकार पूर्वोक्त पद्यों द्वारा मुकुट से आरम्भ करके चरण-कमल तक का वर्णन करके स्तोता—आचार्यचरण भगवती के दिव्य सिंहासन का ध्यान वर्णित करते हैं—

सरलार्थ—हे परमेश्वरी माता! ब्रह्मा, हरि, रुद्र और ईश्वर के द्वारा धारण किए हुए आपके सिंहासन के चारों पाए हैं। इन्हीं से आपका मञ्च बना है। उस मञ्च पर स्वच्छ छाया से बनी हुई कपटरूपी माया की चादर के रूप में सदाशिव हैं, जो आपकी प्रभा के झलकने से अरुण दिखाई देते हैं। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वयं शृंगार-रस शरीर धारण करके दृष्टि में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है।

रहस्यार्थ—'ग' बीजाक्षर का ध्यान दिया जा चुका है। बीजाक्षर जप संख्या 1020, हवन 12 या 102 आहुति रहेंगी। श्लोक-पाठ संख्या 12 तथा आहुति 8 हैं। हवन-द्रव्य मुनक्का, बेलगिरी, खीर व लाल कमल हैं। पूजन-यन्त्र प्रस्तुत है—

माया, विद्या, महेश्वर व सदाशिव ये चार श्रीयन्त्र के भूपुर के चार द्वारों पर स्थित हैं। ये ही आपके पलङ्ग के 4 पाए हैं। श्रीशक्ति सदाशिव के सदा तन्मयीभाव में बिन्दुस्थान में एकात्म रूप से स्थित है।

: 93 :

प्रसङ्ग सङ्गति—माता त्रिपुरसुन्दरी स्वभावतः सौम्य है और उसका प्रत्येक अङ्ग परम दैदीप्यमान, अरुण वर्णवाला है। इन शरीर के अवयवों की विशिष्टताओं का एक साथ दर्शन कराने के लिए वर्णन करते हैं—

अराला केशेषु प्रकृति-सरला मन्दहसिते,
शिरीषाभा चित्ते दृषदुपल-शोभा कुचतटे।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरुरसिजारोह-विषये,
जगत्त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा।।93।।

अवतरणिका—सौम्य-स्वभाव वाली माता के शरीर का वर्ण लाल है, वह रक्त वस्त्र से सुशोभित है तथा शरीर के सभी अवयव अपनी-अपनी विशेषता से विभूषित हैं। ऐसी शिवा-भगवती जगत् की रक्षा के लिए सदा सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हो रही है। यह बतलाते हुए कहते हैं—

सरलार्थ—भगवान् सदाशिव की कृपात्मिका अरुणवर्णा अनिर्वचनीया वह शक्ति विजय को प्राप्त हो रही हैं जिनके केशों में वक्रता है, अन्यत्र नहीं। जो स्वभाव से मन्दहास्य में सरल है। अन्तःकरण में जो शिरीष-पुष्प—छुई-मुई के समान अत्यन्त मृदुल है। जिनका कुचमण्डल शिला की भाँति कठोर है। जिसका कटिस्थान पतला है तथा नितम्बभाग पुष्ट है। जो रक्तवस्त्र

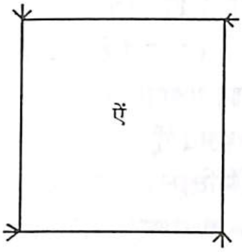

एवं रक्तवर्णी अलङ्कारों से विभूषित है। ऐसी करुणामयी शिवा भगवती जगत् की रक्षा करने के लिए प्रकाशमान हो रही हैं।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'अ' का जप 1030, हवनसामग्री पिछले श्लोक की तरह रहेगी। आहुति 103 या 13। तर्पण मार्जन 13-13 होंगे। इनके पाठ 14, आहुति-9 रहेंगी। पूजन-यन्त्र यह है—

: 94 :

प्रसङ्ग सङ्गति—श्रीमाता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करके उस सौन्दर्य का अवलोकन करने के निमित्त सूर्य को दर्पण के रूप में वर्णित करते हुए अपने विचार प्रस्तुत करते हैं—

समानीतः पदाभ्यां मणि-मुकुरतामम्बरमणि—
र्भयादास्यास्यान्तः स्तिमित-किरण-श्रेणि मसृणः।
दधाति त्वद्वक्त्र-प्रतिफलनमश्रान्त-विकचं,
निरातङ्कं चन्द्रान्निज-हृदय-पङ्केरुहमिव ॥94॥

अवतरणिका—भगवती के अनुपम सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराने के लिए अम्बरमणि सूर्य दर्पण के रूप में चरणों में उपस्थित हुआ तो उसे भय हुआ कि माता के अतिकोमल अङ्ग के समक्ष मैं उष्णकिरण टिक नहीं पाऊँगा। इस कारण वह सूर्य अपनी किरणों की श्रेणी को संकुचित कर लेता है। भगवती का मुख कमल के समान है, भगवती के तेज से ही चन्द्रमण्डल चमकता है। अतः उस चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को कोई भय नहीं है। यही कारण है कि माता के सदा विकसित मुखकमल सूर्यरूपी दर्पण के मध्य हृदय में खिला हुआ प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार स्तोता आचार्यप्रवर भगवती के तेज से ही सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश को प्राप्त करते हैं, यह प्रकट करते हैं—

सरलार्थ—सूर्य जब आपके सम्मुख उपस्थित है तो उसके भीतर आपके मुख की छाया पड़ती है। कवि कल्पना करता है कि भगवती का मुख कमल सूर्य

की गर्मी में कैसे खिला रह सकता है। अतः समाधानार्थ भगवती का मुख ही स्वयं सूर्य है, अतः सूर्य के भीतर सूर्य (मुख कमल) अक्षुण्ण रहता है। इसी कारण सूर्य का हृदय-कमल भी सदा खिला रहता है। पुराणों में सूर्यमण्डल के मध्यवर्ती तेजस् को चित्स्वरूप नारायणरूप ही समझा गया है।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलवर्ती,
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स' का ध्यान पूर्वोक्त है। जपसंख्या 1040, तर्पण मार्जन 14-14, बीज की आहुति 104 या 14 हैं। हवन-सामग्री पिछले श्लोक की तरह है। श्लोक पाठ 14, श्लोकाहुति 10 है।

: 95 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के सौन्दर्य-प्रसाधन की सामग्री रखने का साधन चन्द्रबिम्ब है, उसकी तुलना करने के लिए उस पिटारी को मरकत मणि से निर्मित, उस पिटारी में स्थित प्रसाधनों का सदा उपयोग करने से वह रिक्त होती रहती है, उसी को कृष्णपक्ष में चन्द्रमा का क्षय माना जाता है और उस रिक्त पिटारी को पुनः विधाता भरता है, वही शुक्ल-पक्ष है। यह वर्णन करते हैं—

कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं,
कलाभिः कर्पूरैर्मरकत-करण्डं निबिडितम्।
अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं,
विधिर्भूयोभूयो निबिडयति नूनं तव कृते।।95।।

अवतरणिका—भगवती के अलङ्करण की सामग्री चन्द्रबिम्बरूपी करण्डिये में रखी रहती है। वह करण्डक मरकतमणि का बना हुआ है। उसमें रखी हुई सामग्री के नित्य उपयोग से वह रिक्त हो जाता है तो विधाता चन्द्रमा के रिक्त बिम्बरूप करण्डक को पुनः-पुनः भरता रहता है। यहाँ

चन्द्रमण्डल को करण्डक के रूप में उत्प्रेक्षा करते हुए कहा गया है कि—

सरलार्थ—हे माता! आपके अलङ्करण की वस्तुएँ रखने का करण्डिया—पिटारी चन्द्रमा है, जिसमें उसका कलङ्क कस्तूरी है, चन्द्रमा का जलमय बिम्ब मरकतमणि का बना हुआ है। कलारूप कर्पूर उसमें भरा हुआ है जिसके प्रतिदिन उपयोग से वह खाली होता रहता है, उसे विधाता—आपका सेवक ब्रह्मा भरता रहता है। ऐसा मुझे प्रतीत होता है। अर्थात् चन्द्रमा मरकतमणियों से बना हुआ करण्डिया है और चन्द्रमा के विविध चिह्न माता के प्रसाधन की सामग्री हैं, जिसे नित्य के उपयोग से रिक्त होने पर कृष्णपक्ष के क्षय के पश्चात् शुक्ल पक्ष में कलावृद्धि के रूप में विधाता भरता रहता है।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'क' है। ध्यान पीछे आ चुका है। बीज-जप 1050, आहुति 15 या 105, तर्पण मार्जन 15-15, श्लोक-पाठ आहुति 11 रहेंगी। हवन-सामग्री पूर्वश्लोक की तरह है।

: 96 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती त्रिपुरसुन्दरी की साधना चपल-चित्तवालों के लिए साध्य नहीं है तथा सिद्धियों की कामना रखनेवालों को भी माता की पूजा का प्रकार सुलभ नहीं है। यही कारण है कि इन्द्रादि देवगण ने भी आपके द्वार के पास खड़े रहकर ही अतुल अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करके शान्तचित्त, निश्चेष्ट भाव से उपासना का फल प्राप्त किया है।

पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः,
सपर्या-मर्यादा तरल-करणानामसुलभा।
तथा ह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां,
तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः ।।96 ॥

अवतरणिका—भगवती की उपासना किस प्रकार करनी चाहिए? इसका समाधान करते हुए दृष्टान्तसहित कहते हैं कि—

सरलार्थ—हे माता ! आपकी उपासना चञ्चल चित्तवालों के लिए नहीं है। क्योंकि आप देवाधिदेव महादेव की पटरानी हैं। आपकी सेवा के विशिष्ट विधान हैं, अत: चञ्चल मनोवृत्तिवाले आपकी उपासना नहीं कर सकते। इन्द्रादि देवों को द्वार-सेवा प्राप्त है। उसी से वे सर्वसिद्धियों के स्वामी हैं। उन्हें प्रशान्तचित्त होकर द्वार पर स्थित होने से अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हैं। किन्तु अन्त:पुर में प्रवेश नहीं मिल सका। यह उपासना-तत्त्व यहाँ व्यक्त किया गया है।

सरलार्थ—मात: ! आप त्रिपुरारि शिव के अन्त:पुर में निवास करती हैं, अत: साधारण शक्तिवाले लोग आपके चरण-स्पर्श कैसे कर सकते हैं? इन्द्रादि देवता भी आपके द्वार तक ही सीमित हैं। इसी कारण वे सिद्धियों के स्वामी हैं। अत: शान्तचित्त से ध्यान करके पूजा करना ही साधारण मनुष्यों के अधिकार में हैं।

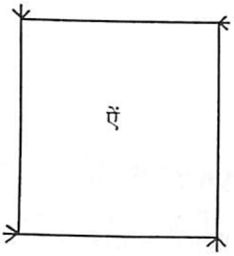

रहस्यार्थ—पूजा के समय चित्त शान्त रहना चाहिए। यह विशेष नियम ध्वनित है। बीजाक्षर 'पु' है। अत: प्+उ का ध्यान होगा। बीजजप 1060, बीज आहुति 106 या 16, तर्पण मार्जन 16-16, श्लोकपाठ 16, आहुति 12 हैं। हवन-सामग्री पिछले श्लोक की तरह है।

: 97 :

प्रसङ्ग सङ्गति—श्री जगदम्बा के पातिव्रत्य की महिमा का आख्यान करते हुए कहते हैं कि—सरस्वती की कृपा प्राप्त करनेवाले सरस्वती-वल्लभ कहलाते हैं, तथा धनधान्य की समृद्धि से सम्पन्न होकर लक्ष्मीपति कहलाते हैं। किन्तु माता के स्तनों का संस्पर्श तो महादेव के बिना कदम्ब के वृक्ष के लिए भी सुलभ नहीं है। यह माता के सतीत्व की महिमा वाणी और मन से अगोचर है। यह व्यक्त करते हैं—

कलत्रं वैधात्रं कति-कति भजन्ते न कवयः,
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः ।
महादेवं हित्वा तव सति! सतीनामचरसे ।
कुचाभ्यामासङ्गः कुरबकतरोरप्यसुलभः ॥97 ॥

अवतरणिका—ज्ञान-प्राप्ति के लिए ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती देवी की उपासना और धनपति बनने के लिए लक्ष्मीदेवी की उपासना सभी करते हैं। तथा इन उपासनाओं के फलस्वरूप वे सरस्वती-वल्लभ और लक्ष्मीपति भी कहलाने लगते हैं। परन्तु माता के कुचों का सम्पर्क तो महादेव को छोड़कर अन्य किसी को नहीं होता। अतः सतीपति कोई नहीं कहलाता। सतीपति तो महादेव ही हैं। यह माता के पातिव्रत्य की महिमा वाणी और मन से अतीत है।

सरलार्थ—हे सतीशिरोमणि माता! विद्याज्ञान प्राप्त करने के लिए सरस्वती की उपासना क्या कितने ही कविजन नहीं करते? सभी करते हैं। बड़े विद्वानों ने अपनी विद्वत्ता से सरस्वती देवी का स्वामित्व पाया है। बड़े-बड़े धनाढ्य लक्ष्मीपति कहलाते हैं, लेकिन आपका पतित्व तो केवल महादेव, देवाधिदेव को ही सुलभ है। कोई भी व्यक्ति या देव कितना भी प्रयत्न करे, वह सतीपतित्व प्राप्त नहीं करता है।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'क' है। ध्यान पूर्वोक्त है। जपसंख्या 1070, आहुति 107 या 17, तर्पण मार्जन 17-17, श्लोक-पाठ 17, श्लोकाहुति 13 है। हवन-सामग्री पिछले श्लोक की तरह रहेगी।

: 98 :

प्रसङ्ग सङ्गति—परब्रह्म की महारानी भगवती सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती से पर, तुरीया—चौथी कोई असीम महिमा से मण्डित महामाया है, जो कि सारे विश्व को भ्रम में डाल रही हैं। अतः आप अज्ञेय हैं।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिण-गृहिणीमागमविदो,
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगम-निस्सीम-महिमा,
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्म-महिषि।।98।।

अवतरणिका—ब्रह्माजी की पत्नी को सरस्वती कहते हैं। विष्णु की पत्नी लक्ष्मी कहलाती है तथा शिव की सहचरी को पार्वती कहते हैं। परन्तु भगवती त्रिपुरसुन्दरी महामाया तो कोई चौथी ही देवी है, जो अखिल विश्व को भ्रमित कर रही है। यह अपूर्वमहिमामयी माता क्या है? यह जानना कठिन है। ऐसी अज्ञेयता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—

सरलार्थ—हे परब्रह्म की पटरानी! शास्त्रों के ज्ञाता ब्रह्मा की पत्नी को सरस्वती-वाग्देवी कहते हैं। विष्णु की पत्नी को पद्मा—लक्ष्मी कहते हैं। तथा भगवान् शिव की सहचरी को पार्वती कहते हैं। परन्तु आप तो कोई इनके अतिरिक्त-चौथी ही महामाया हैं। आपकी महिमा असीम है। क्योंकि आपने सारे विश्व को भ्रम में डाल रखा है। अतः आपको जानना कठिन है।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'गि' है। अतः ग्+इ का संयुक्त ध्यान करें। जप-संख्या 1080, हवन 108 या 18, तर्पण मार्जन 18-18 हैं। श्लोक पाठ 18, आहुति 14 हैं।

: 99 :

प्रसङ्ग सङ्गति—सुमुखी उमा की भक्ति करनेवाली स्त्रियाँ भगवती के समान ही स्वरूप को प्राप्त करती हैं। प्रस्तुत स्तुति में भगवती के अङ्गों की जैसी रमणीयता बतलाई गई है, वैसी ही रमणीयता वे भक्तिमती स्त्रियाँ प्राप्त कर लेती हैं। यही नहीं, कभी-कभी तो आपके पतिदेव भगवान् शिव भी उन्हें देखकर भ्रम में पड़ जाते हैं। आपकी भक्ति का यह अनुपम फल है—

समुद्भूत - स्थूल - स्तनभरमुरश्चारु - हसितं,
कटाक्षे कन्दर्पाः कतिचन कदम्ब-द्युति-वपुः ।
हरस्य त्वद्भ्रान्ति मनसि जनयन्ति स्म विमला,
भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे । ।99 ॥

अवतरणिका—जब माता की भक्ति महिलाएँ करती हैं, तो उन पर अनुकम्पा करके माता अपने रूप, लावण्य आदि को उन भक्त स्त्रियों को प्रदान करती हैं। उस भक्ति का परिणाम यह होता है कि स्वयं माता के पति भगवान् शिव भी उन्हें देखकर भ्रम में पड़ जाते हैं और सोचने लगते हैं कि कहीं 'यह भक्तनारी उमा ही तो नहीं है।' ऐसी दयामयी माता की महिमा प्रस्तुत करते हैं—

सरलार्थ—हे माता उमा ! जो भक्त महिलाएँ, मन, वचन और कर्म से आपकी भक्ति में विमल भाव से लगी हुई हैं वे आपके समान ही रूप और लावण्य को प्राप्त कर लेती हैं। उनके वक्षःस्थल पर उन्नत स्तन होते हैं, मुख पर सुन्दर आकर्षक हास्य होता है, कटाक्ष में कतिपय कामातुर बनानेवाले कामदेवों का निवास होता है तथा शरीर की शोभा कदम्ब के पुष्प के समान कोमल एवं सुन्दर होती है। इतना ही नहीं; कभी-कभी तो आपके समान स्वरूप को उन्हें देखकर आपके पति भगवान् शिव भी भ्रम में पड़ जाते हैं। उन्हें लगता है कि कहीं यह पार्वती तो नहीं है ? अर्थात् माता की भक्ति से सारूप्य प्राप्त होता है।

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स' है। जप-संख्या 1090, आहुति 109 या 19 हैं। तर्पण मार्जन भी 19-19 रहेगा। श्लोक-पाठ 19 तथा श्लोक आहुति 15 हैं। सामग्री पूर्ववत् है।

: 100 :

प्रसङ्ग सङ्गति—आचार्य चरण प्रस्तुत सौन्दर्य-लहरी का उपसंहार करने की स्थिति में पहुँचते हुए जगदम्बा के चरणों के प्रक्षालन जल का पान करने की प्रार्थना करते हुए कामना करते हैं कि ऐसा सुअवसर मुझे कब प्राप्त होगा ?

जब मैं महावर के रस से सना हुआ आपके चरणामृत का पान करूँगा ? इस प्रार्थना के साथ ही चरणामृत की महत्ता प्रस्तुत करते हुए कहते हैं।

कदा काले मातः ! कथय कलितालक्तकरसे,
पिबेयं विद्यार्थी तव चरण-निर्णेजन-जलम्।
प्रकृत्यां मूकानामपि च कविता-कारणतया,
यदा धत्ते वाणीमुख-कमल-ताम्बूल-रसताम् ॥100 ॥

अवतरणिका—भगवती के चरणों के प्रक्षालन का जल जोकि चरणों में लगे हुए आलते के रस से मिला हुआ है और जिसके पान से जन्म से ही मूक जनों को काव्य-निर्माण की शक्ति प्राप्त होती है तथा जो सरस्वती के मुख-कमल से निकले हुए पान के पीक के रंग का है तथा जिसके प्रसाद के सेवन से बधिर, मूक भी कवि बन जाते हैं। चरणोदक की महिमा का ऐसा कथन करके माता से ही पूछते हैं कि मैं उस चरणोदक के पान करने का कब सौभाग्य प्राप्त कर सकूँगा ?

सरलार्थ—हे माँ ! दया करके आप बताइए कि मैं, विद्या का उपासक हूँ और ज्ञान-प्राप्ति का अभिलाषी हूँ, आपके चरण-प्रक्षालन का तथा चरणों के माहुर से कुछ लाल वर्णवाले चरणोदक का पान कब कर पाऊँगा। वह चरणोदक जो श्री सरस्वती के द्वारा चबाए हुए पान के रस के रङ्ग का है, जिस प्रसाद के सेवन से बधिर और मूक लोग भी कवि बन जाते हैं।

रहस्यार्थ—बीजक्षर 'क' है। जप-संख्या 1100, हवन 110 या 120। तर्पण मार्जन 20-20। श्लोक-पाठ 20, आहुति 16 है। सामग्री पिछले श्लोक की तरह रहेगी।

: 101 :

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती का भजन-स्मरण करनेवाले सरस्वती और लक्ष्मी के वैभव से इतने सम्पन्न हो जाते हैं कि स्वयं सरस्वती और लक्ष्मी उस माता के भक्त को अपना बनाने का विचार करने लगती हैं तथा उस भक्त का शरीर

भी इतना सुन्दर हो जाता है कि रति को भी वह कामदेव से अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगता है। ऐसे विचारों से परपुरुष के प्रति आसक्ति के कारण उनका पातिव्रत्य शिथिल हो जाता है। इतना ही नहीं, वह भक्त चिरञ्जीवी बनकर परमानन्द रस से भी सराबोर हो जाता है। यह महिमा प्रकट करते हैं—

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधि-हर-सपत्नो विहरते,
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।
चिरं जीवन्नेव क्षपित-पशुपाश-व्यतिकरः,
परानन्दाभिख्यां रसयति रसं त्वद्भजनवान्॥101॥

अवतरणिका—सभी शास्त्रों का यह साररूप कथन है कि माता का निरन्तर भजन करनेवाला ब्रह्मा और विष्णु के समान ज्ञानी और व्यापक यशवाला हो जाता है। सरस्वती और लक्ष्मी से परम-सम्पन्न हो जाता है, जिससे ब्रह्मा एवं हरि के सपत्नीदाह का पात्र बन जाता है। साथ ही वह भक्त रमणीय शरीरवाला बन जाता है जिसे देखकर रति का पातिव्रत्य धर्म शिथिल हो जाता है। तथा पशुपाश के दुःखों से मुक्त होकर चिरकाल तक परमानन्द-रस का आस्वाद लेता हुआ जीवित रहता है। माता के भजन का फल विद्वत्ता, धनप्राप्ति एवं रूप-लावण्य से युक्तता है। यह बतलाते हैं—

सरलार्थ—हे माता! आपका भजन करनेवाला मनुष्य सरस्वती और लक्ष्मी से सम्पन्न बनकर ब्रह्मा और हरि के सपत्नीदाह का पात्र बनकर विहार करता है। उस भक्त का शरीर कामदेव के समान सुन्दर शरीरवाला बनकर रति के पातिव्रत्य को शिथिल करता है। अर्थात् वह विद्वान्, धनाढ्य और लावण्ययुक्त शरीरवाला होकर पशुपाश से मुक्त हो, परञ्जीवी बनता है।

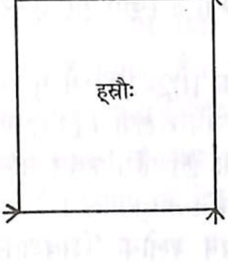

रहस्यार्थ—बीजाक्षर 'स' है। जप-संख्या 1110 है। आहुति 111 या 21, तर्पण मार्जन 21-21 है। श्लोकपाठ 21 व श्लोकाहुति 16 है। ध्यान पीछे आ चुका है।

प्रसङ्ग सङ्गति—प्रस्तुत 'सौन्दर्य-लहरी' का समापन करने की दृष्टि से आचार्य कहते हैं कि यह स्तुति माता के द्वारा प्रदत्त वाक्शक्ति से की गई है । जैसे दीपक की ज्वालाओं से सूर्य की आरती उतारना, अथवा चन्द्रकान्त मणि से टपकते हुए जलकणों से चन्द्रमा को अर्घ्य देना अथवा समुद्र के जल का संस्कार उसी के जल से करते हैं वैसे ही माता की कृपा से प्राप्त वाणी से ही यह स्तुति की गई है ।

प्रदीप - ज्वालाभिर्दिवसकर - नीराजन - विधिः,
सुधासूतेश्चन्द्रोपल - जल - लवैरर्घ्य - रचना ।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधि-सौहित्य-करणं,
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि ! वाचां स्तुतिरियम् ॥102 ॥

अवरतणिका—भगवती वाग्वैभव की जननी हैं । उनके द्वारा दिए गए शब्दों से ही यह स्तुति की गई है । यह मेरे द्वारा की गई स्तुति ऐसी है कि तेजोरूप सूर्य की आरती सूर्य की ज्योति से ही की जाए ! चन्द्रकान्त मणि से झरते हुए जल-बिन्दुओं से चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाए तथा समुद्र के जल को संस्कारित करके उससे सागर का तर्पण करना । वैसे ही माता के द्वारा प्रदत्त वाणी के द्वारा यह आपकी स्तुति है । अर्थात् आपकी वस्तु आपको ही मैं समर्पित कर रहा हूँ ।

सरलार्थ—हे माता ! आपके द्वारा दिए ज्ञान और वाणी के द्वारा आपकी स्तुति की गई है । मेरी यह स्तुति वैसे तो कोई अपना स्वतन्त्र वैशिष्ट्य नहीं रखती है, क्योंकि यह आपके समक्ष कोई विशेष कथन प्रस्तुत नहीं करती है । जैसे दीपक की ज्वालाओं से सूर्य की आरती उतारना, चन्द्रकान्त मणि से झरते हुए जल-कणों से चन्द्रमा को अर्घ्य देना और समुद्र के संस्कारित जल से सागर का तर्पण करना कोई महत्त्व नहीं रखता । वैसे ही आपके द्वारा प्रदत्त ज्ञान व वचनों से यह स्तुति आपके समक्ष अपनी कोई नवीनता नहीं रखती है । अतः भक्तिवश मैं यह स्तुति आपको समर्पित करता हूँ ।

रहस्यार्थ—यहाँ श्लोक 102-103 में मूलमन्त्र 'श्रीं' का जप करना चाहिए । जप-संख्या 1111, तर्पण मार्जन 21, आहुति 111 या 21 हैं । हवन-सामग्री खजूर या छुहारा, खीर व बेल हैं ।

श्लोक पाठ यहाँ प्रथम श्लोक 'शिवशक्त्या युक्तो' का होगा । उसके पाठ 21 या आहुति 21 हैं । पूजन-यन्त्र स्वयं श्री यन्त्र हैं ।

प्रसङ्ग सङ्गति—भगवती के विशेषणों से युक्त अभिधानों से स्तुति-प्रार्थना करते हुए अपने द्वारा की गई—सौन्दर्यलहरी-रूप स्तुति को स्वीकार करने का निवेदन करते हैं—

निधे नित्यस्मेरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे,
निराधातज्ञाने नियमपर-चित्तैकनिलये।
नियत्या निर्मुक्ते निखिल-निगमान्त-स्तुतपदे,
निरातङ्के नित्ये निगमय ममापि स्तुतिमिमाम्।।103।।

अवतरणिका—अनन्य निधियों की भण्डार, नित्य मन्दहास्यवाली, अनन्त गुणनिधि, अपार ज्ञानमयी, नियमपरायणा, नीति-निपुणा, चित्त में वास करनेवाली, भक्तों को निर्मल बनानेवाली, अखण्डरूपा, निगमागम द्वारा वन्दित माता से विनयपूर्वक प्रार्थना करते हुए आचार्यचरण कहते हैं कि हे माता ! आप मेरी इस स्तुति को स्वीकार करें।

सरलार्थ—हे माता ! आप इस स्तुति में वर्णित स्वरूपों के अतिरिक्त भी अन्य अनेक गुणगणों से विभासित हैं। यथा—आप अपार निधियों की निधान हैं, अविनाशी प्रकाशमयी हैं, आपके गुणों की कोई सीमा नहीं है, आप भक्तों को उनकी उपासना के अनुरूप फल देने की नीति में निपुण, अप्रतिहत ज्ञानधारिणी, नियमपूर्वक उपासना करनेवालों के चित्त में निवास करनेवाली, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए नियति की परतन्त्रता से मुक्त, समस्त आगम और निगमों—वेदान्तों के द्वारा प्रतिपाद्य, भयमुक्त एवं ध्रुव, समस्त नित्या देवीस्वरूप हैं। अत: मेरी इस स्तुति को भी आप बनाइए।

सरलार्थ—हे भगवती आप सम्पूर्ण विश्व के लिए परम निधि हैं। आप के मुखमण्डल पर सदा स्मितभाव बना रहता है। आपके गुण अनन्त हैं। आप नीति निपुण हैं। आपका ज्ञान निरन्तर बहनेवाला पावन स्रोत है। आपका चित्त सदा नियमित व सन्तुलित है। आप नियति के सभी नियमों से परे हैं। समस्त वाङ्मय आपकी स्तुति में ही परिणत हो जाता है। आप नित्य, निर्भय हैं। कृपापूर्वक मेरी इस स्तुति को स्वीकार करें।

परिशेष खण्ड

सौन्दर्य-लहरी के प्रत्येक श्लोक का आरम्भ दिव्य शताक्षरी मन्त्र के प्रथम बीजाक्षर से किया गया है। इसी कारण प्रत्येक श्लोक का प्रथमाक्षर ही जपनीय बीजमन्त्र हो जाता है। यहाँ बीजमन्त्र का स्वरूप पाठकों के लाभार्थ अलग से दिया जा रहा है।

दिव्य शताक्षरी मन्त्र

॥ह्रीं श्रीं ॐ शिं तं अं त्वं हं धं, क्वं सुं मं, सुं चं त्वं नं क्षिं शं कं सं तं मुं किं तं भं त्वं जं त्रं विं जं सुं किं स्वं चं शिं स्मं शं मं तं विं सं तं तं तं गं धुं वं अं लं भ्रुं अं विं कं शिं गं विं पं निं तं, दृं अं स्फुं सं अं प्रं स्मिं अं रं विं कं भुं गं मृं नं सं, अं वं तं हं यं स्थिं निं कुं गुं कं पं श्रुं नं मृं हिं पं नं दं पं गं अं सं कं पुं कं गिं सं कं सं ऐं क्लीं सौं क ए इ ल ह्रीं हस कहल ह्रीं, सकल ह्रीं हीं श्रीं ॥

आवश्यक निर्देश–

1. प्रत्येक श्लोक मन्त्रस्वरूप है। प्रत्येक श्लोक का प्रयोजन व फल भी पृथक है।
2. श्लोक के साथ निर्दिष्ट विधान से, वहीं बताए गए यन्त्र की पूजा अवश्य करें।
3. इच्छानुसार सभी मन्त्रों के स्थान पर सम्पूर्ण श्रीयन्त्र में भी सभी श्लोकों का प्रयोग किया जा सकता है।
4. ध्यान बीज, जप बीज आहुति, तर्पण मार्जन, श्लोक पाठ व श्लोक हवन यह क्रम है।
5. सम्पूर्ण सौन्दर्य-लहरी का पाठ भी नित्य विधि से किया जा सकता है।

6. प्रयोग आरम्भ करने से पूर्व, शुभ दिन व मुहूर्त में सम्पूर्ण सौन्दर्य-लहरी की 108 आवृत्तियाँ करें तथा पहले श्री यन्त्र पूजन भी कर लें। तब प्रयोग योग्यता सम्पन्न होगी।

7. सौन्दर्य-लहरी का पाठ करने से पूर्व विनियोग व न्यास आवश्यक रूप से करें।

विनियोग—अस्य श्री त्रिपुरसुन्दरी महाविद्या शताक्षरी बीजमन्त्राणां ईशान भैरवो ऋषिः, गायत्र्यनुष्टुप् छन्दसी, श्री महात्रिपुरसुन्दरी देवता शिवः शक्त्या युक्त इति बीजं, चतुर्वर्गदायिनी विश्वादि महामाया शक्तिः, आं ह्रीं कीलकं, मम सर्वविद्यासिद्ध्यर्थं चतुर्वर्गाप्तये सर्वदुःख निर्वृत्तार्थं च जपे विनियोगः।

न्यास—

1. ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः।
2. ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। शिरसे स्वाहा।
3. ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः। शिखायै वषट्।
4. ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः। कवचाय हुम्।
5. ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। नेत्रत्रयाय्र वौषट्।
6. ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अस्त्राय फट्।

ध्यान—

लौहित्य निर्जित जपाकुसुमानुरागां
पाशांकुशौ धनुरिषूनपि धारयन्तीम्।
ताम्रेक्षणामरुणमाल्यविशेषभूषां
ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि।

पञ्चोपचार पूजन—

लं पृथिव्यात्मने गन्धं कल्पयामि नमः।
हं आकाशात्मने पुष्पं कल्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मने धूपं कल्पयामि नमः।
रं वह्न्यात्मने दीपं कल्पयामि नमः।
वं जलात्मने नैवेद्यं कल्पयामि नमः।

8. विशेष श्लोक मन्त्र का प्रयोग करते समय पूर्वोक्त विनियोग में 'शिवः शक्त्यायुक्तो' के बाद, उस श्लोक का बीजाक्षर भी बोलें। साथ ही विशेष उद्देश्य व विशेष फल का उल्लेख भी करें।

9. हवन-सामग्री के पदार्थों को घी मिलाकर या घी में डुबोकर ही आहुति दें। समिधा आम की सर्वत्र उपयोगी हैं।

10. यन्त्रों को बनाने के लिए कुङ्कुम हरिद्रा मिला साफ गेहूँ या चावल का आटा प्रयोग करें। घी का दीपक अवश्य जलाएँ। अथवा त्रिधातु—तांबा, सोना या चाँदी मिश्रित या एक ही धातु पर बनवा लें।

11. भोग नैवेद्य के लिए उस श्लोक से सम्बन्धित हवन-सामग्री के खाद्य पदार्थ को प्रयोग करें। अथवा खीर व मिष्ठान्न का भोग सर्वत्र लगाएँ।

12. पूजा में लगा हुआ पान का बीड़ा ही चढ़ाएँ।

13. प्रयोग के दौरान ब्रह्मचर्य पालन करें व असत्य भाषण, कठोर भाषण, स्त्री तिरस्कार, झूठी गवाही से बिल्कुल बचें। सामान्यतः मन, वचन व कर्म की पवित्रता बनाए रखें।

14. प्रयोग की अवधि 12 दिन से लेकर 96 दिनों या 108 दिनों तक बढ़ाई जा सकती है।

15. जपादि विधान में हवन, तर्पण, मार्जन प्रतिदिन ही करना होगा।

16. पूजा के समय पूर्व या ईशान की ओर मुख रखें।

17. विधान के बाद प्रतिदिन मृत्युंजय व वासुदेव भगवान् का जप भी कम-से-कम 10, 28 या 108 बार करें।

18. त्रिमधुर से तात्पर्य घी, शहद व शक्कर से है। त्रिधातु सोना, चाँदी व तांबा मिलकर होती है।

19. नैवेद्य को प्रसाद रूप में स्वयं (पत्नी सहित) अवश्य ग्रहण करें।

श्लोक संख्या	फल	अवधि दिन	विशेष भोग
1.	सत्कामना सिद्धि	12	त्रिमधुर
2.	भय-निवारण	12	कलाकन्द/मिल्क केक
3.	दरिद्रता निवारण	108	बेसन का लड्डू
4.	सङ्कट से रक्षा	12 या 36	पीले चावल
5.	मोहन	12	मूँग की खिचड़ी
6.	सर्वत्र विजय	24	गन्ने की टुकड़े
7.	सफलता	48	दूध में बने चावल मीठे
8.	मनोरथसिद्धि	12	काली मिर्च
9.	सिद्धिप्राप्ति	48	खीर
10.	कल्याण	12	फल
11.	भक्तिलाभ	12	बर्फी
12.	इष्ट दर्शन	48	शहद
13.	वशीकरण	12	त्रिमधुर व पके चावल
14.	सर्वसिद्धि	48	दुग्ध पदार्थ
15.	विद्या	48	शहद व फल
16.	कवित्व	48	शहद
17.	सर्वज्ञान	48	शहद, फल, चीनी, दूध
18.	लोकवशीकरण	48	दूध पदार्थ व पान सुपारी
19.	वशीकरण	24	शहद व दूध
20.	रोगनाश	48	दूध
21.	आत्मज्ञान	48	दूध व घी
22.	मोक्ष	48	मिष्ठान्न
23.	आकर्षण	36	दही, मसाले वाला पुलाव
24.	सन्तान	36	दुग्ध पदार्थ
25.	कामनासिद्धि	48	बेसन की मीठी रोटी (चीला)
26.	साक्षात्कार	108	शहद

27.	कामनासिद्धि	48	मिष्ठान्न
28.	मृत्युंजयशक्ति	48	मिष्ठान्न
29.	विजय	48	शहद, बेसन का लड्डू
30.	आपत्तिनाश	96	त्रिमधुर व पान
31.	कामनासिद्धि	48	शहद, दूध
32.	कल्याण-प्राप्ति	48	दही, चावल व बेसनी लड्डू
33.	सर्वमनोरथ	48	मीठे चावल
34.	आत्मज्ञान	48	नारियल, पान, खीर
35.	इष्टसिद्धि	48	शहद, काली मिर्च, घी
36.	भयनाश	48	शहद, दूध
37.	आत्मसाक्षात्कार	48	शहद, बेसन का लड्डू
38.	ज्ञान	48	काली मिर्च वाले पके चावल
39.	भयनाश	12	फल, नारियल
40.	अज्ञान-निवारण	48	मिठाई व दूध
41.	सन्तान-प्राप्ति	36	11 बेसन लड्डू, पान
42.	समृद्धि	48	दूध, खिचड़ी
43.	मोहनाश	36	शहद, पान
44.	कल्याण	12	शहद
45.	मोहन	48	चीनी
46.	ज्ञान-लाभ	48	शहद
47.	भयनाश	24	शहद
48.	सौभाग्य	48	त्रिमधुर
49.	कल्याण	12	शहद, दूध
50.	विद्वेषण	12	नारियल, फल, शहद
51.	इष्टलाभ	48	नारियल, फल, शहद
52.	मोहन	48	पुलाव व फल
53.	ज्ञान	48	खिचड़ी, शहद
54.	पापनाश	48	गुड़, नारियल
55.	सुरक्षा	48	शहद, बेसन का लड्डू

56.	विजय	48	खीर
57.	संकट नाश	48	मिठाई
58.	आकर्षण	12	फल, घी, पान
59.	विजय	48	शहद
60.	कवित्व	48	शहद व दुग्ध पदार्थ
61.	ऐश्वर्य	12	नारियल, फल व शहद
62.	सौभाग्यवृद्धि	36	बेसन के लड्डू, शहद
63.	दु:ख-निवारण	24	नारियल
64.	वाक्-सिद्धि	48	मिष्ठान्न
65.	विजय	48	शहद
66.	कवित्व	48	मिठाई, शहद
67.	ऐश्वर्य	48	मिठाई, शहद
68.	लक्ष्मीसिद्धि	48	पान, शहद
69.	संगीतसिद्धि	48	पान व शहद
70.	संकटनाश	12	शहद
71.	सौभाग्यवृद्धि	96	नारियल, शहद
72.	वैभवप्राप्ति	48	शहद
73.	लक्ष्मीसिद्धि	12	शहद
74.	कीर्ति	48	दूध, शहद
75.	कवित्व सिद्धि	48	दूध, शहद
76.	भीति-निवारण	12	फल व शहद
77.	संकट-निवारण	12	नारियल, दही, चावल
78.	इष्टसिद्धि	48	शहद व फल
79.	मंगल-प्राप्ति	48	शहद, बेसन का लड्डू
80.	स्तम्भन	48	शहद
81.	आकर्षण	48	शहद
82.	विजय-प्राप्ति	48	शहद, बेसन की मिठाई
83.	विजय-प्राप्ति	12	शहद व फल
84.	इष्टसिद्धि (परकायप्रवेश)	360	शहद

85.	सौभाग्यवर्धन	12	पुलाव
86.	विजय	24	दूध के पदार्थ, फलों का रस
87.	लक्ष्मी	12	दूध, नारियल
88.	इष्ट लाभ	360	दूध, शहद, फल
89.	दरिद्रतानाश	36	फल, नारियल, शहद
90.	दरिद्रतानाश	36	फल, नारियल, शहद
91.	सङ्गीतसिद्धि	48	शहद, मिष्ठान्न
92.	इष्टसिद्धि	48	शहद, मिष्ठान्न
93.	कल्याणसिद्धि	48	दुग्धपदार्थ, शहद
94.	विजय-प्राप्ति	48	दुग्ध पदार्थ
95.	अभावपूर्ति	48	पुलाव, दूध
96.	उच्चाटन	12	शहद
97.	इष्ट सिद्धि	12	खिचड़ी व फल
98.	आत्मज्ञान	360	घी-भात
99.	आत्मज्ञान	360	शहद व खीर
100.	सरस्वती सिद्धि	48	शहद व भात
101.	सर्वकामनासिद्धि	48	शहद
102.	सर्वकामनासिद्धि	48	त्रिमधुर, बेसन का लड्डू
103.	शक्ति-वृद्धि	48	नारियल व फल

श्लोकानुक्रमणी

क्र.सं.	श्लोक	श्लोक-सं.	क्र.	श्लोक	श्लोक-सं.
1.	अमू ते वक्षोजौ	73	2.	अरालं ते पाली	58
3.	अराला केशेषु	93	4.	अरालैः स्वाभाव्यात्	45
5.	अविद्यानाम्	3	6.	अविश्रान्तं	64
7.	असौ नासावंशः	61	8.	ऊहः सूते	48
9.	कदा काले मातः	100	10.	कराग्रेण स्पृष्टं	67
11.	करीन्द्राणां शुण्डाः	82	12.	कलंकः कस्तूरी	95
13.	कलत्रं वैधात्रम्	97	14.	कवीनां सन्दर्भ	50
15.	कवीन्द्राणाम् चेतः	16	16.	किरन्ती मंगेभ्यो	20
17.	किरीटं वैरिञ्चिं	29	18.	कुचौ सद्यः स्विद्यत्	80
19.	क्वणत्कांचीदामा	7	20.	क्षितौ षट्पंचाशत्	14
21.	गतास्ते पञ्चत्वम्	92	22.	गते कर्णाभ्यर्णम्	52
23.	गतैर्माणिक्यत्वम्	42	24.	गले रेखास्तिस्त्रः	69
25.	गिरामाहुर्देवी	98	26.	गुरुत्वं विस्तारं	81
27.	चतुःषष्ठ्यातन्त्रैः	31	28.	चतुर्भिः श्रीकण्ठैः	11
29.	जगतसूते धाता	24	30.	जपो-जल्पः	27
31.	तडित्वन्तं शक्त्या	39	32.	तडिल्लेखातन्वीम्	21
33.	तनीयांसं पांसुं	2	34.	तनुच्छायाभिस्ते	18
35.	तव स्तन्यम् धन्ये	75	36.	तव स्वाधिष्ठाने	40
37.	तवाज्ञाचक्रस्थं	36	38.	तवाधारे मूले	41
39.	तवापर्णे	56	40.	त्रयाणां देवानां	25
41.	त्वदन्यः पाणिभ्यां	4	42.	त्वदीयं सौन्दर्यं	12
43.	त्वया हृत्वा	23	44.	ददाने दीनेभ्यः	90
45.	दृशाद्राघीयस्याः	57	46.	धनुः पाष्पम्	6
47.	धुनोतु ध्वान्तं	43	48.	नखानामुद्योतैः	71

49.	नखैर्नाकस्त्रीणाम्	89	50.	नमो नाकं ब्रूम:	85
51.	नरं वर्षीयांसं	13	52.	निधे नित्यस्मरै	103
53.	निमेषोन्मेषाभ्याम्	55	54.	निसर्गक्षीणस्य	79
55.	पदंते कीर्तीनाम्	88	56.	पदन्यासक्रीडा	91
57.	पराजेतुं रुद्रं	83	58.	पवित्रीकर्तुम्	54
59.	पुरारातेरन्त:	96	60.	प्रकृत्या रक्तात्या:	62
61.	प्रदीपज्वालाभि:	102	62.	भवानि त्वं दासे	22
63.	भुजाश्लेषान्नित्यं	68	64.	भ्रुवौ भुग्ने	47
65.	मनस्त्वं व्योम	35	66.	महीं मूलाधारे	9
67.	मुखं बिन्दुं कृत्वा	19	68.	मृणाली मृद्वीनाम्	70
69.	मृषा कृत्वा	86	70.	यदेतत् कालिन्दी	77
71.	रणे जित्वा	65	72.	ललाटं लावण्य	46
73.	वहत्यम्ब	74	74.	वहन्ती सिन्दूरं	44
75.	विपाच्या गायन्ती	66	76.	विभक्त त्रैवर्ण्यम्	53
77.	विरचि: पञ्चत्वम्	26	78.	विशाला कल्याणी	49
79.	विशुद्धौते	37	80.	शरज्ज्योत्स्ना शुभ्रां	15
81.	शरीरत्वं	34	82.	शिव: शक्ति: काम:	32
83.	शिवशक्तया	1	84.	शिवेशृंगारार्द्रा	51
85.	श्रुतीनां मूर्धान:	84	86.	समं देवि स्कन्द	72
87.	समानीत: पदभ्यां	94	88.	समुद्भूत: स्थूल:	99
89.	समुन्मीलत् संवित्	38	90.	सरस्वत्या: सूक्ती:	60
91.	सरस्वत्या लक्ष्म्या	101	92.	सवित्रीभिर्वाचाम्	17
93.	सुधाधारासारै:	10	94.	सुधामप्यास्वाद्य	28
95.	सुधासिन्धोर्मध्ये	8	96.	स्थिरो गंगावर्त:	78
97.	स्फुरद्गण्डाभोग:	59	98.	स्मरं योनिम्	33
99.	स्मितज्योत्स्नाजालम्	63	100.	स्वदेहोद्भूताभि:	30
101.	हरक्रोधज्वाला	76	102.	हरित्वामाराध्य	5
103.	हिमानी हन्तव्यम्	87			

• • •

ज्योतिष सर्वस्व

लेखक- डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

एम.ए., पी-एच.डी.

ज्योतिष एक सम्पूर्ण शास्त्र है। शास्त्र का क्रमबद्ध व प्रामाणिक ज्ञान तथा व्यवहारिक समन्वय ये दो तत्त्व मिलकर एक निपुण ज्योतिषी का निर्माण करते हैं। ज्योतिष की आधुनिक जानकारियों से युक्त और शास्त्र के प्रायः सभी विभागों का उपयोगी ज्ञान देने वाले इस ग्रन्थ में जातक, प्रश्न, मुहूर्त, ताजिक (वर्ष) एवं सिद्धान्त के सभी आवश्यक व लोकोपयोगी पक्षों का विशेष सावधानी से विवेचन किया गया है।

सरल हिन्दी भाषा में

इस अनमोल ग्रन्थ में आप पायेंगे—

- जन्म पत्री निर्माण के सभी पहलुओं का विस्तृत व सोदाहरण विवेचन, ग्रहभाव साधन, दशवर्ग, सुदर्शन, आरुढ़ बल, रश्मि अवस्था, इष्ट, कष्ट अनेक विषय।
- षड्वर्ग कुंडलियों के विशिष्ट फलित सूत्र।
- वर्षफल के सभी विषय-सहम व हीनांश, पात्यंश दशा सहित।
- मेलापक का सम्पूर्ण विषय एक विशेष आकर्षण।
- प्रश्न शाखा के सभी रहस्य, सिद्धान्त शाखा का प्रवेश द्वार।
- मुहूर्त विचार, यात्रा व गृह निर्माण पर विशेष सामग्री।
- भारतीय व अंग्रेजी पद्धतियों का स्थान-स्थान पर प्रयोग व तुलनात्मक अध्ययन।
- स्वयं पंचांग रचना की विधि।

भारतीय ज्योतिष को सीखने समझने के लिये सम्पूर्ण ग्रंथ

मूल्य : 150 रु.

अंग विद्या पर अनूठी रचना

शरीर लक्षण एवं चेष्टाएँ

लेखक : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य एम.ए., पी-एच डी.

शरीर लक्षण ज्योतिष शास्त्र का एक प्रमुख अंग है। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य व ज्योतिष वाङ्मय में भाव शरीर लक्षणों के तथ्य बिखरे पड़े हैं। यह भारतीय व विशुद्ध ऋषि प्रदर्शित फलकथन पद्धति है। मानव शरीर पर विद्यमान लक्षण चिह्न, रेखाएँ, तिल, मस्सा, आदि के साथ-साथ विभिन्न अंगों की बनावट, रंगत, सौन्दर्य व लावण्य मानवीय भविष्य के बहुत से अनकहे पहलुओं को छूते हैं। जिस प्रकार जन्मकालीन ग्रहस्थिति से भविष्य निर्धारण होता है, उसी प्रकार लक्षण विज्ञान द्वारा भी भविष्य कथन प्रामाणिक, नितान्त भारतीय व ऋषिसम्मत हैं।

मानव शरीर एक प्रकार से स्वयं ब्रह्माजी द्वारा लिखी गई जन्मकुण्डली है, केवल उसे समझने की विधि का ज्ञान हो तो मनुष्य बिना ज्योतिषी की सहायता के भी खुद भविष्य पढ़ सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में आप पाएँगे:

(1) शरीर लक्षण व चेष्टाओं का प्रामाणिक विवेचन!

(2) शरीर के प्रमुख दस भागों का सरल व सारगर्भित विश्लेषण!

(3) शरीर लक्षणों से धर्म, स्वास्थ्य, वाहन, सम्पत्ति, अधिकार व राजयोगों का निश्चित निर्णय!

(4) शरीरांगो से मानव जीवन का त्रिकाली विवेचन!

(5) शरीरांग लक्षणों से दशा अन्तर्दशा जानना व उनका फलादेश!

(6) शरीर लक्षण से जन्मकुण्डली की सत्यता की परीक्षा!

(7) सब कुछ भारतीय **विदेशी मत की मिलावट से रहित! ऋषियों का अपूर्व वचनामृत!**

भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर!

मूल्य 150 रुपये

॥ सामुद्रविद् वदति यातमनागतं च॥

हाथ का अँगूठा-भाग्य का दर्पण

लेखक : ज्योतिष शिरोमणि डॉ. भोजराज द्विवेदी

अँगूठा चैतन्य शक्ति का प्रधान केन्द्र है। इसका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। फलतः अँगूठा इच्छा शक्ति का केन्द्र माना जाता है। यह व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। हाथ की रेखाओं का जितना महत्व होता है, उससे ज्यादा महत्व अँगूठे का माना गया है। अँगूठा प्राण-शक्ति का द्योतक है।

अँगूठा अँगुलियों का राजा कहलाता है। किसी भी वस्तु की पकड़ अँगूठे के बिना सम्भव नहीं है। मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध अँगूठे की कोशिकाओं तक होने से मस्तिष्क का, मस्तिष्क के भावों का स्पष्ट अंकन अंगूठे के द्वारा ही सम्भव है। यही कारण है कि कुछ वैज्ञानिक हस्ताक्षर द्वारा मनुष्य की प्रकृति का अनुमान लगाते हैं।

अंगूठा तर्क, ज्ञान एवं विवेक शक्ति का द्योतक है इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। अंगूठे पर बारीक रेखाओं के द्वारा कुछ चिन्ह व आकृतियाँ बनी होती हैं जिसके निरुपण से यह सिद्ध होता है कि विश्व में प्रत्येक प्राणी की प्रवृत्तियाँ, उसकी चेष्टाएँ, उसकी विचार शक्ति भिन्न-भिन्न होती है।

केवल अँगूठे के द्वारा जानी जा सकने वाली कुछ प्रमुख बातें :

प्रेम, तर्कशक्ति, विवेक, जीवन का विस्तार, आयु, भाग्योदय, भाग्यास्त, भविष्य, रोग, आत्मबल, व्यक्ति की परीक्षा, गुप्तेन्द्रिय का आकार-प्रकार, प्राणशक्ति, इच्छाशक्ति, प्राणवायु की गति, जन्म समय इत्यादि विषयों का विशद वर्णन इस विचित्र ग्रंथ में प्रस्तुत है।

अँगूठे के महत्व को अनेक भविष्यवक्ताओं ने जाना और माना है किन्तु अँगूठे पर कोई स्वतंत्र ग्रन्थ अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इस दिशा में लेखक डॉ. भोजराज द्विवेदी की यह रचना अपने आप में दुर्लभ तथा इस विषय पर सर्वप्रथम प्रकाशित पूर्ण रचना है।

मूल्य : 100 रुपये

ज्योतिष एवं तंत्रमंत्र साहित्य का बड़ा सूचीपत्र 5 रु. का डाक टिकट भेजकर मंगवायें।

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

फोनः 327 88 35

नवरत्नों व उपरत्नों पर सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ

रत्न प्रदीप

(Advance Study of Gems)

डॉ० गौरीशंकर कपूर

मानव का सदैव से रत्नों के प्रति आकर्षण रहा है। हमारे दैनिक जीवन में अनिष्ट ग्रहों की शांति, सुख–समृद्धि एवं प्राकृतिक विपत्तियों से बचाव के साथ–साथ शरीर की सजावट के लिए भी रत्नों का प्रयोग बढ़ा है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के गहन अध्ययन एवं दीर्घकालीन अनुभव का सुपरिणाम है –

नवरत्नों व उपरत्नों की जाँच–परख, रत्नों में दैवी शक्ति व बरकत, ज्योतिष के आइने में रत्न चुनिए, प्रयोग में आवश्यक सावधानियाँ, कुछ रत्न सस्ते परन्तु गुणों में चमत्कारिक, बहुमूल्य रत्नों का विकल्प **(Subsitute)**।

विचित्र किन्तु सत्य ! स्वयं परखिए। मूल्य 100 रुपये

महायोगी भगवान दत्तात्रेय विरचित

दत्तात्रेय तन्त्र

व्याख्याकार : डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी (एम.ए.पीएच.डी.)

यह ग्रन्थ परिचय विभाग और प्रयोग विभाग दो खण्डों में तन्त्रशास्त्र की शास्त्रीय साधना विधि के समग्र परिचय के साथ अंलकृत है। 28 पटलों में निर्मित यह तन्त्रग्रन्थ सर्वदोषों से रहित शीघ्र सिद्धि देने वाला बतलाया गया है जिसमें परम गोपनीय विषय भी संकलित हैं। विद्वान लेखक ने अपने दीर्घकालीन अनुभव और शास्त्रीय ज्ञान को सरलता के साथ प्रस्तुत किया है।

सरल भाषा में समझाने की प्रयोग विधि मूल्य 80 रुपये

रुद्रयामल तन्त्र

सम्पादन व व्याख्याकार : डॉ ० रुद्रदेव त्रिपाठी

तन्त्र–साहित्य के विशाल सागर में अद्‌भुत रत्न के समान अपनी महानता और तान्त्रिक प्रयोगों के लिए सर्वत्र विश्वविख्यात ग्रन्थ है। वर्षों के परिश्रम के बाद लेखक ने इसका यह संग्रह रूप संस्करण तैयार किया है। इसमें सर्वसाधारण पाठकों की रुचि और आवश्यकता को ध्यान में रखकर ऐसा उत्तम विवेचन प्रस्तुत किया है कि साधना के पथ पर चलने वाले को कठिनाई न हो और कोई विषय छूटे भी नहीं।

पृष्ठ – 304 मूल्य 125 रुपये

ज्योतिष का अनुपम साहित्य

(सरल हिन्दी व्याख्या सहित)

रुपये

- बृहत् पाराशर होराशास्त्र खण्ड 2, अध्याय 101 पृष्ठ संख्या 944
  ज्योतिष पितामह महर्षि पराशर की कालजयी रचना 400/-
  व्याख्याकारः डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य
- बृहज्जातकम् आचार्य वराहमिहिर विरचित पृष्ठ 400 150/-
  फलित विषय का शिरोमणि ग्रंथ विशिष्ट संस्करण 200/-
- प्रश्न मार्ग—मलयालम भाषा से अनूदित
  दक्षिण भारत की श्रेष्ठतम धरोहर खण्ड 2, पृष्ठ 590 300/-
- वृद्ध यवन जातकम्—आचार्य मीनराज विरचित
  वर्तमान मान्य फलित ग्रंथों की पावन गंगोत्री खण्ड 2, पृष्ठ 840 600/-
- ज्योतिष सर्वस्व—लेखकः डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य, पृष्ठ 540
  जातक, ताजिक, प्रश्न तथा मुहूर्त, चारों विभाग (सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र) 150/-
  विशेषताः *इस कोटि का ग्रंथ आज तक नही छपा*
- शरीर लक्षण एवं चेष्टाएँ—डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य 150/-
- पूर्व कालामृत—कवि कालिदास कृत सर्वप्रथम, तेलुगु भाषा की सहायता से 100/-
- उत्तर कालामृत—कवि कालिदास—अनूठा फलित ग्रंथ 100/-
- हस्त रेखाओं का गहन अध्ययन सजिल्द दोनों भाग 125/-
  अमेरिकन विद्वान बेन्हम द्वारा लिखित, विषय स्पष्ट के लिये चित्र 450
- अष्टकवर्ग महानिबन्ध—आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' पृष्ठ 424 200/-
- आयु र्निणय—आचार्य मुकुद दैवज्ञ 'पर्वतीय' पृष्ठ 468 200/-
- जातक भूषणम्—आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' पृष्ठ 302 150/-
- भाव मंजरी, नष्टजातक, प्रसवचिंतामणि—आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' प्रत्येक 50/-

(विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्य वराहमिहिर की अपूर्व रचनाएँ)

बृहत् संहिता

विश्व का एकमात्र सम्पूर्ण संहिता ग्रंथ
समस्त ज्योतिष शास्त्र का महासागर
जिसका पूरे साहित्य में कोई सानी ग्रंथ नहीं
खण्ड 2 अध्याय 101 पृष्ठ संख्या 1016
मूल्य : 600/-रु., डाक व्यय पृथक

बृहज्जातकम्

फलित ज्योतिष का शिरोमणि ग्रन्थ
जिसका अक्षर-अक्षर सत्यता से पूर्ण
व्याख्या की विशेषता, विशिष्ट संस्करण
पृष्ठ संख्या : 400
मूल्य 200/-रु., डाक व्यय पृथक्

दोनों ग्रन्थों के व्याख्याकार डॉ. *सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य*

विषय की स्पष्टता एवं भाषा में सरलता

आपके संग्रह में दोनों ग्रन्थ अनिवार्य

डाक द्वारा मंगाने के लिए पत्र लिखें, ज्योतिष ग्रन्थों की सूची अलग से मंगायें

- फलित ज्योतिष में ग्रहों के फल—*बिपिन बिहारी*
  नवग्रहों के स्वरूप का दुर्लभ एक चित्र सहित 80/-
- फलित ज्योतिष में जन्मलग्न के फल—*बिपिन बिहारी कसौटी पर खरे* 80/-
- जातकतत्त्वम्—पं. महादेव पाठक विरचित (रतलाम) पृष्ठ 358 125/-
- रत्न प्रदीप—डॉ. गौरीशंकर कपूर, रत्नों की व्यवहारिक जानकारी एवं उपयोग 100/-
- फलित विकास—पं. रामयत्न ओझा दुर्लभ ग्रंथ अंधकार से प्रकाश में 80/-
- जैमिनी सूत्र (सम्पूर्ण) महर्षि जैमिनी—पृष्ठ 320 उच्च कोटि का ग्रंथ 125/-
- व्यापार रत्न—पं. हरदेव शर्मा त्रिवेदी—तेजी मंदी का प्रामाणिक ग्रंथ 250/-
- उलझे प्रश्न सुलझे उत्तर, ● नास्त्रेदम की भविष्यवाणियां, ● नक्षत्रफलदर्पण ● दाम्पत्यसुख, ● दैवज्ञवल्लभा, ● जातकालंकार, ● अंकविद्या रहस्य, ● प्रश्नविद्या (बादरायण), ● आपकी राशि भविष्य की झांकी, ● हस्त संजीवन, ● हस्तरेखाएं बोलती हैं (कीरो), ● अंकों में छिपा भविष्य (कीरो), ● भाग्य त्रिवेणी (कीरो) ● हस्तरेखाओं का गहन अध्ययन 2 भागों में (बेन्हम), ● दशाफल रहस्य प्रत्येक 50/- रु.
- मूक प्रश्न विचार, ● भावार्थ रत्नाकर, ● अनिष्टग्रह कारण और निवारण, ● व्यवसाय का चुनाव, भुवन दीपक, केरलीय ज्योतिष प्रत्येक 40/- रु.
- फलितसूत्र, ● चुने हुए ज्योतिष योग, ● ज्योतिष और रोग, ● रत्न परिचय, ● वर्षफल विचार, ● गोचर विचार, ● महिलाएं और ज्योतिष, ● चन्द्रकला नाड़ी, ● भाव दीपिका, ● षटपंचाशिका, ● लघुपाराशरी, ● प्रश्न दर्पण 40/- रु.
  ● हस्तपरीक्षा (कीरो), ● अंक चमत्कार (कीरो), ● जन्मपत्री स्वयं बनाइये, ● एक मास में ज्योतिष सीखिए, ● स्वप्न और शकुन प्रत्येक 25/- रु.
- सनातन संस्कार विधि—प्रामाणिक रचना सरल एवं व्यावहारिक
  गंगाप्रसाद शास्त्री पृष्ठ 320 150/-रु.

डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी द्वारा लिखे अनमोल तंत्रग्रंथ

- रुद्रयामल तंत्र—सरल एवं सुगम श्रेष्ठता प्राप्त पृष्ठ 304 125/-
- तंत्रशक्ति 40/- मंत्रशक्ति 40/- यंत्रशक्ति दो भागों में 80/-
- महामृत्युंजय साधना एवं सिद्धि 50/-
- सौन्दर्यलहरी (आदिशंकराचार्य) सरल हिन्दी व्याख्या सहित 150/-
- दत्तात्रेय तंत्र (महायोगी दत्तात्रेय की अनूठी देन) पृष्ठ 212 80/-
- माहेश्वर तंत्र 50/-

आचार्य मीनराज विरचित

वृद्ध यवन जातकम्

व्याख्याकारः डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिपाचार्य
वर्तमान फलित ज्योतिष ग्रंथों की पावन गंगोत्री
अधिक समय से दुर्लभ, अब प्रकाशित
खण्ड 2 अध्याय 72 पृष्ठ संख्याः 840
मूल्य 600/- रु., डाक व्यय पृथक

दक्षिण भाषा मलयालम से अनूदित

प्रश्न मार्ग

व्याख्याकारः डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी
होरा, प्रश्न, मूहूर्त व शकुन आदि पर अनूठी
दक्षिण भारत की चुनी हुई श्रेष्ठ धरोहर
खण्ड 2 अध्याय 32 पृष्ठ संख्याः 590
मूल्यः 300/:रु. डाक व्यय पृथक

आपके ज्योतिष ज्ञान के लिये अनूठे दोनों ग्रंथों का होना अनिवार्य।

बृहद सूचीपत्र 5 रुपये के डाक टिकट भेजकर मंगायें। फोन 327 88 35

रंजन पब्लिकेशन्स, 16, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

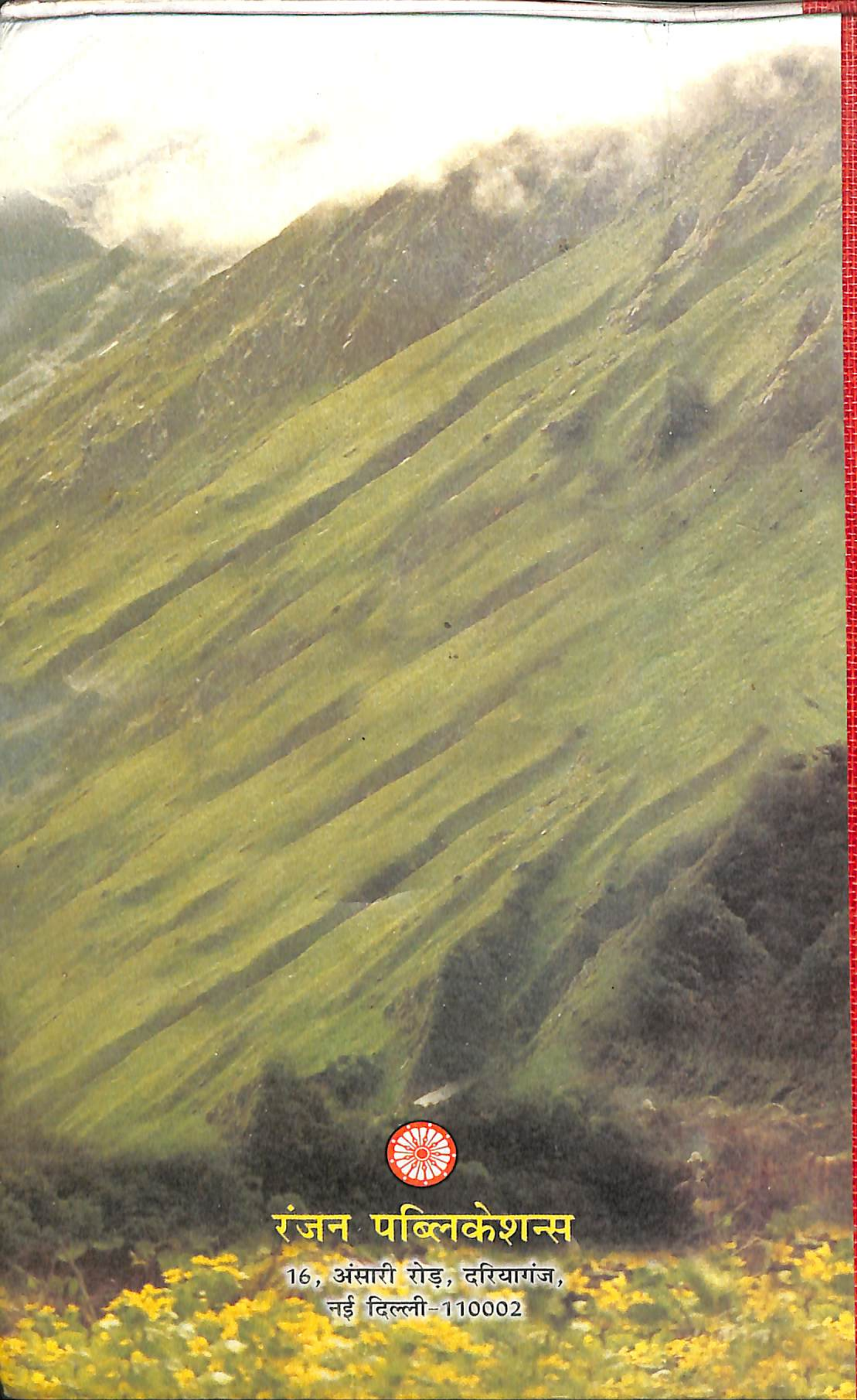

रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड़, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002